Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथाजगत की संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : 28, अंक : 430, फरवरी, 88

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञानसिंह

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान

सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

आवरण पारदर्शी : विमल सक्सेना, हेमंत कुमार, फाल एस. गिरोटा

अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

कथा रचनाएं

6. बारात बैलगाड़ी पर : **उपेंद्रनाथ अश्क**
15. अपने लोग : **अभिमन्यु अनत**
19. डायलिसिस : **वीरेंद्र मेंहदीरत्ता**
23. जोखिम : **सुदर्शन नारंग**
26. आउट हाउस : **केशव**
30. पापाजी, आप गंदे हैं : **नफीस आफरीदी**
36. अजनबी लोग : **शैलेंद्र सागर**
39. रेत के शिखर : **तेजेंद्र शर्मा**
44. नींद टूट गयी : **विनय बिहारी सिंह**
52. बिरादरी : **विनय श्रीवास्तव**

उपन्यास अंश

48. पवनपुत्र : **भगवतीशरण मिश्र**

संस्मरण

12. हर कोई तालस्तोय नहीं बन सकता : यशपाल : **चंद्रगुप्त विद्यालंकार**
54. फीस और क्यू : **डॉ. ईश्वर दत्त वर्मा**

परिचर्चा

68. किताबें दीवारें नहीं पढ़तीं उर्फ लेखक, प्रकाशक और पाठकों के अंतर्संबंध

लघु रचनाएं

8. रास्ता : **रतीलाल शाहीन**
17. जमानत : **जगमोहन बलोही**
32. सिलसिला : **अशफाक अहमद**
33. चैन की सांस : **सीतेश आलोक**
34. दर्शन और पाप : **अनिल श्रीवास्तव**
46. अरब का बीरबल अबू : **अनुराधा शुक्ला**
47. उसकी आंखें : **ज्योतिवाला**
50. बहरे दोस्त की मिजाजपुर्सी : **सुधांशु गुप्त**
51. लेखक और परिवेश : **विपिन जैन**
56. देवता की हंसी : **रमाकांत**
58. नंदी : **हिमानी शिवपुरी**

विशेष आयोजन

59. लोकप्रिय साहित्य खंड : **मनमोहन चड्ढा**

स्थायी स्तंभ

5. अपनी बात
42. अनजानी प्रेम कथाएं : **बाला दुबे**
73. कृतियां
78. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ : **गोपाल चतुर्वेदी**
81. सारिका कथा पहेली, नयी पौद

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

"गंगा गृह" तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामबक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंबले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

"दुष्ट प्रवर,
समझ में नहीं आता, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? क्यों तुम हाथ धोकर मेरे पीछे पड़े हो? सी.आई.ए. जैसे किसी भी देश में गृह-कलह करा देता है, वैसे ही तुमने भी मेरी छोटी-सी गृहस्थी में बवंडर उठा दिया है...महाशय, मैं तुमसे व्यक्तिगत तौर पर बिल्कुल परिचित नहीं, मैंने तुम्हें कभी देखा नहीं, फिर तुम मेरे संबंध में सारी बातें कैसे जानते हो?...तुम लेखक हो कि 'एंटीना', मियां बीवी के बीच होने वाले गुप्त संवादों को भी कैच कर लेते हो?"

यह खुला पत्र भूचाल सिंह ईंट ठेकेदार ने विनोद शंकर शुक्ल के नाम से आज से करीब तीन साल पहले सारिका के (1-15 मार्च, 1985 के) अंक में लिखा था.....प्र जनाब की खुसूसियत यही नहीं है इससे बहुत पहले वे 'मुद्रिका रहस्य उर्फ असली किस्सा कुमारी शकुंतला को' भी लिख चुके हैं...और इधर लंबे समय से प्रतिदिन एक नयी धार लेकर नवभारत टाइम्स में हाजिर हो जाते हैं.

.....तो इस बार होली की ठिठोली का नेतृत्व कर रहे हैं 'सारिका' के अतिथि संपादक और प्रख्यात व्यंग्यकार

शरद जोशी

.....और अपने व्यंग्य की रंगभरी पिचकारी लेकर साथ में आ रही है मौजूदा व्यंग्यकारों की होली की तरंग में मदमस्त टोली....

सभी स्थायी स्तंभों के साथ होली पर इस उपहार की अपनी प्रति कृपया अभी से सुरक्षित करवा लें.

सारिका
मार्च 1988

अपनी बात

दलालों का साहित्य और साहित्य के दलाल

पिछले अंक में हमने पुस्तक मेलों की सार्थकता और उपयोगिता की बात उठायी थी और उसी से जोड़कर प्रकाशकों लेखकों तथा पाठकों के अंतर्संबंधों की भी चर्चा की थी. इस बार हमने इन्हीं बातों और चर्चाओं पर आधारित कुछ सवाल कई प्रतिष्ठित प्रकाशकों से पूछे हैं. इन सभी चर्चाओं और सवालों के पीछे हमारा उद्देश्य पाठकों को अधिक से अधिक संख्या में साहित्य से जोड़ना है. लिखित शब्द का महत्व तब तक कुछ नहीं होता जब तक उसे पढ़ने वाले और उस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले समझदार पाठकों की संख्या न बढ़े. इन चर्चाओं को छेड़ने और इन सवालों को उठाने का एक मकसद यह भी है कि किस तरह प्रकाशक, लेखक और शब्द प्रचार के अन्य माध्यम मिलकर एक बड़े परिवार या संसार का निर्माण कर सकते हैं अर्थात जो पाठक सुरुचिपूर्ण और सार्थक साहित्य से हटते जा रहे हैं उन्हें फिर से साहित्य की मूलधारा से जोड़ने और उनके साथ एक नये पाठक वर्ग का निर्माण करने का सिलसिला शुरू किया जा सके.

ऐसा नहीं है कि साहित्य के सामने पाठकों का अभाव हो. निश्चित रूप से लोग पढ़ना चाहते हैं ''लेकिन जो भी सहज मिल जाए'' वाली सुविधा से पढ़ना चाहते हैं. अधिकांश पाठक पुस्तकें खरीदकर पढ़ने की स्थिति में नहीं हैं. उनके सामने यह स्थिति कैसे पैदा की जाए यह आज सबसे अहम और विचारणीय सवाल है. प्रकाशकों के मन में व्यावसायिकता के दबाव इतने घनीभूत हो गये हैं कि लगता है जैसे उनके बीच प्रतियोगिता किताबों के प्रकाशन की न होकर मूल्यों की वृद्धि की हो. कभी कभी किताबों की इतनी ज्यादा बढ़ी हुई कीमतों को देखकर ऐसा भी लगता है जैसे प्रकाशकों को पाठकों की कोई चिंता ही न हो. यह बात किसी सीमा तक सही भी है क्योंकि आज के अधिकांश प्रकाशक लाइब्रेरी खरीद तथा सरकारी खरीद पर ही निर्भर रहना सीख गये हैं. इस निर्भरता के कारण घटिया या फेक साहित्य भी काफी संख्या में नजर आने लगा है. पुस्तक खरीद से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े दलाल किस्म के लोग, जिनका साहित्य से दूर-दूर का भी रिश्ता नहीं रहा, वे भी अपने इष्ट मित्रों और परिवार जनों के साथ इस साहित्य संकीर्तन से जुड़ गये हैं. मतलब यह है कि उन लोगों की रद्दी से रद्दी चीजें प्रकाशक प्रशंसा और धन भी पेशगी देकर सहर्ष छाप डालता है और उनके कारण जेन्यून साहित्य के प्रकाशन में रुकावट पैदा होती है. इस स्थिति पर नजर रखने और इसे रोक पाने का दायित्व भी प्रकाशकों, लेखकों, पाठकों तथा शब्द प्रचार के माध्यमों का है.

मैं जो कुछ कह रहा हूं वह इस बात की पक्षधरता नहीं है कि लाइब्रेरी खरीद और सरकारी खरीद बंद कर दी जाये, अगर ऐसा हो गया तो इससे हमारा प्रकाशन व्यवसाय बुरी तरह प्रभावित होगा. हमारी पक्षधरता पाठकों के निर्माण के प्रति और उनके रुचि-परिष्कार के प्रति है साथ ही इस बात के प्रति भी कि पुस्तकों की इन अनाप-शनाप कीमतों को किस तरह नियंत्रित किया जाये ताकि उन तक पाठकों की पहुंच हो सके. सुना है कि इस दिशा में हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी के कृष्ण चंद्र बेरी ने काफी सराहनीय और स्तुत्य प्रयास किया है. उन्होंने भारतेंदु बाबू के संपूर्ण साहित्य को सिर्फ 30 रुपये में और डाक खर्च के साथ 40 रुपये में बेचने के लिए तैयार किया है और वे इतने ही पैसों में अन्य कई महत्वपूर्ण साहित्यकारों के संपूर्ण साहित्य को प्रकाशित करने के प्रयास में लगे हुए हैं.

मैं उनका हार्दिक अभिनंदन करता हूं और मुझे पूरा विश्वास है कि उनके इस प्रयत्न से पाठकों के मन में पढ़ने के प्रति एक नयी उमंग और किताबों के प्रति एक सही आस्था पैदा हो सकेगी और निश्चय ही इससे पाठकों की संख्या का विस्तार भी होगा.

इस अंक में हम पूरी इच्छा और कोशिश के बावजूद कुछ स्तंभ और कुछ घोषित रचनाएं प्रकाशित नहीं कर पाए हैं इसका हमें खेद है लेकिन भविष्य के लिए हमारी पूरी कोशिश होगी कि किसी भी अंक से कोई भी स्तंभ अनुपस्थित न रह सके.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी पीढ़ी के चर्चित एवं प्रतिनिधि कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, निबंधकार. प्रायः प्रत्येक विधा पर अधिकारपूर्ण लेखन.
संपर्क : 5, खुसरो बाग, इलाहाबाद (उ.प्र.)

उपेंद्रनाथ अश्क

बरात बैलगाड़ी पर

चिट्ठिए दर्द फ़िराक वालिए
नी, ले जा, लें जा सुन्योहड़ा सोहने यार दा

नीचे बैलगाड़ी चरख-चूं चली जा रही थी. सड़क के दोनों ओर लगे शीशम के घने पेड़ों के ऊपर नीला, निरभ्र आसमान, किसी विशाल शामियाने-सा तना था. वसंत का त्यौहार आकर जा चुका था, लेकिन सर्दी वैसी ही तीखी थी, बल्कि हवा में गलन बढ़ गयी थी और धूप सुहानी लग रही थी. कहीं-कहीं किसी घने पेड़ की नीची डाल चेतन के ऊपर से लहराती निकल जाती और सहसा चेतन का मन उसे पकड़ने के लिए ललक उठता.

उसके बड़े साले याने चंदा के ताऊ पंडित वेणी प्रसाद के बड़े लड़के रणवीर 'नाशाद' की शादी पर बरात लालड़ां जा रही थी. बैलगाड़ी पर आगे को बरातियों के ट्रक और पींछे की ओर को शीरीनी तथा नमकीन सेव और शकरपारों के कनस्तर थे. उनके ऊपर गोल किये हुए और रस्सियों के कसकर बांधे बिस्तर तह-दर-तह जमाकर रखे गये थे, सब के ऊपर मोटी फर्शी दरी तहाकर डाल दी गयी थी और यूं बैलगाड़ी के ऊपर पेड़ों को छूता हुआ-सा बहुत ऊंचा, चौड़ा मंच-सा बन गया था. चेतन बायीं ओर चित्त लेटा हुआ आसमान को ताक रहा था. उसके बराबर 'हुनर' साहब और 'निश्तर' कोहनी के बल लेटे थे. जरा परे भाई साहब दोनों घुटनों को बांहों में बांधे पीछे को झुके हुए थे. उनके पास ही रणवीर बैठा था. चूंकि बैलगाड़ी पर सब-के-सब एक साथ खुली तरह नहीं बैठ सकते थे, इसलिए बैठे-बैठे उकताकर कुछ युवक बैलगाड़ी के साथ-साथ जर्नैली सड़क पर चल रहे थे और रणवीर की गली का सुनार युवक रतना दायीं ओर नीचे को पैर लटकाये बैठा, दिशाओं को गुंजाती हुई, अपनी लोच और सोज-भरी आवाज में 'चिट्ठिए दर्द फिराक वालिए' गा रहा था.

लेटे-लेटे करवट बदलकर चेतन ने अपने भाई की ओर देखा...अगर उन्हें लाहौर ही में पता चल जाता कि रणवीर की शादी लालड़ां नाम के जिस गांव में होने जा रही है, वहां रेलगाड़ी और तांगे-इक्के नहीं जाते (बसों का तो उन दिनों रिवाज ही नहीं था) बैलगाड़ियां ही जाती हैं और बरात उन्हीं में जायेगी तो चेतन को विश्वास था, रणवीर के तमाम अनुरोध और अनुनय-विनय के बावजूद भाई साहब कभी न आते. डेंटल कॉलेज खोलने में आर्थिक सहायता देने का जो वायदा उसने किया था, उसका भी कुछ खयाल न करते.

चन्न चढ़या कुल आलम वेक्खे
मैं वी वेक्खां मुख यार दा.
ओ मेरेआ चन्ना
मैं वी वेक्खां मुख यार दा.

चेतन का सारा रूमान इस बरसात और सर्दी में जम गया था. उसने क्षण भर अपने तीनों साथियों की ओर देखा. मौन और बेबस खड़े भीग रहे थे. उसका अपना दिमाग कुछ भी नहीं सोच रहा था. उसकी कल्पना में बड़ी-सी अंगीठी थी. उसमें दहकते उपले थे.

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रतना अपनी सोज-भरी आवाज में गा रहा था. और अंतरा खत्म होते ही बैलगाड़ी के साथ-साथ चलने वाले रणवीर के दोस्तों ने समवेत स्वर में टीप का बंद उठा लिया था :

> चिट्ठिए दर्द फिराक वालिए,
> नी, ले जा, ले जा सुनयोहड़ा सोहने यार दा.

चेतन कुछ क्षण चुपचाप वह गीत सुनता रहा था. कितना प्यारा सोज-भरा गीत था. चेतन के सामने कुछ वर्ष पहले के वे दिन घूम गये, जब वह कुंती की गली के नीचे से सिर्फ उसकी एक झलक पाने को गुजरा करता था. उसे याद था, ईद की एक शाम, जब लोग छतों पर चढ़े चांद को देख रहे थे, सहसा बारीक-सा चांद नजर आ गया था और बराबर के मुसलमान मुहल्लों से खुशी के नारे बुलंद हो गये थे और दूर इमाम नासरुद्दीन में दमामे बज उठे थे, अपनी छत की शहनशील पर बैठा हुआ देर तक वह 'चिट्ठिए दर्द फिराक वालिए' गाता रहा था :

> चन्न चढ़या कुल आलम वेक्खे
> चन्न चढ़या कुल आलम वेक्खे
> में वी वेक्खां मुख यार दा.

और सुध-बुध भुलाकर वह बार-बार यही पंक्तियां गाता रहा था.

भाई साहब को गाने का वैसा शौक नहीं था. लेकिन चेतन ने देखा—घुटनों को बाहों में बांधे, वे धीरे-धीरे झूम रहे थे. वह मन-ही-मन हंसा. आखिर भाई साहब ने बैलगाड़ी की सवारी से समझौता कर ही लिया है.

> चन्न चढ़या कुल आलम वेक्खे
> चन्न चढ़या कुल आलम वेक्खे
> में वी वेक्खां मुख यार दा
> ओ मेरेआ चन्ना
> में वी वेक्खां मुख यार दा

रतना उसी बंद को दोहराकर गा रहा था. भाई साहब घुटने बाहों में लिये

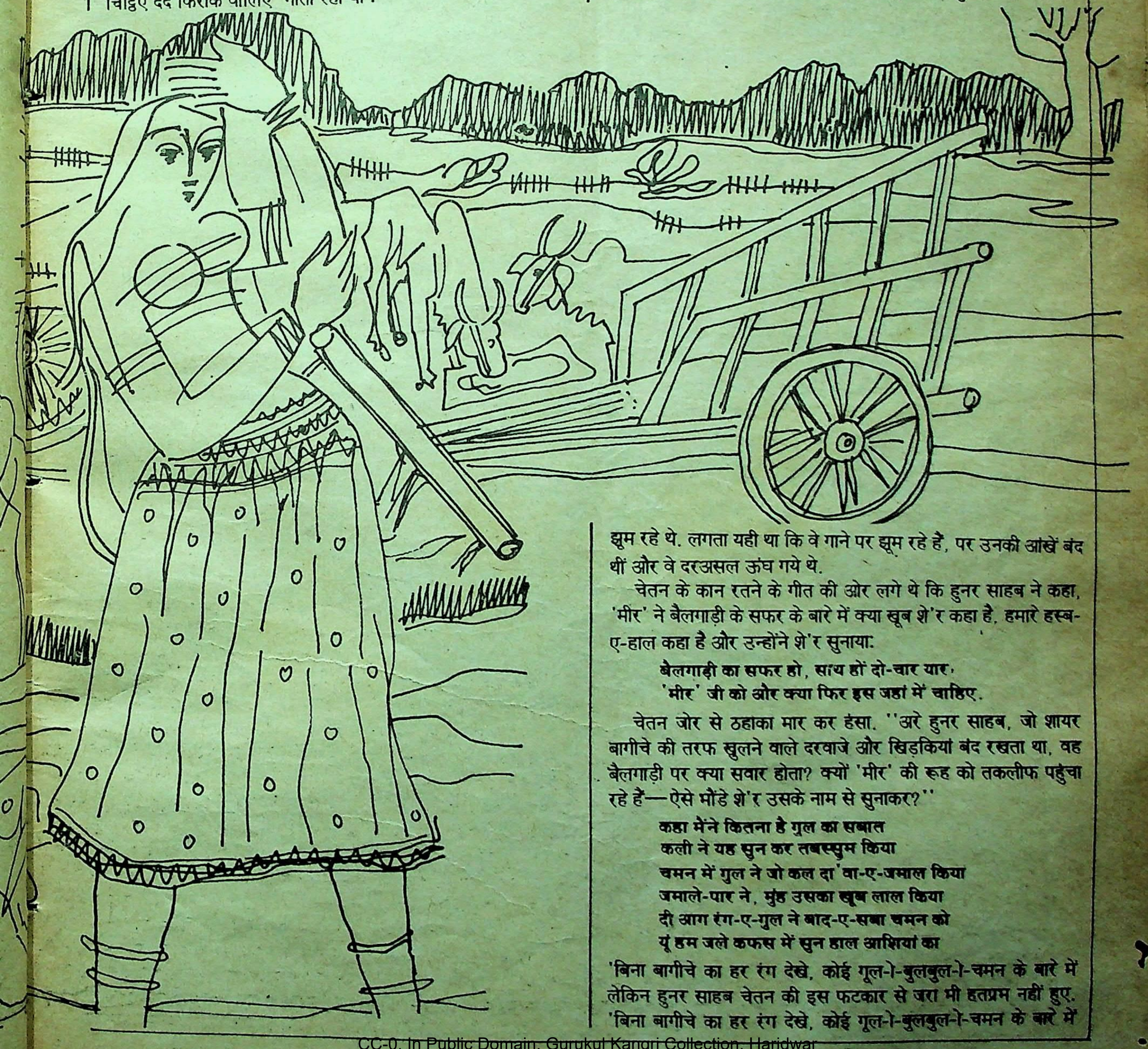

झूम रहे थे. लगता यही था कि वे गाने पर झूम रहे हैं, पर उनकी आंखें बंद थीं और वे दरअसल ऊंघ गये थे.

चेतन के कान रतने के गीत की ओर लगे थे कि हुनर साहब ने कहा, 'मीर' ने बैलगाड़ी के सफर के बारे में क्या खूब शे'र कहा है. हमारे हस्ब-ए-हाल कहा है और उन्होंने शे'र सुनाया:

> बैलगाड़ी का सफर हो, साथ हों दो-चार यार,
> 'मीर' जी को और क्या फिर इस जहां में चाहिए.

चेतन जोर से ठहाका मार कर हंसा. "अरे हुनर साहब, जो शायर बागीचे की तरफ खुलने वाले दरवाजे और खिड़कियां बंद रखता था, वह बैलगाड़ी पर क्या सवार होता? क्यों 'मीर' की रूह को तकलीफ पहुंचा रहे हैं—ऐसे भौंडे शे'र उसके नाम से सुनाकर?"

> कहा मैंने कितना है गुल का सबात
> कली ने यह सुन कर तबस्सुम किया
> चमन में गुल ने जो कल दा'वा-ए-जमाल किया
> जमाले-यार ने, मुंह उसका खूब लाल किया
> दी आग रंग-ए-गुल ने बाद-ए-सबा चमन को
> यूं हम जले कफस में सुन हाल आशियां का

'बिना बागीचे का हर रंग देखे, कोई गुल-ो-बुलबुल-ो-चमन के बारे में लेकिन हुनर साहब चेतन की इस फटकार से जरा भी हतप्रभ नहीं हुए. 'बिना बागीचे का हर रंग देखे, कोई गुल-ो-बुलबुल-ो-चमन के बारे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या ऐसे दिलनशीं शे'र कह सकता है?' 'हुनर साहब ने कहा और अपने उस्ताद के उस्ताद के उस्ताद के हवाले से (जो हुनर साहब के कथनानुसार 'मीर' के हम-असर और हम-सुखन थे) बताया कि 'मीर' को बैलगाड़ी का सफर बहुत पसंद था और उन्होंने 'मीर' के नाम से दो शे'र और सुना दिये:

बैलगाड़ी का सफर है ज़िंदगी
चरख-चूं जाने न कितने दिन चले
बैलगाड़ी का सफर है, रात पूरे चांद की
याद ने तेरी अंधेरा पाख लेकिन कर दिया

और उन्होंने बताया कि 'मीर' ही पर क्या बस है, 'गालिब', 'जोक', 'मोमिन' और 'सौदा' तक ने अपने अश' आर में बैलगाड़ी की यात्रा के गुण गाये हैं और वे एक किस्सा सुनाने लगे, जब 'मीर' ने दिल्ली से लखनऊ तक का सफर बैलगाड़ी में किया था और रास्ते में पूरा दीवान लिख डाला था. हुनर साहब तो अपनी रौ में 'मीर' का वह पूरा दीवान ही सुना देते, लेकिन रतना गाड़ी पर खड़ा हो गया था और उसका स्वर फिजाओं को गुंजा रहा था और चेतन को मीर के शे'रों में उस वक्त कोई दिलचस्पी नहीं थी.

डूंघी-डूंघी नदी-आ, तला वे पुराना
मैं अन तारू, तरन न जाना
नज़र न आवे कंडापार दा
ओ मेरे आ यारा—
नज़र न आवे कंडा पार दा

रतना बैलगाड़ी पर खड़ा था. दायां हाथ उसने कान पर रख लिया था. बायें को हवा में लहराते हुए उसने अंतरा गाया. कितना रसीला गला पाया है, रतने ने? हठात चेतन ने सोचा और उसकी आंखों के सामने शिमले के चैडविक प्रपात के नीचे उस तन्हाई को सोज और लोच-भरी अपनी आवाज से गुंजाते कविराज जी की सूरत घूम गयी और सोहनी का वह गीत उसे याद आ गया:

लंघ आ जा पत्तन झनां दा
ओ यार

इर्द-गिर्द की सारी फिजां को गुंजाता हुआ, रतने का गीत जाने किस प्रक्रिया से चेतन की श्रवण-शक्ति से परे चला गया था और उसकी जगह दो वर्ष पहले चैडविक प्रपात के पार्श्व-संगीत पर उठती सोहनी की पुकार कविराज के स्वर में चेतन के कानों में गूंजने लगी और वह मन ही मन उस लोकगीत के सारे बंद गुनगुनाता रहा.

वहीं बैलगाड़ी पर लेटे-लेटे, चेतन पुरानी यादों में खो गया. शिमला के चैडविक प्रपात से उड़कर उसका मन दुसुआ स्टेशन की सूनी, अकेली रातों में भटक गया, जिन्हें एक ही रात में बैठ कर मंथली (महीने का पूरा हिसाब) बनाने के प्रयास में उसके पिता मील-मील तक फिजाओं को गुंजाने वाली अपनी आवाज से खनखना देते थे—और रांझे का वह दर्द-भरा गीत :

इश्क तेरे ने कमलिए हीरे
जग विच्चू मेंन्नूं ख्वार कीत्ता ई!

जिसे सुनने के लिए चेतन आधी-आधी रात तक जागता रहता था.

चेतन को इस बात का भी अफसोस था कि न उसके पिता ने अपने स्वर का कोई लाभ उठाया था, न कविराज रामदास ने. कविराज तो फिर भी दूसरों को रिझाने के लिए कभी-कमार गाते थे, लेकिन उसके पिता तो वीरानों में सुगंधि लुटाने वाले फूल की तरह, मंथलियां बनाते हुए, सोज और लोच से भरी अपनी मीठी, रसीली आवाज से वीरान रातों के सन्नाटों को गुंजाया करते थे. इससे ज्यादा उस विभूति का उनके निकट कोई उपयोग नहीं था...

रतना बदस्तूर 'चिट्ठिए दर्द फिराक वालिए' गा रहा था.

चेतन की आंखें करकराने लगी थीं. वह रात भर का जगा था. धूप मीठी और प्यारी लग रही थी. लोकगीत के बोलों और भागती हुई बैलगाड़ी के हिचकोलें से उसे नींद आ गयी.

बैलगाड़ी कच्चे रास्ते पर उतरी, तो इतने जोर से हिचकोले लगे कि एक दूसरे पर गिर पड़े. भाई साहब झल्लाकर बड़बड़ाये—''अच्छी बरात में जा रहे हैं! इस धूल-मिट्टी में चलते-चलते, न जाने शाम तक कैसी दुर्गत हो जाये!''

चेतन उनकी बड़बड़ाहट सुनकर जाग गया. फिर वह हंसा, ''अब आ गये हैं भाई साहब, तो यह मजा भी ले लीजिए!'' उसने कहा, ''झल्लाने से कोई फायदा नहीं, सिवा उन लोगों का मन खराब करने के. याद तो रहेगा कि रणवीर की बरात में शामिल हुए थे.''

सड़क दोनों ओर के खेतों से काफी नीची थी. किनारे-किनारे खेतों की मेड़ों पर कांस उगा था. दोनों ओर, जहां तक नजर जाती थी, गेहूं के हरे-भरे खेत थे, जिनमें चना भी बोया हुआ था. मेड़ों पर सरसों लगी थी. बीच में कोई पूरा-का-पूरा खेत सरसों का था. लगता था जैसे पीला जाजम बिछा हो. सरसों के पीले फूल दृष्टिसीमा तक फैली हरियाली की यकरंगी को मिटा रहे थे. हवा तेज थी और खेतों में दूर-दूर तक लहरें-सी बनती जाती थीं. कहीं-कहीं गन्ने के खेत खड़े थे और जहां रहट थे, वहां आम-जामुन के झुंडों में छिपे रहट 'रूं रूं' 'रीं रीं' कर रहे थे. तेज पछुआ चल रही थी और बैलों के खुरों और बैलगाड़ियों के पहियों से सड़क की मिट्टी आंधी-ऐसी उड़कर खेतों पर बिछ रही थी. सब लोग चने छीलते और खाते-बतियाते बढ़े जा रहे थे. काफी दूर जाने पर सड़क के निकट ही

लघुकथा

रास्ता

रतीलाल शाहीन

पिता रिटायर हो गये और फिर भी दो जवान बेटियां अनब्याही बैठी रह गयीं. मां के लिए इससे बड़ा दुख और क्या हो सकता है?

जब भी कोई घर में आता, शंकुतला देवी सबसे यही दुःखड़ा कहने लग जातीं, 'क्या बतायें बहन! सुधा ने बी.ए. किया है. सरला मैट्रिक में है. कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं हम लोग. कोई हमजात लड़का नहीं मिलता. तीस हजार रुपया नगद भी देने को तैयार हैं हम.'

पत्नी की बात सुनकर रिटायर्ड भगवती बाबू भीतर के कमरे में चल देते. वे भी पढ़े-लिखे हैं. लड़कियों की भावनाओं का ज्यादा ख्याल करते हैं. उनका दिल नहीं दुखाना चाहते. भीतर से वे भी पीड़ित रहते हैं. पर, पत्नी का बार-बार सबसे नमस्कार के बाद यही रामकहानी लेकर बैठ जाना उन्हें नहीं सुहाता. बेटियां भी बैठक के कमरे से भीतर खिसक जाती हैं. पिता भगवती बाबू भी इसीलिए आहिस्ता से उठकर भीतर चल देते हैं. पत्नी समझती है कि वे शायद औरतों की बातों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते हैं, इसीलिए यहां से चले जाते हैं जबकि भगवती बाबू लड़कियों को यह दिखाने के लिए कि 'तुमको भगाने के लिए तुम्हारी मां ही केवल कपड़े झाड़कर बैठी हुई है, मैं तो तुम्हारे साथ हूं. जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्ने का एक खेत मिला. रिपु और रतना उसमें घुस गये और आठ-दस गन्ने तोड़ लाये. तब जिन बारातियों के हाथों में चने थे, उन्होंने भी उन्हें फेंककर एक-एक गन्ना ले लिया.

गन्ने पतले, सख्त और रसीले थे. न जाने चेतन ने कितने वर्षों बाद ये पतले, सख्त गन्ने चूसे थे. उसे बहुत अच्छा लगा. कुछ और चलने पर फिर गन्ने का एक खेत आया. किसान खेत पर ही था. उन्होंने गन्नों का एक पूरा पूला खरीदकर बैलगाड़ी पर रख लिया. सड़क अब कुछ बेहतर हो गयी थी और वे थक भी गये थे. सब-के-सब बैलगाड़ी पर चढ़ गये और गन्ने चूसने लगे.

चार-साढ़े चार बजे होंगे, जब बैलगाड़ियां सड़क के निकट ही चलने वाले एक रहट के पास रुकीं. शाम उतर आयी थी. हालांकि वे रास्ते में चने टूंगते और गन्ने चूसते आये थे और उनके होठों के कोने फट गये थे, लेकिन मीलों उस ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलने और बैलगाड़ी के धक्के खाने के कारण उन्हें भूख लग आयी थी. हवा रुक गयी थी, लेकिन सूरज ढल जाने के कारण ठंड बढ़ गयी थी. पेड़ों के घने झुंड में अकेला रहट बड़ा सूना-सूना लग रहा था—सूना और जैसे सदियों पुराना. यद्यपि इधर बहुत-से रहटों पर मिट्टी की बड़ी-बड़ी टिंडों के बदले टीन के डिब्बे लग गये थे, लेकिन इस रहट पर वही पुरानी टिंडें लगी थीं, जिन पर निरंतर पानी में रहने की वजह से काई जम गयी थी और टिंडें जो कभी लाल सुर्ख रही होंगी गहरी हरी लग रही थीं.

रहट के करीब ही एक छप्पर था, जिसके बाहर एक मुसलमान किसान बैठा हुआ हुक्का पी रहा था. चेतन ने आदत के मुताबिक कुएं में झांककर देखा—पानी बहुत नीचे था. वह कुछ क्षण टिंडों को भरकर ऊपर आते और अपना पानी नीचे कुएं पर लगी टीन की चौड़ी नाली में उंडेलते देखता रहा. फिर उसने जाकर धार के नीचे हाथ-पैर और मुंह धोया. पानी ठंडा यख़ था, तो भी उसे हाथ-मुंह धोना बहुत अच्छा लगा. इस बीच रहट के पास एक दरी बिछ गयी थी. उस पर शीरीनी, शकरपारों और बेसनी सेव के कनस्तर रख दिये थे और एक-एक मुट्ठी शीरीनी, शकरपारे और बेसनी सेव सब को दे दिये गये.

दिन भर मस्ती करते हुए वे लोग थक गये थे. आगे पैदल चलना हुनर साहब या भाई साहब या चेतन के लिए कठिन था. नाश्ता करके और रहट से पानी पीकर वे बैलगाड़ी पर जा बैठे.

सूरज काफी ढल गया था. खेतों और गांवों के कच्चे मकानों पर लंबे-लंबे साये उतर आये थे. सूरज की पीली-सुनहली धूप केवल पेड़ों की फुनगियों पर दिखायी देती थी और दृष्टि की सीमा तक दायें-बायें फैली हुई हरियाली पर सन्नाटा उतर आया था. हवा नहीं थी, लेकिन ठंड जैसे अदृश्य झर रही थी. दिन भर हरियाली को देखते-देखते चेतन की आंखें थक गयी थीं. उसे बेहद ऊब हो रही थी और वह चाहता था कि वे सब जल्द-से-जल्द लालड़ां पहुंच जायें.

लेकिन लालड़ां का कहीं नाम-निशान न था. एक के बाद एक—तीन गांव रास्ते में आये. दूर ही से पेड़ों के झुंड और उनमें से उठता धुआं गांव के होने की गवाही देता. निकट आने पर कच्चे मकानों के सिलहूत उभरते. जोहड़ के सड़ते पानी की दुर्गंध नथुनों में भर जाती. बकरियों और भेड़ों की 'में में, में में' सुनाई देने लगती और गांव के बाहर ही से कुत्ते भूंकने लगते और बैलगाड़ियों के अगल-बगल भूंकते हुए, उन्हें गांव के काफी बाहर तक छोड़ आते.

चेतन अपनी सुध-बुध खोकर पश्चिमी क्षितिज पर डूबते हुए सूरज को देख रहा था. वहां जैसे कोई बहुत बड़ा अलाव जल उठा था. सहसा हवा तेज चलने लगी. वे घने बादल, जिन्होंने देखते-देखते उस अलाव को निगल लिया था, हवा के कंधों पर चढ़े, भयानक देवों-से बढ़ने लगे. देखते-देखते उन्होंने आकाश को ढंक लिया. गाड़ीवानों ने बैलों की पीठ पर सांटे जमाये. थके होने के बावजूद बैल दौड़ने लगे.

सब एकदम चुप थे. ताश खेलकर, पैदल चलकर, बातें करके और गीत गाकर वे थक गये थे. सबके मन में एक ही बात थी—वे लालड़ां कब पहुंचेंगे? सहसा चेतन ने अपने गाड़ीवान से पूछा, "क्यों बई, किन्नी दूर ए लालड़ां?"

"बस जी, एही कोई कोस-दो-कोस."

"यार हर बार कोस-दो-कोस कह देन्ना ऐं. तेरे एक कोस-दो-कोस कदीं खतम वी होणगे." और उसने हुनर साहब से कहा, "तीन गांव गुजर गये हैं. हर बार पूछने पर उसने यही जवाब दिया है. साले कोस न हुए, योजन हो गये."

हुनर साहब ने लंबी सांस ली और गुनगुनाये:

"इसी उम्मीद पर मीलों चले जाते हैं दीवाने
वो उट्ठा पर्दा-ए-महफिल, वो निकला हाथ महफिल से."

हुनर साहब शायद मूड में आ रहे थे. लेकिन खादी के कुर्ते-धोती, पट्टी की ऊनी वास्केट और गर्म चादरे के बावजूद उनके दांत बजने लगे थे. "मौसम तो ऐसा है कि पास में ह्विस्की की बोतल हो, दो-चार दोस्त हों और ढालकर देनेवाला साकी हो, तब न इस सर्दी की फिक्र हो, न जल्दी लालड़ां पहुंचने की. कयामत तक हम इसी तरह बैलगाड़ी पर बैठे हुए चले जा सकते हैं." हुनर साहब ने कहा.

वे ताबड़तोड़ कई गर्म-गर्म शे'र पढ़ने वाले थे कि तभी उनकी नाक पर एक मोटी बूंद गिरी. शे'र उनके दिमाग से हवा हो गया, "पानी बरसने ही वाला है.," उन्होंने हठात कहा. उनके स्वर में कुछ अजीब-सा भय था.

अच्छा जीवन-साथी नहीं मिलता, तुम सभी आराम से रहो.' और शादी-ब्याह की चर्चा चलते ही खुद वहां से चल पड़ते हैं.

पत्नी भी पुराने जमाने की मिडिल पास है. लेकिन कुल जमा दो ही तो लड़कियां हैं. लड़का हुआ नहीं. शकुंतला इसी से दुखी रहती है, भगवती बाबू इसे अच्छी तरह समझते हैं. लेकिन समझदार आदमी की तरह औरतों के सामने चुप बैठना ही ठीक समझते हैं. औरतें तो हमेशा कान की कच्ची हुआ करती हैं.

भगवती बाबू लेकिन पत्नी पर खीझ भी जाते हैं. "कान्यकुब्ज ब्राहमण! कान्यकुब्ज ब्राहमण! सुन-सुन कर ही कोई अपने लड़के को देने को तैयार नहीं होता. तीस हजार दहेज में कहीं ब्राहमण लड़का मिलता है?" भगवती बाबू अपनी जातबिरादरी के कंइयापन को जानते हैं और चुप लगा जाते हैं.

लेकिन मां की रोज की झक-झक ने बड़ी बिटिया के सीने में एक ठंडी आग सुलगा दी. एक दिन उसने कहा, "मां! मैं बैंक में सर्विस करूंगी."

"पति तो मिलता नहीं, नौकरी तुझे क्या मिलेगी." मां ने जैसे पूरे तेईस साल का बदला लिया हो.

लेकिन सुधा भी कम नहीं थी. उसने नियुक्तिपत्र दिखला दिया जोकि उसे छः माह पहले के आवेदन के पत्रोत्तर और परीक्षा पास करने के संदर्भ में यूनियन बैंक से आया था.

सुधा नौकरी पर लग गयी. एक महीने में मां के लिए दूसरा आश्चर्य था. उसने बैंक के ही एक गुजराती सहकर्मी से शादी कर ली थी. केवल कोर्ट का कागज मां को दिखा भर दिया था.

भगवती बाबू बेहद खुश थे. जो बात वे मन में रखे हुए थे, बेटी ने वास्तविक तौर पर कर दिखाया था. उनकी खुशी का ओर-छोर नहीं था.

लेकिन सबसे ज्यादा खुश छोटी बहन सरला थी. उसे रास्ता मिल गया था. □

•37, नवपाड़ा, बांदरा पूर्व, बंबई-400051

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने किसी गांव के सिलहूत दिखाई दे रहे थे. बुजुर्गों वाली बैलगाड़ी उसके करीब पहुंच रही थी. उन्होंने बैलों को जरा तेज चलाने का आदेश दिया. बैल थक गये थे. कुछ क्षण भागकर फिर पहले की तरह सोये-सोये चलने लगे थे, लेकिन गाड़ीवान ने उनकी मां-बहन के साथ निकट संपर्क स्थापित करते हुए, दो-चार सांटे उनकी पीठ पर रसीद किये, बैलों ने हुमककर कंधों से जोर लगाया और भागने लगे.

लेकिन बादल शायद इसी संकेत की प्रतीक्षा कर रहे थे. ऐन उस वक्त टपाटप बड़ी-बड़ी बूंदें पड़ने लगीं.

सबने अपने-अपने कोट और चादरें और ओवरकोट सिरों पर ले लिये. गांव दो-एक फर्लांग पर सामने दिखाई दे रहा था. जब बकायदा पानी बरसने लगा तो लड़के बैलगाड़ियों से उतरकर सरपट गांव की तरफ भागे, लेकिन भाई साहब और हुनर साहब को यह लौंडियाई पसंद नहीं आयी. विवश चेतन भी उनके साथ ही रह गया और दूल्हा के नाते रणवीर भी. हुनर साहब ने सुझाव दिया कि दरी बहुत मोटी है. वे लोग उसके नीचे हो जायें और उसे ढलुवीं करके तान लें. पानी बह जायेगा और वे सुरक्षित गांव तक पहुंच जायेंगे.

वे चारों दरी के नीचे बिस्तरों पर जा बैठे और दरी को उन्होंने ऐसे तान लिया कि पानी नीचे की ओर बह जाये.

घुप्प अंधेरा. दरी की पोर-पोर में बसी हुई धूल और मिठाई-नमकीन तथा बिस्तरों और कपड़ों मिली-जुली गंध. चेतन कुछ क्षण सांस रोके, दोनों हाथों से दरी थामे पड़ा रहा. फिर उसका दम घुटने लगा. उसका जी हुआ दरी हटाकर बाहर निकल आये. लेकिन बाहर बेहद ठंड थी, जोरों से पानी गिर रहा था और दरी के नीचे सुरक्षा और गर्मी थी. वह चुपचाप गाड़ी के पहियों और बरसते पानी और गाड़ीवान की गालियों और टिटकारियों की आवाज सुनता बैठा रहा.

तभी हुनर साहब ऐसे चिल्लाये, जैसे उनके गले से सांप लिपट गया हो, "अरे यह पानी मेरी गर्दन पर चूने लगा है!"

दूसरे ही क्षण भाई साहब को भी यही शिकायत हुई. शायद हुनर साहब ने हाथ से दरी को ऊंचा कर दिया और पानी की धार भाई साहब के सिर पर चूने लगी थी. दरी भीग कर भारी हो आयी थी.

कुछ क्षण तक यही तमाशा होता रहा. जिस पर पानी गिरता, वह दरी को जरा और उठा देता और वह दूसरों पर गिरने लगता अथवा शरीर के दूसरे हिस्से पर बहने लगता. थोड़ी देर बाद लगा कि यदि तत्काल बाहर निकलकर किसी पनाह की तलाश नहीं करेंगे तो न सिर्फ दरी के नीचे बैठे-बैठे भीग जायेंगे, बल्कि बिस्तर और उनके साथ कपड़े भी गच हो जायेंगे.

तब चारों एक साथ दरी के बाहर निकले. वे गांव के बिल्कुल नजदीक पहुंच गये थे. दायीं ओर जरा ऊंचाई पर एक बहुत बड़ा और घना बरगद का पेड़ था. उसकी लंबी-मोटी डालियां सड़क को छाये हुए थीं. हुनर साहब ने गाड़ीवान से जरा-सा आगे बढ़कर उसके नीचे गाड़ी रोकने को कहा. चेतन और रणवीर ने गाड़ीवान की मदद से दरी को ऐसे ढालुवीं बिछा दिया कि पानी बह जाये और नीचे का सामान न भीगे. फिर वे भागकर बरगद के नीचे खड़े हो गये.

कुछ देर बरगद के नीचे उन्हें राहत मिली. सब जगह पानी-ही-पानी था, सिर्फ बरगद के नीचे अभी सूखी थी, लेकिन दस-एक मिनट बाद वहां भी पानी की धारें गिरने लगीं और बरगद के तने के साथ पानी ऐसे बहने लगा, जैसे ऊपर किसी ने कोई अदृश्य ट्यूबवेल चालू कर दिया हो.

"यार, अगर कहीं बरसात इसी तरह जम गयी, झड़ी लग गयी और लालड़ां ही में तीन-चार दिन रुकना पड़ गया तो मेरा बड़ा नुकसान हो जायेगा." भाई साहब ने चिंतित स्वर में हुनर साहब से कहा, "मुझे तो अपने दो मरीजों को सेट तैयार करके देने हैं." और वे जैसे अपने आप से बोले, "अच्छा हुआ, मैंने अपना सूट और टाई ट्रंक में रख दी, वरना लाहौर पहुंचकर सबसे पहले सूट धुलवाने या उसे इस्त्री करवाने की जरूरत पेश आती."

हुनर साहब ने जैसे उनकी बात नहीं सुनी.

विश्व पुस्तक मेले में
आप सादर आमंत्रित हैं....

विभिन्न विषयों की चुनी हुई पुस्तकों का नयनाभिराम प्रदर्शन!

कृपया अवश्य पधारिये!

और अपने मनचाहे विषयों की जैसे-राजनीति, संस्कृति, इतिहास, धर्म, दर्शन, जीवन-चरित्र, आत्मकथा, प्रेरक और निराशा से उबारने वाली पुस्तकें, शब्दकोश, साहित्यिक कोश, उर्दू शायरी, कविता, उपन्यास, कहानी-संग्रह एवं ज्ञान-विज्ञान संबंधी नवीनतम जानकारी से युक्त पुस्तकें तथा उच्चकोटि के सचित्र बाल-साहित्य की आकर्षक एवं संग्रह योग्य पुस्तकों का चुनाव कीजिए!

राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट दिल्ली-110 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी तो चाहता है," उन्होंने ठिठुरते हुए कहा, "कि बसंत के मौसम की इस घिरी हुई घटा और बरसते पानी, हड्डियों में पेवस्त होती हुई सर्दी और बरगद के नीचे की इस पनाह को लेकर कुछ शे'र किये जायें, लेकिन दांत बजने लगे हैं और लगता है, दिमाग भी साला गुड़ी-मुड़ी होकर बैठ गया है."

"कुछ ही दिन पहले पंजाब और कश्मीर के पहाड़ों में जबरदस्त बर्फ गिरी है," चेतन ने कहा, "आपने मार्क नहीं किया, दिन भर कड़ी धूप के बावजूद हवा में गलन थी."

"इस वक्त तो सबसे बड़ी तमन्ना यही है," हुनर साहब ने अपनी ही रौ में कहा, "किसी तरह गांव पहुंच जायें, किसी किसान के यहां जरा-सा आसरा मिल जाये, फिर उसे पटाना और रात भर आराम से काटने का डोरा बैठाना, हमारे बायें हाथ का खेल है."

और वे लोग गांव की ओर नजरें जमाये, भीगते-कांपते चुप हो गये.

चेतन का सारा रूमान इस बरसात और सर्दी में जम गया था. उसने क्षण भर अपने तीनों साथियों की ओर देखा. मौन और बेबस खड़े भीग रहे थे. उसका अपना दिमाग कुछ भी नहीं सोच रहा था. उसकी कल्पना में बड़ी-सी अंगीठी थी. उसमें दहकते उपले थे. उनकी गर्मी से स्निग्ध एक दालान, गर्म-गर्म बिस्तर और गर्म-गर्म लिहाफ था और (उस अजीब चिंतन-प्रक्रिया से, जो सपनों को जन्म देती है) पास में लेटी अपनी पत्नी का गर्म-गुदाज सीना था और बरगद के नीचे उस काल्पनिक सुख में वह इस मुसीबत को भुलाये हुए था.

तभी जैसे युगों बाद (वास्तव में केवल पंद्रह-एक मिनट बीतने पर) दूर से एक बत्ती उनकी ओर आती दिखाई दी. फिर एक और बत्ती और उन दोनों के पीछे एक तीसरी. तीन आदमी छाते और लालटेन लिये, उनको ढूंढ़ते आ रहे थे.

जब वे बहुत पास आ गये तो मालूम हुआ कि रिपुदमन दो अपरिचितों के साथ लालटेनें और छाते लिये हुए उन्हें लेने आ रहा है. गांव का नाम गोविंदपुर ही था. वहां बारात की अगवानी का पूरा प्रबंध था. गैसवाले भी थे और बैंडबाजा भी था. लेकिन जब उन लोगों को पहुंचने में देर हो गयी और पानी जोर से पड़ने लगा तो गांव के मुहाने से हटकर वे सब अंदर चले गये.

वर्षा कुछ थम गयी थी. एक लालटेन बैलगाड़ी के जुए के नीचे बांध दी गयी और एक छाता गाड़ीवान को दे दिया गया. उसके पीछे बाकी दोनों छातों में दूल्हा और उसके बराती दो लालटेनों के पीछे किसी तरह कच्चे और कीचड़ भरे रास्ते में पांव घसीटते हुए चल पड़े. गांव के मुहाने पर गेट बना था. उस पर आम के पत्तों के बंदनवार के ऊपर वर्षों पुराना 'वेल-कम' का बोर्ड लगा था जो उस वक्त वर्षा से भीगा हुआ अंधेरे का अंग बन गया था और शायद तेज हवा से उलट भी गया था, लेकिन दूल्हा या उसके बारातियों का ध्यान उधर नहीं गया. अपने जूतों अथवा चप्पलों को कीचड़ में धंसने से बचाते हुए वे किसी तरह उस गेट में दाखिल हुए और किसी अंधेरे ओसारे में पहुंचकर उन्होंने सुख की सांस ली. □

चलते-चलते

छुट्टियों में बच्चे शनिवार को बाल फिल्म देखने के लिये सिनेमा हाल जाया करते थे. एक शनिवार प्रेस रिपोर्टर ने छोटी-सी लड़की को अपने भाई का हाथ पकड़े सड़क पार करते देखा. लडके की आंखें बंद थीं. रिपोर्टर ने सहानुभूति से लड़की से पूछा, इसकी आंखों को क्या हो गया? बचपन से ही देख नहीं सकता क्या?"

लड़की ने कहा, "ओह नहीं, ऐसा नहीं है. इसकी आंखें तो बिल्कुल ठीक है. इसने सूर्य की तेजी के कारण आंखें मूंद रखी हैं. जिससे सिनेमा हाल में पहुंचते ही हमें आराम से दो अच्छी सीट मिल जायें. □

प्रत्येक घर एवं पुस्तकालय के लिए संग्रहणीय
कथा-साहित्य

उपन्यास

बाबर	—गोविंद वल्लभ पंत	25.00
हर्ष	—गोविंद वल्लभ पंत	25.00
छह छायावादी	—गोविंद वल्लभ पंत	25.00
कनक कमल	—गोविंद वल्लभ पंत	20.00
मोटर रोड	—गोविंद वल्लभ पंत	25.00
मधुरा	—गोविंद वल्लभ पंत	30.00
टूटा हुआ आदमी	—मोहन चोपड़ा	25.00
ये छोटे बड़े लोग	—आरिगपूडि	20.00
अन्तिम उपाय	—आरिगपूडि	20.00
कांटों के फूल	—निर्मला वाजपेयी	20.00
सूखा सैलाब	—निर्मला वाजपेयी	20.00
बूढ़ी सुहागिन	—जयनारायण कौशिक	20.00
टूटता हुआ मैं	—डा. राम कुमार	20.00

कहानी

राजस्थान की प्रेम गाथाएं	लक्ष्मी कुमार चूण्डावत	25.00
तीस कहानियां	—गोविंद वल्लभ पंत	30.00
तीस कहानियां	—गोविंद वल्लभ पंत	30.00
घने बरगद तले	—रोहिणी	25.00
पीले पत्ते शाम और		
अकेला आदमी	—मोहन चोपड़ा	20.00
मयसूद के	—आरिगपूडि	20.00
विचित्र निदान	—आरिगपूडि	12.50
अपनी अपनी आस्था	—मनहर चौहान	25.00
सांझ की बकरी	—निर्मला वाजपेयी	20.00
खारे पानी का भंवर	—निर्मला वाजपेयी	20.00
वह अल्हड़ थी	—डा. राम कुमार	20.00
श्रीनिवास (मास्ती) की श्रेष्ठ कहानियां	—बी.आर. नारायण	20.00
रीति स्मृतियां	अवधेश कुमार सिन्हा	25.00

बृहत् सूची-पत्र के लिए लिखें

आर्य बुक डिपो

करोल बाग, नयी दिल्ली-110005.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

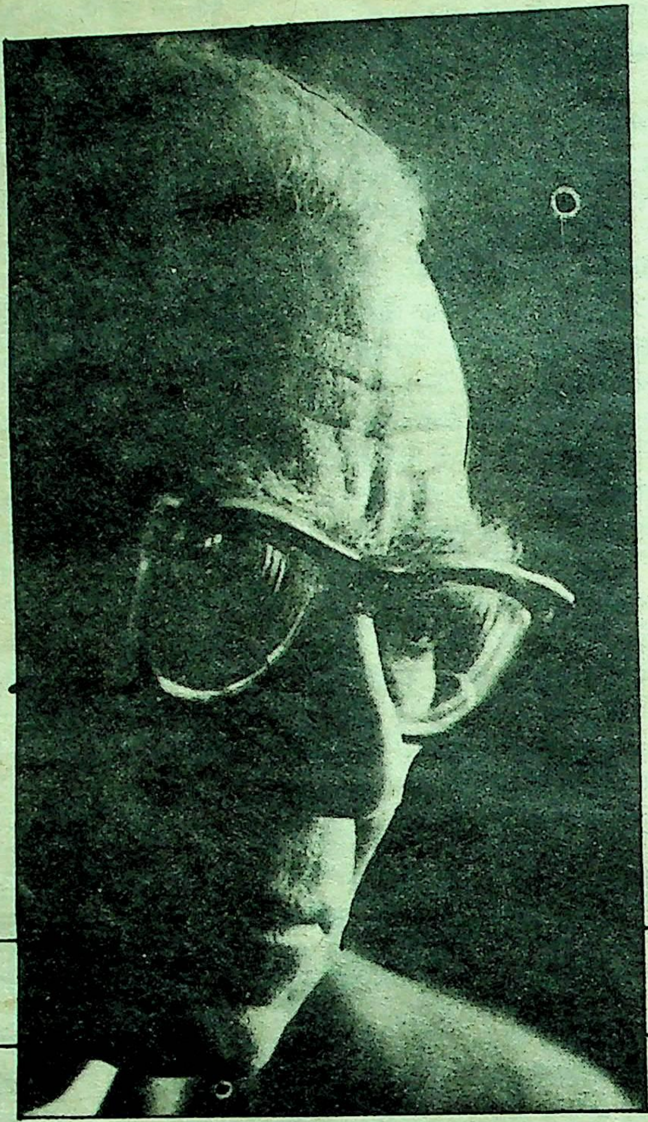

हर कोई तालस्तोय नहीं बन सकता....

जाने-माने कथाकार और 'सारिका' के भूतपूर्व संपादक चंद्रगुप्त विद्यालंकार का प्रख्यात कथाकार यशपाल जी पर आत्मीय संस्मरण.

यशपाल और मैं गुरुकुल में एक ही कक्षा के विद्यार्थी थे. अंतर यह था कि वह गुरुकुल कांगड़ी में प्रविष्ट हुए और मैं गुरुकुल मुल्तान में. दूसरा यह कि वह आयु में मुझसे कुछ बड़े थे. वर्षों का अंतर छोड़ दें तो उनका जन्म 3 दिसंबर को हुआ था और मेरा 4 दिसंबर को.

1938 में शिमला में हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था. पंजाब में वह सम्मेलन हो रहा था, इससे मैं उसमें सक्रिय भाग ले रहा था. सम्मेलन के पहले ही दिन की प्रातः मैं मंच पर प्रबंधकों के साथ व्यस्त था कि स्वयंसेवक ने आकर मुझसे कहा, "एक सज्जन फाटक पर आपसे मिलना चाहते हैं. उनके पास टिकट या निमंत्रण पत्र नहीं है." मैंने नाम पूछा तो स्वयंसेवक ने मुझसे कहा, "वह कहते हैं कि अपना नाम वह आप ही को बतायेंगे."

मैं मुख्य द्वार पर पहुंचा, जहां संयोजक टिकट चैक कर रहे थे. भारी भीड़ थी. भीड़ से कुछ हटकर खड़े हुए बच्चन तथा शिवमंगल सिंह को मैंने तत्काल पहचान लिया. वे दोनों और मैं एक ही जगह ठहरे हुए थे. मैं उनके पास पहुंचा तो मेरी निगाह एक और युवक पर पड़ी. बच्चन जी ने युवक से मेरा परिचय करवाया, "यह है क्रांतिकारी यशपाल."

और कुछ भी कहने की जरूरत नहीं थी. मैं उस युवक से गले लगकर मिला. बात यह थी कि जब मैं गुरुकुल कांगड़ी में पहुंचा था तो मुझे अपनी श्रेणी में विद्यार्थियों से यशपाल का पूरा परिचय मिल गया था. गुरुकुल कांगड़ी में वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ करते रहे थे, करीब-करीब वही सब खुराफातें में गुरुकुल मुल्तान में किया करता था. उनके राजनीतिक जीवन से, लाहौर में रहने के कारण, भी मैं अच्छी तरह परिचित था. वह अब कहानियां लिखने लगे थे. और मैं दस बरसों से कहानियां लिख रहा था.

बल्कि इस बीच एक किस्सा भी घटित हो चुका था. यशपाल जेल में थे और 'मक्रील' नाम से उन्होंने (जहां तक मुझे याद है, कहानी का यही शीर्षक था) एक कहानी लिखी थी, जो 'विशाल भारत' में छपी थी. 1938 में जब मुझे शांति निकेतन में 'वर्तमान हिंदी कहानी' पर भाषण देने के लिए निमंत्रित किया गया था, तो मैंने नये कहानी लेखकों की चर्चा में कहा था, "मक्रील जैसी शक्तिशाली कहानी के लेखक यशपाल का भविष्य अवश्य उज्जवल होना चाहिए."

मेरे उस भाषण की संपूर्ण हिंदी जगत में बहुत अधिक चर्चा हुई थी. सभी पत्रों और लेखकों ने उसके संबंध में अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त की थीं. पक्ष और विरोध दोनों में. अज्ञेय ने लिखा था, "भाषण में कितनी ही बातें बिना सोचे-समझे (मुझे ठीक शब्द अब याद नहीं हैं, उनका मतलब में यही समझा था) कही गयी हैं, जैसे यशपाल के बारे में भविष्यवाणी."

बहरहाल यशपाल से मिलकर मुझे बहुत खुशी हुई. उसी समय से हम दोनों मित्र बन गये. विचार-भेद होते भी कितनी ही आधारभूत बातों पर हम दोनों का दृष्टिकोण एक था. हम दोनों की यह मैत्री निरंतर बढ़ती गयी.जब मैं लखनऊ जाता था, उनके साथ घंटों बिताता था. वह लाहौर आते तो मुझसे जरूर मिलते. स्वाधीनता के बाद दिल्ली में. जब महानगर में उन्होंने अपना मकान बना लिया तो 1965 में मैं कई दिन उन्हीं के घर ठहरा था. उनके पूरे परिवार से मुझे बहुत स्नेह मिला था.

यशपाल में असीम आत्मविश्वास था. जेल से छूटकर, आचार्य नरेंद्र देव की सहायता से लखनऊ में एक पत्र और पुस्तक प्रकाशन का कार्य प्रारंभ किया. तब तक अधिक लोग उन्हें नहीं जानते थे... न राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में और न लेखक के रूप में. उन्हीं दिनों वह लाहौर आये और मेरे एक मित्र, जो एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र के संपादक हैं, से उन्होंने कहा था, "एक दिन सारा हिंदी जगत ही नहीं, अपितु संपूर्ण भारतीय साहित्य-जगत यशपाल को एक सफल लेखक के रूप में जानेगा. और वह दिन दूर नहीं है."

अपने संबंध में यशपाल की यह गर्वोक्ति-पूर्ण भविष्यवाणी काफी अंशों तक सही सिद्ध हुई. उन्होंने खूब लिखा और अच्छा लिखा. सौभाग्य से उनकी पत्नी प्रकाशवती (हिंदू विश्वविद्यालय में प्रकाशवती और मेरी पत्नी स्वर्णलता न सिर्फ एक कक्षा में थीं, वे दोनों

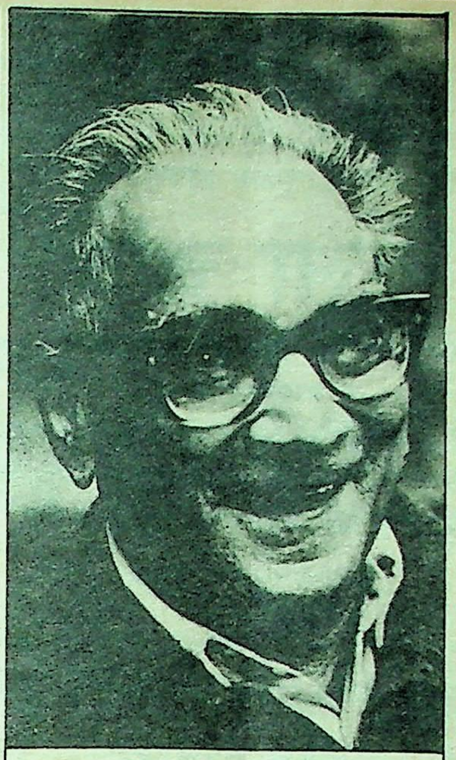

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

होस्टल के एक ही कमरे में भी रहती थीं) इतनी समझदार और सफल संगठन करने वाली हैं कि पुस्तक प्रकाशन का पूरा कार्य उन्होंने संभाल लिया और यशपाल निश्चिंत भाव से निरंतर लिखते रहे.

लेखक यशपाल के दो रूप हैं... सृजनशील कलाकार यशपाल और प्रचारक यशपाल. उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसे चार भागों में बांटा जा सकता है... उपन्यास, कहानी, प्रचारात्मक लेख और आत्म चरित. वह बहुत अच्छे लेखक थे. इससे असफल तो वह किसी भी क्षेत्र में नहीं रहे. उनके प्रचारात्मक लेख भी पढ़ने में दिलचस्प हैं. पर लेखक यशपाल का वास्तविक महत्व उनकी सृजनात्मकता में है, जो उनके कुछ उपन्यासों और कुछ कहानियों में प्रस्फुटित हुई है.

यशपाल की मां कट्टर आर्यसमाजी महिला थीं. वह अपने बेटे को आर्यसमाज का प्रचारक बनाना चाहती थीं और इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने बेटे को गुरुकुल कांगड़ी में भेजा था. यशपाल के पिता का देहावसान उनके बचपन में ही हो गया था. यशपाल धार्मिक वृत्ति के नहीं थे. प्रारंभ ही से वह स्वतंत्र चिंतक थे. इसी से गुरुकुल छोड़कर वह किशोरावस्था में ही भारतीय क्रांतिकारियों में सम्मिलित हो गये थे. मां की इच्छा के अनुसार वह सफल प्रचारक तो बने, पर आर्य समाज के नहीं. वह साम्यवादी आदर्शों के सफल प्रचारक अवश्य बने.

उपन्यास और कहानी -- दोनों क्षेत्रों में यशपाल का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है. अपनी सृजनात्मक रचनाओं के बारे में वह सदा मेरी राय जानना चाहते थे. अपनी कितनी ही रचनाएं प्रकाशन से भी पूर्व, छपे हुए फार्मों के रूप में वह मेरे पास भेजते रहे. मैं पूरी वस्तुपरकता (औब्जैक्टिविटी) के साथ अपनी राय उन्हें दिया करता था. एक रचना तो प्रेस में भेजने से पहले ही उन्होंने मेरे पास भेज दी थी, ताकि मेरे सुझाव, यदि उन्हें पसंद आयें तो, उनके आधार पर इसे रिवाइज कर लें.

यशपाल की कुछ कहानियां श्रेष्ठ कोटि की हैं. कुछ कहानियां साधारण हैं और कुछ कहानियां, जो प्रायः प्रचारात्मक उद्देश्य से लिखी गयी हैं, कमजोर हैं. मेरी राय से कहानी लेखक के रूप में उनका स्थान प्रेमचंद से कहीं नीचे है. इसके साथ यह कहना भी आवश्यक है कि मैं उनहें श्रेष्ठ कोटि का हिंदी कहानी लेखक मानता हूं.

पर एक उपन्यासकार के रूप में यशपाल प्रेमचंद से ऊपर पहुंच गये हैं. उनके 'झूठा-सच' को मैं हिंदी का अब तक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानता हूं. मैं यहां यह कहना भी आवश्यक समझता हूं कि विश्व उपन्यास की दृष्टि से हिंदी उपन्यास अभी तक सर्वोच्च स्तर पर नहीं पहुंच पाया. इस समय तक भी हिंदी उपन्यास (विश्व स्तर की दृष्टि से) दूसरे दर्जे का है. हालांकि हिंदी कहानी विश्व के प्रथम स्तर तक पहुंच चुकी है.

मैंने कई बार यशपाल जी से कहा कि वह 'झूठा-सच' को पूरी तरह नये सिरे से लिखें. मेरी राय से उसका प्रथम भाग बहुत श्रेष्ठ है पर दूसरा भाग कमजोर है. दूसरे भाग में यशपाल का प्रचारक रूप उभर आया है. दूसरे भाग के कुछ अंश इतने कमजोर हैं कि उन्होंने रचना का स्तर बिगाड़ दिया है. यदि यशपाल यह मेहनत कर सकते, तो शायद हिंदी को प्रथम श्रेणी के स्तर का उपन्यास मिल जाता. यशपाल मेरी बात ध्यान से सुनते थे. 'झूठा-सच' के बारे में वह मुझसे सहमत भी थे. पर उनका कहना था कि जब मैं एक रचना पूरी कर लेता हूं, तब मेरा पूरा ध्यान आने वाली नयी रचना की ओर केंद्रित हो जाता है. लिखने के बाद एक बार तो मैं रचना को रिवाइज करता हूं. पर रचना छप जाने के बाद मेरा पूरा ध्यान उससे इतनी दूर चला जाता है कि मैं उस पर किसी तरह की मेहनत करने के योग्य नहीं रह जाता.

मैंने उन्हें बताया कि तालस्तोय ने अपने दो उपन्यास 'फादर एंड सन' तथा 'वार एंड पीस' कितनी बार लिखे थे. कुछ स्थल तो 20 से भी ऊपर बार. तीन-चौथाई सदी से ऊपर बीत जाने पर भी आज ये दोनों विश्व के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में हैं.

उन्होंने कहा, "हर कोई तालस्तोय नहीं बन सकता." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरिष्ठ कथाकार और संवेदनशील निबंधकार

शिवप्रसाद सिंह

की एक और कालजयी औपन्यासिक कृति

नीला चांद

जिसमें मध्यकालीन काशी का नहीं, पूरे भारत का भविष्य चांद झलकता नजर आता है.
जिसमें खजुराहों से कालिंजर और विंध्याचल से हिमालय तक की तलहटी में फैले चंदेल और गाहड़वाल शासकों की मार्मिक इतिकथा दर्ज है.

मूल्य – 125 रुपये

रामकथा पर आधारित उपन्यासों के बहुचर्चित कथाकार

नरेंद्र कोहली

द्वारा महाभारत को आधार बनाकर लिखे जा रहे उपन्यासों की
पांच खंडों में विभाजित श्रृंखला

महासमर

की पहली कड़ी के रूप में प्रस्तुत है

बंधन

महाभारत जीवन के व्यावहारिक पहलुओं से जुड़े उन विचारों का अथाह सागर है जिसका मंथन हमेशा नये से नया रत्न प्रदान करता है.

सारिका में बंधन के एक अध्याय के धारावाही प्रकाशन के बाद पाठकों द्वारा लगातार संपूर्ण उपन्यास के प्रकाशन की मांग उपन्यास की रोचकता, प्रामाणिकता और महत्व का सजीव उदाहरण है...

महासमर : एक–मूल्य : 125 रुपये

वाणी प्रकाशन

4797/5, 21-A, दरियागंज नयी दिल्ली-110002

दूरभाष : 276379

आठवें नयी दिल्ली विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर हिंदी की श्रेष्ठ एवं स्तरीय पुस्तकें एक जगह चुनने के लिए भारतीय भाषा मंडप में हमारे स्टाल पर पधारें और अपनी पसंद का साहित्य चुनें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्चित कृतियां : 'लाल पसीना', 'एक बीघा प्यार' (उपन्यास)
'खामोशी के चीत्कार' (कहानी-संग्रह).
संपर्क : महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरीशस.

अभिमन्यु अनत

अपने लोग

मंगरू ने चुनावों को आते-जाते देखा था. अपने अन्य साथियों की तरह उन सरगर्मियों में जी-जान से शामिल तो नहीं हुआ था और न ही अपने को उनसे एकदम अलग रख पाया था. उसने शुरू-शुरू में जो धारणा बनायी थी कि इस बार के चुनाव में वह अपने घर के भीतर बैठा रह जायेगा. किसी भी दल को अपना वोट नहीं देगा—वक्त के साथ बदल गयी थी. लालन से उसकी लंबी तकरारें हो जातीं और तब वह सिर्फ यही कहता रह जाता था कि क्योंकि बार-बार उन लोगों के द्वारा ठगे जायें.

और यही बात उस रात कोठी के सरदार ने भी कही थी.

"तुम लोग उस ओर वोट देकर ठगे जाते हो. पंद्रह वर्षों से तुम लोग लगातार उसी को वोट देते आ रहे हो पर वैसा करके तुम लोगों ने हासिल ही क्या किया?"

जो लोग सरदार के सामने हिम्मत करके बोल पाते थे वे बोले भी थे.

इसके बाद तो सरदार ऐसे-वैसे प्रश्न करने लग जाता कि किसी से उत्तर ही नहीं बन पड़ता था. और सरदार चिल्ला उठता था. लोग चुप रह जाते थे. और जाते-जाते सरदार एक बोतल शराब रनुआ के हाथ में छोड़ जाता था.

इस दो-हफ्ते पहले हुए चुनाव में सरदार मंगरू को अपने घर ले गया था फिर वहां से दोनों मालिक की कोठी में पहुंचे थे. उस कोठी में काम करते मंगरू का वह तीसवां वर्ष था पर उससे पहले वह मालिक के उस आलीशान घर के भीतर तो क्या उसके इर्द-गिर्द भी कभी नहीं पहुंचा था. उस भव्य इमारत के करीब पहुंच कर उसने सरदार से पूछा था.

"इतना बड़ा घर?"

"बाईस कमरे हैं इसमें."

जिस कमरे के भीतर उसे बिठाया गया उसके भीतर के सामान और दीवारों पर सजी चीजों को देखकर मंगरू के सवाल करने का साहस भी जाता रहा था. मालिक तो कोई बीस-तीस मिनट बाद ही उनके सामने आ पाया था. इस बीच सरदार मंगरू को यही बताता रह गया था कि इस घर की देखरेख के लिए जो ग्यारह नौकर थे वे ठाठ का जीवन जीने वालों में थे. पर अपने आपसे सवाल कर-करके भी मंगरू इस बात को समझ नहीं पाया क्योंकि यहां के दो नौकरों से तो उसकी अच्छी दोस्ती थी. मोहन तो इस घर में सात साल की उम्र से नौकर था. अपनी बड़ी बेटी की शादी के वास्ते गहने-लत्ते जुटाने में उसे इतना समय लग गया था कि उससे ऊब कर राधिया बिना गहने-लत्तों के रामधन के बेटे के साथ भाग गयी थी. और सनीचरवा तो आज भी मिलता है तो उसी से गुड़ की मांग लेने की आदत के साथ. लेकिन सनीचरवा को यह विश्वास था कि वह

जब उस पार्टी की ओर से कुछ इस तरह के छोटे-मोटे वायदे भी पूरे नहीं किये गये तो क्या कारण था कि वर्षों से लोग उस पार्टी के साथ ही जुड़े हुए थे. आखिर उस दूसरी पार्टी के प्रति इतना अविश्वास क्यों था लोगों को?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालिक के काम से अलग होगा तो उसे हिरणों के अहाते की बगल की जमीन से दो बीघा खेत मिलेगा.

सनीचरवा तो यह भी जानता था कि इस उम्मीद के साथ कई और लोग भी रहे पर अपने पर का विश्वास इससे कभी कम नहीं हुआ. वह तो मालिक का सबसे वफादार था. यही नहीं, अगर वह नहीं होता तो एक शाम अहाते का एक बारहसिंगा मालिक के पेट में अपने नुकीले सींगों को घुसेड़ देता.

उस घटना का एक गवाह तो खुद मंगरू भी था. हिरणों के शिकार का वह पहला ही सप्ताह था और मंगरू एकदम उसी मचान पर था जिस पर से सनीचरवा ने कूद कर मालिक की रक्षा की थी. आज सुबह की घटना के बाद मंगरू को ऐसा लगा था कि तीन वर्ष पुराना वह क्षण एकाएक दोबारा गुजरा था और इस बार बारहसिंगे के सामने मालिक नहीं बल्कि खुद वह था.... और .... और बारहसिंगे के सींग उसकी छाती को छलनी कर गये थे.

मंगरू जिस जगह पर अपने जेहन पर के भारी बोझ के साथ बैठ गया था, वह पूरे घंटे-भर तक उसी ठौर अपनी जेब की सारी सिगरेटों को फूंकता रहा. और जब डिब्बे की दसों सिगरेट समाप्त हो चलीं तो वह अपनी जगह से उठा और घर की ओर बढ़ गया. पगडंडी लंबी भी थी चक्करदार भी. एक चक्कर जब वह यह सोचता हुआ पूरा करता कि कसूर उसी का था. अगर वह मालिक की बात मान लेता तो यह नौबत नहीं आती. पर पगडंडी के दूसरे चक्कर पर वह खुद से पूछता हुआ ठिठक जाता कि आखिर उसका क्या कसूर था? बस यही कि उसने मालिक की हिदायत नहीं मानी थी.

उस दिन जब सरदार के साथ वह मालिक के घर पहुंचा था तो मालिक ने सबसे पहले उससे कई सवाल पूछे थे. उन सवालों में एक सवाल यह भी था.

''सचमुच मेरी कोठी के मजदूर तुम्हारी बहुत इज्जत करते हैं?''

''मेरी उमर की खातिर करते होंगे मालिक.''

''तुम्हारी हर बात मानते हैं.''

''हर बात तो नहीं मानते पर......''

''सुना है कि कई सालों से वे लोग तुम्हें ही बैठक का प्रधान बनाये चले आ रहे हैं.''

''मैं तो बार-बार कहता हूं कि यह मौका अब दूसरों को मिलना चाहिए. पर लोग मानते नहीं. चुनावों में लोग प्रतिनिधि बदलना चाहते हैं. मैं कहता हूं कि हमारी बैठक के लिए भी वैसा ही हो तो कोई मेरी बात सुनता ही नहीं. लोग मेरी हर बात मानते हैं पर यही एक बात....''

''लगता है कि तुम यह मान कर चलते हो कि वक्त के साथ बदलना अच्छा होता है.''

''वक्त के साथ तो बदलना ही चाहिए मालिक, नहीं तो वक्त आगे निकल जायेगा और हम पीछे छूट जायेंगे.''

''बस, मैं भी यह चाहता हूं कि तुम लोग पीछे मत छूटो. बीजें-सांजें आवेक लेता. तुम्हें इसीलिए बुलाया है मैंने. बीजें सांज़मां. बदलना चाहिए.''

''मैं भी तो यही कहता आ रहा हूं. मैंने अभी पिछले ही सप्ताह जगेशर से कहा कि अब बैठका के इस ओहदे को वह संभाले. मैं बहुत दिनों तक रह चुका परधान.''

''लेकिन मंगरू मैं तुम्हारे बदले जाने की बात नहीं कर रहा हूं.''

''मुझे इस उमर में अब थोड़ा आराम भी तो चाहिए मालिक. बैठक का काम बड़ी जिम्मेदारी का है. परसों की तो बात है. लीलावती की गाय के मर जाने पर पड़ोस के कई गांवों में घूम-घूम कर पैसा उगाहना पड़ा. और चूंकि मैं परधान हूं इसलिए मेरे बिना कोई जाने को तैयार नहीं होता...''

''देखो मंगरू-सा बान ची त्रावाई-सा. ये सब तो छोटे-मोटे काम हैं. होते रहेंगे. मैं चाहता हूं कि तुम सिर्फ इस छोटी-सी बस्ती की ही बात मत सोचो. इससे आगे की सोचो. पूरे देश की बात.''

''मालिक! पूरे देश की बात सोचने वाले तो बड़े लोग होते हैं.''

''उन बड़े लोगों को बनाने वाले तो तुम लोग होते हो. मैं चाहता हूं कि देश की भलाई के लिए तुम लोग भेड़ों की तरह सिर झुकाये झुंड के पीछे मत चलो. अब बदलने का समय आ गया. सांज़मां! तुम लोग बिना सोचे-समझे जिस पार्टी को वोट देते आ रहे हो वह पार्टी अब गलत लोगों के हाथों में आ गयी है. इसलिए तुम लोग अब उस दूसरी पार्टी के साथ चलो.''

''लेकिन मालिक ....!''

''मैं तुम सभी के हित के लिए कह रहा हूं. तुम लोग जिस पार्टी को वोट देते रहे हो उसमें अब खुदगर्जी आ गयी है. वे लोग शुरू की हुई लड़ाई को बेच चुके हैं. उनसे अब गरीबों और तुम्हारे लोगों का हित कुछ भी नहीं होने का. तुम्हें बस्ती के सभी लोगों को समझाना होगा. लोग आगे बढ़ रहे हैं. तुम लोग पीछे नहीं रह सकते.''

''लेकिन मालिक हम जिस पार्टी के साथ चलते हैं उसने हम लोगों के लिए बहुत काम किया है...''

''बहुत काम किया है इसीलिए महंगाई इतनी बढ़ गयी है.''

''अच्छी तरह से सोचो और देखो कल बस का किराया कितना था आज कितना है. पिछले साल जो लोग महीने में पानी के लिए पांच रुपये चुकाते थे आज पचास चुका रहे हैं.''

''लेकिन मालिक और कई बातों में...''

''एकूत ब्यें मंगरू! मैंने तुम्हें यहां इसलिए बुलाया है कि तुम मेरी बात को ध्यान से सुनो और जो कहूं वह करो. मैंने इसलिए नहीं बुलाया है कि तुम मुझ से बहस करो. यह जोजेफ बता रहा था कि तुम्हें अपने बेटे को नौकरी में लगाना है. मैंने जोजेफ से कह दिया है कि उसे इसी सप्ताह से कारखानें में रख लिया जाये. यह तो अजीब बात हुई कि हम तुम्हारे हित हर वक्त सोचें और तुम खुद अपने हित सोचने में आनाकानी करो.''

''मालिक जहां तक मेरी बात है मैं तो आपका हुक्म मानने को तैयार हूं लेकिन....''

''लेकिन क्या! तुम बैठका के प्रधान हो. बस्ती के सात सौ आदमियों में कोई भी तुम्हारे आदेश का पालन करने से इनकार नहीं कर सकता. चुनाव में केवल छः दिन बाकी हैं. मैं चाहता हूं कि तीन दिनों के भीतर तुम सभी को समझा कर उन्हें अपनी ओर कर लो. बस्ती का एक वोट भी इस बार इधर-उधर न होने पाये. हमारी बात मान ली गयी तो सभी को खुश किया जायेगा.''

आज चुनाव के बाद मंगरू खुद यह तय नहीं कर पा रहा था कि अगर सभी लोगों को खुश नहीं किया गया तो जिम्मेदार कौन होगा? क्या खुद वही नहीं? चुनाव के छह दिन पहले से वह लोगों से जिस बात के लिए मांग कर रहा था उसे ठीक चुनाव के दिन बदल कैसे दिया गया. क्यों लोगों से ठीक उसका उल्टा करने की मांग कर बैठा वह उस आखिरी घड़ी में. क्या अगर वह वैसा न करता तो आज पूरी बस्ती में इस तरह की आशंका इस तरह की उदासी और इस तरह की हताशा फैली हुई होती. तभी तो कल ही लोगों ने चुनाव में जीत की खुशियां मनायी थीं और आज सुबह यह हो गया.....

उस चेतावनी को मालिक की ओर से कोठी के प्रमुख सरदार मंगरू को सुनाया गया था. वह चेतावनी नहीं थी. मालिक का निर्णय था. सरदार की आवाज थी. ''मंगरू तुमने मालिक से वायदा करके उससे गद्दारी की. अब परिणाम खुद तो भोगोगे ही साथ ही साथ उन सभी का भी भविष्य बिगाड़ गये जो तुम्हारी गद्दारी में तुम्हारे साथ शामिल हुए.''

ये तो सरदार के आखिरी दो वाक्य थे. इन दो वाक्यों से पहले तो पंद्रह मिनटों तक वह बोला था. मंगरू के घर के पास दो-तीन लोगों ने बात सुनी थी पर दूसरे ही मिनट बाद पूरे गांव में बात जगल की आग की तरह फैल गयी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फारसी लोक कथा

जमानत

एक व्यापारी काम से कहीं बाहर जाते हुए अपने नौकर से कह गया, "किसी भी ग्राहक को कुछ भी उधार मत देना."

जब वह बाहर था तो दुकान में एक ठग आया. उसने लगभग एक हजार तोमन का सामान खरीदा. अदायगी के वक्त बोला, "मैं पूरा बिल कल अदा कर दूंगा."

नौकर कुछ सोचकर बोला, "पर मैं तो तुम्हें नहीं जानता. पहचानूंगा कैसे! मालिक की यह अंगूठी ले जाओ और उंगली में पहन लो, जिससे मैं तुम्हें अगली बार मिलने पर पहचान सकूं."

अंगूठी बहुत कीमती थी. ग्राहक ने पहन ली पर नौकर को उसे पहचानने का मौका नहीं मिला. □

जगमोहन बलोही

"बस्ती के तीस लोगों को नौकरी से हटाया जा रहा है."

"मंगरू चाचा के साथ-साथ और भी कुछ लोगों को कोठी के घर तक छोड़ जाने का आदेश मिला है."

"यह सब केवल इसलिए कि हमने मालिक की बात नहीं मानी."

बस्ती की सभी औरतें चुप थीं. भयभीत थीं. तय नहीं कर पा रही थीं कि जो कुछ किया गया वह सही था या गलत. सवाल उठे. सोहन की पत्नी ने सवाल उठाया था. "हम लोग मालिक की बात मान लेते और उस दूसरे दल को वोट दे देते तो कौन-सा अनर्थ हो जाता."

सनीचरवा की औरत भी सामने आ गयी थी. "हां .. हां कम से कम यह नौबत तो नहीं आती."

मंगरू की पत्नी को सबसे बाद बोलना ही पड़ा: "वैसा करके हम लोग अपने ही पांवों कुल्हाड़ी मार लेते."

"मार लेते. अरी यहां तो मार चुके. और यह सभी कुछ मंगरू चाचा की बातों में आ जाने के कारण."

यही सुनकर मंगरू बस्ती से दूर नदी किनारे आ बैठा था. अब घर को लौटते हुए सोच उठा कि अगर वह मालिक के पास जाकर माफी मांग ले तो क्या बात बन जाने की गुंजाईश नहीं. उसने जब इस बात को रमेशार के सामने रखा तो उसने कहा कि मालिक को मना पाना असंभव था क्योंकि वह उसकी उस नाराजगी को अपनी आंखों देख आया था. रमेशार ने तो यह भी कहा कि अगर मालिक का बस चले तो वह बस्ती में आग लगा दे.

"मंगरू चाचा!मालिक की उस पार्टी को तो हमारी पार्टी ने हराया है मगर मालिक तो यह समझ रहा है कि उसकी भी हार हुई है और वह अगर हारा है तो अपनी ही कोठी के मजदूरों से. मैं तो कहूंगा कि तुमने भूल की उसके सामने जाने की बात सोचना."

"क्यों सूली चढ़ा देगा क्या?"

"नहीं तो!"

"तो फिर?"

"गोली दाग सकता है..."

और उस शाम हिरणों के अहाते से बाहर की पहाड़ी से बेसुमार गोलियां चलने की आवाज आयी थी. रात में रामायण पाठ के लिये इकट्ठे हुए लोगों के बीच बैठक में चर्चा हुई कि मालिक सात बंदूकों की गोलियों को हवा में छोड़ कर अपने को शांत कर पाया था.

सप्ताह भर बस्ती के लोग सहमे हुए रहे. काम से हटाये जाने या बस्ती से निकाले जाने में किसी का नाम आ सकता था. पर जब सप्ताह बीत गया और इस तरह की कोई बात नहीं हुई तो लोगों ने राहत की सांस लेनी शुरू की. आपस में बातें हुईं और यह समझा गया कि मालिक का क्रोध वक्त से साथ पिघल गया.

पर लोगों का ऐसा सोच जाना गलत था. ठीक दसवें दिन बाद कोठी का प्रमुख सरदार बस्ती के ही कुछ खास लोगों के साथ जिनमें रनुआ, सोहन, सनीचरवा और रमेशर भी शामिल थे आकर बैठक के सामने खड़े हो गये. जेब से फहरिशत निकाल कर पहले तीस आदमियों के नाम सुनाये फिर एक दूसरी सूची से सात आदमियों के. वह मंगरू था जिसका नाम इन दोनों फहरिश्तों में पहले आया था. नाम सुना चुकने के बाद उसने कहा. "इन पहले तीस व्यक्तियों को कोठी की नौकरी से हटाया जा रहा है और दूसरे सात आदमियों को यह आदेश दिया जा रहा है कि वे तीन दिन के भीतर कोठी के घर को खाली कर दें वरना सारा सामान बाहर फेंक दिया जायेगा."

लोगों को इस सूचना से कहीं अधिक हैरानी इस बात से हुई कि जब बैठक के आगे, मजदूरों को यह सूचना सुनायी जा रही थी और आदेश दिया जा रहा था तो रनुआ, सोहन, सनीचरवा और रमेशर उस ओर खड़े थे जिस ओर से सरदार सूचना सुनाकर आदेश दे रहा था.

रात भर मंगरू अपने बिस्तर पर अकुलाइट दे जाने वाले सवालों के रेले में छटपटाता रहा. उस गुंजलक में उपाय तलाशता रहा, लेकिन गुंजलक और अंधेरे की साजिश में रोशनी भी अदृश्य रह जाती होगी. ऐसी स्थिति में टटोल कर भी कुछ पा सकना नितांत असंभव था. आधी रात को उसे उसी तरह करवटें लेते देख उसकी पत्नी जो कि जमीन पर ही बिस्तर में अपने पोते के साथ सोयी थी उठी, बत्ती जलायी और मंगरू के पास पहुंचकर धीरे से बोली.

"अभी तक सो नहीं पाये?"

"तुम भी तो जाग रही हो."

"एक काम किया जा सकता है."

"क्या?"

"कानून."

"कैसा कानून?"

"इतनी आसानी से हमें इस घर से तो नहीं निकाला जा सकता."

"निकाले जा चुके हैं. तीन दिन की दया पर टिकाये गये हैं."

"तुम लोग मजदूरों के रक्षक या न जाने क्या बातें करते रहते हो. उन लोगों की मदद ऐसे मौकों पर न मिले तो फिर..."

"तुम जाकर सो जाओ भानू."

"एक और बात है. शाम को मैंने कुछ लोगों से सुना कि जिन तीन आदमियों को हमने वोट दिये हैं उनमें से एक मंत्री बनाया गया है. क्यों न तुम लोगों के साथ उससे मिलकर..."

"जा सोजा भानू!"

तब उसकी पत्नी बत्ती बुझा कर अपने बिस्तर पर चली गयी तो मंगरू के जेहन में एक खटका-सा हुआ. उसे लगा कि भानुमती जो कह गयीं वह एकदम खोखली बात नहीं थी. वह उठ बैठा. तकिये के नीचे टटोला पर डिबिया वहां न थी. सिगरेट कशों को सुलगा कर उसने डिबिया को कोने में फेंक दिया था. उसे एक सिगरेट या कम से कम दो-तीन कशों की सख्त जरूरत महसूस हुई पर पाना असंभव जानकर फिर से चारपाई पर लेट गया. अपनी पत्नी द्वारा सुझायी बात को सोचता रहा... सोचता रहा जब तक कि नींद न आ गयी. लेकिन नींद के आ जाने से पहले ही उसने तय कर लिया था कि सुबह उठते ही किन-किन लोगों से सीधे मिलना था.

पर चूंकि वह बहुत देर सोया था इसलिए निर्धारित समय पर न उठकर उस वक्त उठा जब घर के बच्चे जागकर शोर शुरू कर चुके थे. उठते ही उसे वक्त का ख्याल आया तो वह बिन मौलिक आवश्यकताओं को पूरा किये झपट पड़ा उन व्यक्तियों के घर की ओर जिनसे सोते में मिलने की बात ठानी थी. सौभाग्य से उसे दोनों मिल गये. लोचन भी और गफूर भी. दोनों से बहुत थोड़ी-सी बात करके उसने उन्हें अपने साथ चलने को मना लिया.

नौ बजे से पहले ही तीनों घर से निकल पड़े. उनकी बस्ती से पड़ोस का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांव आधे मील के फासले पर था जहां से शहर के लिए बस पकड़ी जा सकती थी. उनकी अपनी बस्ती तक बस ले जाने के वायदे तो उन्हें कई वर्षों से मिल रहे थे पर वह बात केवल चुनाव के वक्त हुआ करती थी. रास्ते में आपस की बातों के बीच भी मंगरू यह सोच जाने को विवश था कि जब उस पार्टी की ओर से कुछ इस तरह के छोटे-मोटे वायदे भी पूरे नहीं किये गये तो क्या कारण था कि वर्षों से लोग उस पार्टी के साथ ही जुड़े हुए थे. आखिर उस दूसरी पार्टी के प्रति इतना अविश्वास क्यों था लोगों को? लोग उस पार्टी से जिस भय को महसूसते थे वह भय क्या था? इसको लेकर कई तरह की बातें होती लेकिन उनमें से बहुत कम बातों को मंगरू समझ पाता. उसने अपने आपसे एक सवाल कर ही लिया, 'ऐसा क्या हो जाता अगर हम उस दूसरी पार्टी को वोट देकर उसे जिता जाते तो? वही जो कुछ लोग कहा करते हैं. कि हमारे अपने लोगों की तबाही!' मंगरू ने फिर से अपने आपसे सवाल किया.

"पर ये अपने कहने वाले भी चुनावों में बाद परायों से ज्यादा पराये बन जाते हैं तो फिर?"

लोचन के आकस्मिक प्रश्न ने उसे अपने प्रश्न से रिहा किया.

"तुम्हें विश्वास है कि हमें उनसे मिलने दिया जायेगा?"

"इसी लिये तो तुम्हें साथ लिया हम लोगों ने. चुनाव की रात उन तीनों ने तुम्हारे यहां खाया-पिया था. इतनी जल्दी उस बात को थोड़े ही भूल जायेंगे."

"मुझे तो अभी भी विश्वास नहीं होता कि उन लोगों ने मेरे यहां खाना खाया था. लगा था कंगाल के घर राजा खाने पहुंचा था."

"ऐसा नहीं करते तो हमारे साथ सवाल करते रहने वाले कुछ लोग यह कैसे मानते कि वे तीनों किसी भी जात-पांत के भेद भाव को नहीं मानते!"

"पर मंगरू चाचा क्या सचमुच वे लोग इस तरह के भेदभाव को नहीं मानते?"

"मैं तो लोचन इतना जान सका हूं कि चुनावों के समय तो ऐसा ही होता है. बाकी ऊपर वाला जाने."

पूरे घंटे बाद उन्हें शहर की बस मिली.

शहर के मंत्रालयों के गलियारे में पहुंचकर पूरे तीन घंटे बाद उन्हें उस दरवाजे तक भेजा गया जहां वे अपने इलाके के नये प्रतिनिधि और श्रम मंत्री से मिलने की उम्मीद रखे पहुंचे थे. दरवाजे से बीस-तीस फुट पहले ही पुलिस सिपाही ने उन्हें चौथी बार के लिये रोका. मंगरू ने जब उसे अपने चुनाव इलाके का नाम बताया तो सिपाही ने तीनों आदमियों को एक दूसरे दरवाजे की ओर संकेत किया जो मंत्री के दफ्तर के सामने पड़ता था. वह दरवाजा अधखुला था. तीनों को झांकते पाकर भीतर के आदमी ने आवाज देकर उन्हें भीतर आने को कहा. तीनों भीतर पहुंचे. कमरे में एक छोटी-सी मेज थी. एक ही कुर्सी थी जिस पर वह दाढ़ी वाला आदमी बैठा था. उसने प्रश्न आरंभ किया.

"तुम लोग कहां से आये हो? क्यों आये हो? अपॉइंटमेंट है?"

मंगरू ने प्रश्नों के जो जवाब दिये उससे वह तनिक भी प्रभावित नहीं दीख पड़ा. और भी कई प्रश्न कर दिये. उत्तरों की पूरी प्रतीक्षा किये बिना फिर धड़ाधड़ बोल गया.

"मंत्री जी को पंद्रह मिनट बाद मंत्रिमंडल की बैठक में जाना है. दो बजे के बाद से वे विदेशों से आये प्रतिनिधियों के बीच होंगे. उसके बाद उनको पत्रकारों से मिलना है. फिर टेलीविजन के लिए इंटरव्यू देना है."

वह जब चुप हुआ तो मंगरू ने लोचन की ओर बताते हुए कहा, "चुनाव की रात मंत्री जी ने अपने दोनों मित्रों के साथ इसी के यहां भोजन किया था."

"बड़ी किस्मत वाले हो भाई."

"जी!"

"मंत्री जी को दोबारा दावत देने आये हो क्या?"

"बात यह नहीं..."

"तो फिर बात क्या है?"

"हमें उनसे एक जरूरी काम से मिलना है. हमें उनकी मदद की अत्यंत ही आवश्यकता है."

"अभी तो पांच साल हैं भाई. दम तो लेने दो उन्हें. पांच दिन नहीं हुए और तुम लोग आये उन्हें नोचने-बकोटने."

"हम हाथ जोड़ते हैं भाई हमें उनसे दो-मिनट के लिए मिलने दें."

"कहा न बाद में आना."

"हम लोग बहुत-ही नाजुक स्थिति में हैं. हमें आज ही मिलना चाहिए वरना हम कोठी से निकाल दिये जायेंगे. हमने साहब को वोट दिया इसीलिये हमारे ऊपर जुल्म ढाया जा रहा है. आप हमें उनसे मिला दें."

"कहा न वे खाली नहीं हैं, और फिर मंत्रियों से मिलने का यह कौन-सा तरीका है?"

"हम लोग सुबह ने बिन खाये-पीये इन गलियारों में भटक रहे हैं. कृपया हमें उनसे बस दो मिनट मिलने दीजिये."

"तुम तीनों मेज पर के उसे डिब्बे को देख रहे हो?"

"हां."

"फ्रेंच पढ़ना जानते हो?"

"नहीं."

"अफ्रीका के भुखमरों के लिये तहसील की मांग है. अभी आध घंटे पहले मंत्रीजी से मिलने से पहले एक आदमी इसमें दो सौ रुपये डाल गया है."

"लेकिन हमारे पास तो...."

"तुम लोगों के पास होगा भी कहां से इतना पैसा. खैर जो भी है डाल सकते हो." तीन व्यक्तियों ने अपनी अपनी जेबों से पैसे निकाले. बस का किराया गिनकर दस रुपये अलग कर लिये और बाकी पैंतीस रुपयों को उस दाढ़ी वाले के आगे कर दिया.

"ए ए यह क्या कर रहे हो. मैं तुम्हारा पैसा लेकर क्या करूंगा. डिब्बे के मुंह में डालो और यहीं ठहरो. मैं देख आता हूं कि मंत्रीजी तुम लोगों से मिलने की स्थिति में हैं या नहीं.

लोगों ने पैसे गुल्लक में छोड़ दिये.

वह आदमी दूसरे ही मिनट लौट आया.

"देखो! मंत्रीजी तुम लोगों को केवल दो मिनट दे पायेंगे. आओ मेरे साथ." तीनों की आंखें अचानक चमक उठीं. वे उस आदमी के पीछे हो गये. मंत्री के दफ्तर में पहुंचे. मंत्री अपने सचिव को कुछ लिखवा रहे थे. तीनों की ओर देखे बिना ही पूछा, "कहां से आये हो?"

अपने सूखे मुंह से बाकी थूक को निगल कर मंगरू ने लोचन की ओर संकेत करते हुए कहा, "साहब, आपने चुनाव की रात इसी के यहां खाना खाया था."

अपनी जगह से उठते हुए मंत्री ने अपने सचिव से कहा.

"आई एम लेट फोर दी काबिनेट मीटिंग. तुम ऐसा करो इन लोगों से बिल लेकर इनका पेमेंट कर दो."

फिर उसने तीनों की ओर देखा और कहा, "ओके! आपको पैसे मिल जायेंगे. आप लोग मेरे पी.एस. को बिल दे दीजिये."

"लेकिन साहब हम..."

तब तक मंत्री दरवाजे से बाहर मंत्रालय के गलियारे में दूर निकल चुका था और दाढ़ी वाला अंगरक्षक उसके पीछे हो गया था. □

चलते-चलते

एक गणितज्ञ ऐसी लड़की से प्यार करने लगा जिसके चेहरे पर भूरे-भूरे धब्बे थे. लड़की ने गणितज्ञ से पूछा ये धब्बे तुम्हें परेशान तो नहीं कर रहे.

गणितज्ञ ने कहा, "नहीं बिल्कुल नहीं, मुझे तो डेसीमल प्वाइंट्स से बहुत प्यार है." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी पीढ़ी के उल्लेखनीय हस्ताक्षर.
संपर्क : 696, सैक्टर 11- बी, चंडीगढ़-160011

वीरेंद्र मेंहदीरत्ता

डायलिसिस

जब अचानक पता चला कि शुक्रवार को छुट्टी है, बहुत खुश हुआ, चलो-एक कैजुअल लीव बच गयी! क्योंकि शुक्रवार को ही मेरी ताई का डायलसिस था और मेरा दिल्ली पहुंचना बहुत जरूरी. हर डायलसिस के समय घर में किसी आदमी को खून देना होता है. मैंने ही कहा था कि इस बार ताई के डायलसिस के समय खून मैं दूंगा. ताई ने मां की तरह से ही मुझे प्यार दिया था. असल में मेरे जन्म के बाद से ही मां बीमार रहने लगी थी. और मेरे होश संभालने से पहले ही मां का देहांत हो गया था. मां जैसा लाड़ प्यार इस ताई ने ही तो दिया था!

... पर थोड़ी देर बाद जब पता चला कि जिस शुक्रवार को मात्र एक छुट्टी मानकर खुश हो रहा था, वह छुट्टी, गुरु तेग बहादुर के शहीदी दिवस की है -- मन ही मन बहुत-सी शर्मिंदगी और आत्म-ग्लानि महसस हुई. पंजाब की इतनी बड़ी हस्ती का शहीदी दिवस और आज मेरे लिए उसका महत्व केवल इतना रह गया है कि इस दिन छुट्टी रहती है और मैं अपने घरेलू कामकाज निपटा सकता हूं.

कुंछ ऐसी शर्मिंदगी आज से लगभग दस साल पहले अपने मित्र प्रेमसागर शास्त्री के घर हुई थी. उनके ड्राईंग रूम में पलथी मारे सौम्य संत के चेहरे पर शौर्य का जलाल देखकर, उस ओर आकर्षित हुआ और बड़े आत्मविश्वास के साथ बोला, ''गुरु गोबिंद सिंह का ऐसा भव्य चित्र तो मैंने आज तक नहीं देखा. अद्भुत!''

''यह चित्र गुरु गोबिंद सिंह का नहीं, गुरु गोबिंद सिंह के पिता गुरु तेग बहादुर का है.'' उस दिन भी इतना शर्मसार हुआ था कि बता नहीं सकता. असल में तब तक सिख गुरुओं में मेरा परिचय सिर्फ गुरु नानक देव और गुरु गोबिंद सिंह तक ही था. उस दिन पहली बार पता चला था कि कैसे गुरु गोबिंद सिंह के पिता गुरु तेग बहादुर ने काश्मीर के ब्राह्मणों की रक्षा हेतु अपना सिर कटवा दिया था.

एक शर्मिंदगी महसूस करते हुए भी यह आज भी समझ नहीं आ रहा कि औरंगजेब की आक्रामक धर्मांधता से टकराने वाले गुरु तेग बहादुर सिर्फ सिखों के ही पूजनीय कैसे रह गये? इस्लामी धर्मांधता से हिंदू धर्म की रक्षा करने वाला यह बलिदानी हिंदुओं की मानसिकता का अंग क्यों नहीं बना? क्यों नहीं पंजाब के प्रत्येक निवासी को गुरु तेग बहादुर जैसे उदात्त बलिदानी से प्रेरणा मिलती? क्यों प्रत्येक पंजाबी के लिए संत-सिपाही गुरु गोबिंद सिंह वीरता और शौर्य के आदर्श नहीं बन पाये?

सवालों की इस लड़ी में और भी बहुत से सवाल जुड़ने लगे हैं.

जिन धर्मशालाओं में मेरी मां जाया करती थी, वे आज लुप्त क्यों हो गयीं?

धर्मशाला के गुरुद्वारे बनने में कौन-सी राजनीति काम कर रही थी?

''सत्ता की राजनीति और राजनीतिज्ञों के क्षुद्र स्वार्थ, इंसानी रिश्तों पर कितनी चोट पहुंचा रहे हैं, उन्हें मालूम ही नहीं. अब मेरे जैसा आदमी क्या करेगा जिस के पापा केशधारी सिख हैं और पिता तथा चाचा हिंदू.''

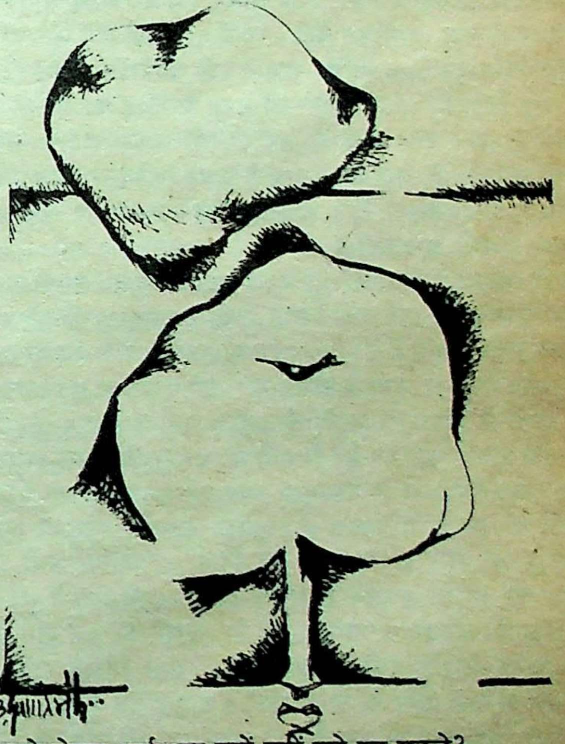

गुरद्वारे केवल धर्मस्थल क्यों नहीं बने रह सकते?

अगर आज मेरी मां जिंदा होती, तो क्या करती?

कहां जाती?

अपनी मां की बोली को मैंने और मेरे परिवार के लोगों ने मां-बोली के रूप में क्यों नहीं स्वीकार किया?

क्यों, इस मां-बोली की दुहाई देकर सत्ता के भूखे, छोटी सोचवाले नेताओं ने पंजाब को काट-पीटकर इतना छोटा कर दिया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनी कथा

पत्नी प्रेम

जेंग जियांग अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता था. पत्नी सुंदर थी पर उसके माथे पर एक निशान था जिसे वह एक पर के नीचे छुपाए रहती थी. तीन साल तक जियांग को वह निशान नहीं दीखा. पर एक रात जैसे ही पत्नी ने पर हटाया जियांग को निशान दीख गया. उसे इतना दुख हुआ कि वह सारी रात नहीं सो सका. और जोकि पत्नी ने तत्काल उस निशान को ढक लिया पर इसके बाद वह अपनी पत्नी को प्रेम नहीं कर सका. □

मुझे लगा कि भारत की आजादी पंजाब को माफिक नहीं आयी. विभाजन के बाद का जख्म अभी मुश्किल से भरा ही था कि लोकतंत्र के लिजलिजे-लीडरों, भिनभिनाते मंत्रियों, लार टपकाते विधायकों तथा पिनपिनाते सांसदों की फौज ने इस खुशहाल पंजाब को बीमार कर दिया है. सत्ता की राजनीति और राजनीतिज्ञों के क्षुद्र स्वार्थ, इंसानी रिश्तों पर कितनी चोटें पहुंचा रहे हैं, उन्हें मालूम ही नहीं. अब मेरे जैसा आदमी क्या करेगा जिसके ताया केशधारी सिख हैं और पिता तथा चाचा हिंदू. अर्से तक मेरी भी समझ में यह बात नहीं आयी थी, हम सब हिंदू और सगे ताया सिख? पिताजी ने बताया था कि हमारे दादा के परिवार में शादी के पांच साल बाद तक जब कोई संतान न हुई तो दादी ने धर्मसाल जाकर मन्नत मानी थी, अगर पहला बेटा हुआ तो उसे सिख बनाऊंगी. उन दिनों बेटे को सिख बना देने का मतलब होता...यह बेटा जाति की रक्षा के लिए मैंने समाज को अर्पित किया...और अब यह हालत यह है कि दिल्ली में ताया कृष्ण सिंह के परिवार के सभी लोग घबराये हुए हैं --- कि अब उनका क्या बनेगा? उधर जालंधर में बसे चाचा नानक चंद के घर वाले भी कम आतंकित नहीं -- कब कहां क्या होने जा रहा है? मेरे अस्सी वर्षीय बूढ़े पिता गोबिंद राम ने इसी घबराहट में सन् चौरासी में दम तोड़ दिया कि कहीं लाहौर की तरह चंडीगढ़ का मकान भी हमें छोड़ना न पड़े. देखा जाये तो हर पंजाबी अपने आपको असुरक्षित महसूस कर रहा है; चाहे वह पंजाब से बाहर रहनेवाला सिख पंजाबी हो या पंजाब में रहनेवाला हिंदू पंजाबी. चाहे वह गुमराह धर्मांध हो या स्टेनगन संभाले आतंकवादी.

इन्हीं सब बातों को सोचते हुए बस स्टैंड तक पहुंचा. बस में पांव रखते ही एक अजीब-सी दहशत होने लगी. अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ जब होशियारपुर में बसों में से निकालकर आतंकवादियों ने बेकसूर लोगों का खून किया था. जिन सुनक्खे नौजवानों ने इस धरती को खुशहाल बनाना था, खेतों में हरियाली लानी थी, आज वही इसे खून के धब्बों से चितकबरा क्यों कर रहे हैं? जिंदगी को भरपूर जीनेवाले शमले पहने और रंगीन पगड़ियों से पंखानुमा ऊंचे तुर्रे लगाए भंगड़ा डालनेवाले पंजाब के सुनखे नौजवानों ने आखिर क्योंकर स्टेनगन पकड़कर बेगुनाहों का खून करना शुरू कर दिया? ...आखिर क्यों उन्मुक्त जीवन की अपेक्षा इन्होंने खतरों से घिरी भागने-छिपने की जिंदगी अपनायी है? शायद वे नहीं जानते कि धरती पर पड़े खून के दाग, पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों नसों में बहते खून में जहर घोलते रहेंगे.

"खून में मिले जहर को साफ करती है डायलसिस मशीन." ताया जी ने समझाते हुए कहा था, खून में जब टाक्साईस की मात्रा इस कदर बढ़ जाती है कि गुर्दे उसे पूरी तरह साफ नहीं कर सकते तो किडनी का काम करने वाली डायलसिस मशीन से खून को साफ किया जाता है. जांघ के पास से एक नस को काटकर खून उस डायलसिस मशीन में लाया जायेगा और साफ खून को कोहनी के पास दूसरी नस को काटकर शरीर में डाल दिया जायेगा. इस सारी प्रक्रिया को ही डायलसिस कहते हैं. यह समझाते हुए ताया जी के चेहरे पर चमक थी और आंखों में उम्मीद. ताया जी को पूरा विश्वास था कि डायलसिस होते ही ताई बिल्कुल ठीक हो जायेगी.

... पंजाब में चुनाव के बाद लोकप्रिय सरकार बनते ही सब के मन में उम्मीद जागी थी कि अब कोई न कोई हल सामने आयेगा. इसी उम्मीद के बल पर ही डा. मनजीत कौर ने सालों काट लिये थे. डा. मनजीत कौर यूनीवर्सिटी, वील चेयर पर पढ़ाने आती थी. जून 4, 1984 की तिथि उसे अच्छी तरह याद है, क्योंकि उसी दिन दुर्घटना का शिकार हुई थी. रीढ़ की हड्डी टूट गयी और अब कमर के नीचे का सारा शरीर पैरालाईज्ड. मनजीत कौर अपने विभाग की ही नहीं, पूरी यूनिवर्सिटी में, अपने विद्यार्थी काल से हीर के नाम से पहचानी जाती थी. उसकी सानुपात देह यष्टि तो खूबसूरत थी ही --- पर असल खूबसूरती उसकी चाल में थी -- हल्के पांव से झटक-झटककर चलना और अब उसकी टांगें बेजान हो चुकीं थीं. अब उन बेजान टांगों को हील-चेयर के साथ बांधकर रखना पड़ता है. खूबसूरती पर मान करने वाली हीर को अपंग होकर जीना होगा....... और यह उसे स्वीकार नहीं था....... और उसने आत्महत्या करने की कोशिश की....

पंजाब भी एक दुर्घटना का शिकार हो गया है और हील चेयर पर है...... अगर इसी तरह चलता रहा तो क्या यह रास्ता आत्महत्या की ओर नहीं ले जायेगा.......

... बस की हत्याओं और मनजीत कौर की आत्महत्या का ध्यान आते ही डर तेज चाकू की तरह भीतर खरोचने लगा. पर यह सोचकर तसल्ली हुई...इस तरफ कोई खतरा नहीं. बस नान स्टाप है और पांच घंटों में दिल्ली पहुंचा देगी... आवागमन के इन तेज साधनों के कारण प्रदेशों के बीच दूरियां कम हो गयी हैं...छत्तीस घंटों में आप जेट प्लेन से दुनिया के किसी कोने में पहुंच सकते हैं...... कितने नजदीक आ गये हैं सभी देश!

देश नजदीक आये हैं. विश्व एक कुटुंब है, अब वह कल्पना साकार हो सकती है..... पर क्या यह साकार होगी? क्योंकि इनसान तो एक दूसरे से दूर हटते जा रहे हैं --- इसलिए, वे हिंदू हैं, मुसलमान हैं, सिख हैं, बंगाली हैं, गोरखा हैं, तमिल हैं, गुजराती हैं, मराठी हैं, अमरीकी हैं, रूसी हैं. असल में राजनीतिक हितों के बोझ में इनसानी सरोकार हमेशा से दबते चले आ रहे हैं; पर सवाल तो यही है कि क्या हमेशा दबते रहेंगे?

यह इंसानी सरोकार ही तो है जिसकी वजह से दिल्ली आया हूं. कल ताई का डायलसिस है, सुबह राजेंद्र नगर तो आना ही होगा, पर सोचता हूं, दिल्ली आया हूं तो बड़े भाई का हाल भी पूछता जाऊं. बस से उतरकर सीधे बड़े भाई के घर कैलाश कालोनी पहुंचा. भ्राजी हम भाईयों में सबसे बड़े हैं. पिछले हार्ट अटेक के बाद से दिन-ब-दिन कमजोर होते जा रहे हैं. पिछले खत में भरजाई ने लिखा था, जबान भी लड़खड़ाने लगी है और बिना सहारे चल भी नहीं सकते. बेटों के सहारे की जरूरत ऐसे ही वक्त हुआ करती है. इन का इकलौता बेटा दूर हैदराबाद में बैठा है और संयोग की ही बात है कि जब इन्हें उसकी जरूरत महसूस हुई है --- वह स्वयं किसी न किसी परेशानी में फंसा रहा है : कभी अपनी फैक्ट्री की और कभी बच्चों की. हार्ट अटैक का तार भेजा और हफ्ते बाद पहुंचा. भ्राजी की सभी तकलीफों के समय बेटी मीरा और दामाद विनय ने पहुंचकर खूब जमकर सेवा की है. बेटा मनोहर स्वयं कभी वक्त पर तो पहुंचा नहीं, पर हैदराबाद बैठे-बैठे ही घबरा गया कि कहीं दिल्लीवाला मकान भ्राजी मीरा और विनय के नाम ही न लिख दें. इसलिए इस बार जब उसे पता चला कि भ्राजी की तबीयत ज्यादा खराब हो रही है, उसने अपने बड़े बेटे राज कुमार और बेटी कामना को दिल्ली रहने के लिए भेज दिया.

जिस वक्त से मैंने घर में पांव रखा था, भ्राजी लड़खड़ाती जबान से सिर्फ एक ही बात दुहरा रहे हैं, "इन्हें कहो कि यहां से चले जायें."

भ्राजी बहुत कोशिश के साथ बोलते हुए कह रहे थे, "शरीर का क्या है...... इसने तो मिट्टी में मिलना ही है...... पर इस मकान को लेकर बहिन भाई आपस में लड़ पड़ें तो सब कुछ मिट्टी में मिल जायेगा."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात भाजी की सुन रहा था पर मन ही मन सोच रहा था, पंजाब में भी तो ऐसा ही हो रहा है.

भाजी बहुत बोल नहीं सके पर उनकी बेबसी और छटपटाहट उनके चेहरे और आंखों से प्रकट हो रही थी; भरजाई जी बार-बार रो रही थीं और बोले जा रही थीं, "इन दोनों ने तो सारे घर में आतंक फैलाया हुआ है; किसी की बात नहीं सुनते, मनमानी करते हैं. सुबह दुपहर शाम की कोई तमीज नहीं. राजकुमार तो रात को जाता है, सुबह आता है, कौन-सी नौकरी करता है जिसके लिए उसे रात को ही जाना पड़ता है. मुझे तो डर लगता है, कहीं कोई उल्टा सीधा धंधा न करता हो....... कहीं पुलिस ही न पकड़ ले जाये." .....

समझ में नहीं आ रहा था कि भरजाई को तसल्ली भी दूं तो किन शब्दों में. सुबह लौटते समय सिर्फ इतना कह सका. "धीरज रखें, वक्त आने पर सब ठीक हो जायेगा. वक्त ही कोई हल निकालेगा."

वक्त ही कोई हल निकालेगा, पंजाब के लिए तो यह बात और भी सही है. वह सोचते हुए मैं ताई जी के घर जाने के लिए सुबह-सुबह बस स्टैंड के पास आया. मुझे समझाया गया था कि नयी दिल्ली में बसों पर यात्रा करने का सबसे आसान तरीका है कि सचिवालय के रास्ते से ही जाया जाये.

सचिवालय पहुंच गया. सचिवालय के पास संसद भवन है और संसद भवन के पास रकाबगंज गुरुद्वारा. क्योंकि आज गुरु तेगबहादुर का शहीदी दिवस है इसलिए गुरुद्वारे के सामने नीली, जोगिया, लाल पगड़ियां तथा पटके पहने सिखों के अनेक जत्थे खड़े हैं. आस-पास चारों ओर खाकी वर्दी में सी.आर.पी.एफ. के सिपाही हाथ में लाठियां, कनकी बनी ढालें, राईफलें, स्टेनगन तथा वायरलैस सेट लिए घूम रहे हैं. जत्थों में खड़े सिखों ने किरपानें लटकायी हुई हैं, पर उनकी आंखों मे भय और दहशत है. जालंधर के अटारी बाजार के मुहल्ले में हिंदुओं की भी ऐसी ही दशा देखी थी; ऐसा ही डर और इसी तरह समूह में एक साथ घूमने की प्रवृति.

संसद और गुरुद्वारा आमने-सामने डटे हैं और बीच में इंसान...डरा हुआ है, अभिशप्त है : क्योंकि राजनीति और धर्म दोनों मिलकर उसे डरा रहे हैं. धार्मिक कठमुल्लापन और राजनीतिक षड्यंत्रों के दाव-पेचों में युवाशक्ति उलझ गयी है...... और अब गुरुद्वारों में ही धर्म और राजनीति का गठबंधन कैसे, सारी स्थिति को विस्फोटक बना रहा है.

ताई को डायलसिस के लिए जाना है. ताई निस्तेज चारपाई पर लेटी है उनकी आंखों में भी वैसा ही डर और घबराहट है; पता नहीं क्या होने जा रहा है. एक लाचारी और निरीहता. मुझे देखकर ताई के चेहरे पर एक म्लान की मुस्कान खिल उठी; जब ताई असली घी की पिन्नियां बनाकर होस्टल-भेजतीं, और छुट्टियों में दिल्ली आकर ताई के "पैरी पौना" करते हुए धन्यवाद करता -- तब भी ऐसी ही मुस्कान उनके चेहरे पर रहा करती. आस-पास के सभी सगे संबंधियों और मिलनेवालों पर ढेर सारा प्यार लुटाने वाली ताई की आंखों से इस समय वात्सल्य छलक रहा था; उमर भर इसी भाव को ताई ने जिया था; गुरबानी की ये पंक्तियां ताई को बहुत प्रिय थीं : "सभे जी समान, प्रभु जी मेहर कर." ..... और उठते-बैठते हुए ताई यही दुहराती "दाता मेहर कर," "दाता मेहर रख", "सबां ते मेहर रख"........ और मुझे याद आया कि हर संकट की घड़ी में ताईजी द्वारा रोज पाठ की जानेवाली गुरुबानी के बाक ने ही मेरी मदद की --- मुझे विवेक दिया, सही और गलत का फर्क बताया. संध्या-हवन के संस्कृत के श्लोक कभी सामने नहीं आये. ताई को मां माना पर ताई की जिस मां बोली ने मुझे विवेक दिया --- उसे ही नकारा. अपनी इस गलती का कारण ढूंढने लगा तो आर्य समाजी जोश में बहस करते करते पिता का चेहरा सामने आ गया, "साडी जबान तां हिंदी है." जबकि अकसर में देखता था कि पिता दफ्तर का सारा काम-काज अंग्रेजी में करते थे, पत्र-व्यवहार उर्दू में, धर्म-कर्म संस्कृत में और बोलते पंजाबी थे..... और जन गणना के समय यह आग्रह कि हमारी भाषा हिंदी

प्रवीण प्रकाशन से प्रकाशित

महत्वपूर्ण और संग्रहणीय पुस्तकें

☐ हिंदी पत्रकारिता: प्रेमचंद और हंस/डा. रत्नाकर पांडेय	200.00
☐ राजभाषा अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश/डा. श्यामसिंह शशि/बलबीर सक्सेना	200.00
☐ जवाहरलाल नेहरू अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना पुरस्कार से सम्मानित विभूतियां/बलबीर सक्सेना	60.00
☐ कार्यालयीन हिंदी/प्रभुदयाल मढ़इया 'विकल'	100.00
☐ राजभाषा हिंदी : विकास के विविध आयाम/डा. मलिक मोहम्मद	60.00
☐ रिलायंस विश्व कप क्रिकेट/सुधीर सेन	35.00
उपन्यास	
चंद्रकांता/बाबू देवीकनंदन खत्री	35.00
चंद्रकांता संतति/बाबू देवीकीनंदन खत्री (छः भाग)	270.00
चांद सूरज के बीरन/देवेंद्र सत्यार्थी	75.00
फागुन के दिन चार/पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	45.00
एक चूहे की मौत/बदीउज्जमा	20.00
अपुरुष/बदीउज्जमा	7.00
उनके हिस्से का विश्वास/वीरेंद्र जैन	35.00
सुबह की नींद/सुवर्शन वशिष्ठ	25.00
आकाश मेरा नहीं/पीसीके प्रेम	55.00
राजा और प्रजा/आचार्य अनूपश्री	30.00
कहानी संग्रह - व्यंग्य संग्रह	
अवतार/पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	25.00
चौथा ब्राह्मण/बदीउज्जमा	35.00
एक नदी का मनोवेग/केशव	45.00
अनचाहे सफर/बलराम	45.00
दस्तक/श्रीनिवास जोशी	30.00
जिस गांव नहीं जाना/चंद्रमोहन प्रधान	45.00
बर्फ की कोख से/सं. तुलसी रमण	45.00
मंगलामुखी/पुष्पा मनकोटिया	35.00
व्यंग्यधारा/सं डा. राजेश	30.00
सिरहाने मीर के/सुरेश सेठ	30.00
आता हुआ काल/हरिहर द्विवेदी	35.00
कविता संग्रह	
एक सूनी यात्रा/केशव	35.00
नाखून उखड़ने की रात/हरिप्रकाश त्यागी	30.00
कम्पिला/डा. धर्मवीर	30.00
तुम मेरे घर मत आना/सुरंजन	35.00
दिन पाटलीपुत्र हुए/देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'	40.00
विविध	
असमंजस/डा. राजेंद्र प्रसाद	16.00
भारत रत्न/बलबीर सक्सेना	45.00
भारत के युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी/बलबीर सक्सेना	40.00
भगतसिंह/के.के. खुल्लर	6.00
असफाक उल्ला खां/के.के. खुल्लर	6.00
मंगल पांडे की पहली गोली/कमल शुक्ल	25.00
गणेश शंकर विद्यार्थी की जेल डायरी/सं. सुरेश सलिल	25.00

संपूर्ण सूची पत्र के लिए लिखें
प्रवीण प्रकाशन
1/1079 ई, महरौली नयी दिल्ली-110030

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकायन

हमारे 1987 के श्रेष्ठ प्रकाशन

मन्मथनाथ गुप्त	आत्मकथा	सिर पर कफ़न बांध कर	95.00
चिरंजीत	हास्य उपन्यास	-सिलबिलनामा	30.00
कुसुम गुप्ता	उपन्यास	दांव पर लगी जिंदगी	30.00
गौरीशंकर राजहंस	उपन्यास	अभिशप्त	25.00
पं. आनंद कुमार	उपन्यास	सिर्फ साइन बोर्ड	45.00
शरतचंद्र चट्टोपाध्याय	उपन्यास	विप्रदास	25.00
वि. अनन्त	उपन्यास	मित्र	30.00
वि. अनन्त	उपन्यास	एक चादर दाग भरी	30.00
शरतचंद्र चट्टोपाध्याय	उपन्यास	शुभदा	15.00
वीरेंद्र मिश्र	संगीत नाटक	जागे रे वा गायै रूप	30.00
चिरंजीत	नाटक	सात युत्रमंच नाटक	30.00
हबीब तनवीर	नाटक	चरनदास चोर	20.00
मुद्राराक्षस	नाटक	डाकू	20.00
गौरीशंकर राजहंस	व्यंग्य	आना एक वी आई पी का	25.00
मुज्तबा हुसैन	व्यंग्य	किस्सा आराम कुर्सी का	30.00
कुसुम गुप्ता	कहानी संग्रह	मंथन	30.00
रमेश गुप्त	कहानी संग्रह	बुद्ध का गृहत्याग	50.00
बलदेवराज दावर	विज्ञान गाथा	डाक्टर सुषेन	40.00
डॉ. शेरजंग गर्ग (सं)	शायरी	गजलें ही गजलें	40.00
डॉ शेरजंग गर्ग (सं)	शायरी	नया जमाना नई गजलें	40.00
डॉ शेरजंग गर्ग (सं.)	शायरी	मुक्तक और रूबाईयां	40.00
डॉ. मनोहर लाल	समीक्षा	हिमाचल प्रदेश के बज कवि	60.00
डॉ. शिवपूजन सिह कुशवाहा	समीक्षा	हनुमान का वास्तविक स्वरूप	15.00
डॉ. हरिदत्त शर्मा	ज्योतिष	हस्तरेखा विश्वकोश	60.00
प्रा. राजेंद्र जिज्ञासु		महात्मा हंसराज ग्रंथावली (चार खंडों में)	240.00
डॉ. भवानी लाल भारतीय		स्वामी श्रद्धानंद ग्रंथावली (ग्यारह खंडों में)	660.00

1988 में प्रकाशित

चिरंजीत	नाटक	घेराव	30.00
सत्येंद्र शरत (सं)	नाटक	थीफ पोलीस	30.00
सत्येंद्र शरत (सं)	नाटक	आस्थाएं अपनी अपनी	30.00
पं. आनन्द कुमार	उपन्यास	पायालू	50.00
ब्रजेश्वर मदान	कहानी संग्रह	बावजूद	30.00
सुशील कालरा	व्यंग्य	पाकीजा तेरी पालकी	25.00
आशारानी व्होरा	कविता	लहरलहर गिनते हुए	35.00
आशारानी व्होरा	मनोविज्ञान	किशोरियों का मानसिक विकास	30.00

पुस्तकायन

(सुबोध पॉकेट बुक्स का उपक्रम)

सुरूचिपूर्ण साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता
2/4240 ए, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002
टेलीफोन नं. 274513, 278858

है.

हम सभी पंजाब में रहने वालों की भाषा पंजाबी है, इस सच को स्वीकारने से हम कतराते क्यों रहे? जब किसी सच का सामना नहीं किया जाता, महाभारत होता है. सच चाहे कितना कड़ुवा हो, उसका सीधा साक्षात्कार करने का साहस पैदा करना चाहिए. कुंती कर्ण के जन्म के सत्य को यदि न छिपाती तो कम-से-कम कर्ण पांडवों के खिलाफ तो न लड़ते. कुंती को नहीं मालूम था कि इस छोटी-सी मासूम भूल को छिपाए रखने का परिणाम महाभारत होगा. महाभारत ही तो हो रहा है. अस्पताल के फोरोलोजी विभाग में ताई का डायलसिस हो रहा है और बरांडे में बैठा मैं अखबार का स्पैशल बुलिटन पढ़ रहा हूं. गुरुद्वारा बंगला साहब से लंगर का सामान ढोने वाला एक ट्रक निकला, उसे एक चौदह साल का नौजवान सिख लड़का चला रहा था. बड़ी तेज स्पीड से उस ट्रक ने गोल मार्केट के तीन चक्कर लगाये. और गुरुद्वारे के पास खड़ी सी.आर.पी.एफ. की पूरी टुकड़ी पर ट्रक चढ़ा दिया और तीन जवान मारे गये तथा अनेक जख्मी हुए. सी.आर.पी.एफ. के बाकी सिपाहियों ने उस युवा ड्राईवर को इतना पीटा कि उसकी भी घटना स्थल पर मृत्यु हो गयी..... आस-पास के सारे इलाके में तनाव है......

मेरे मन में फिर से अपने सवाल उठने लगे. इस युवा सिख की मौत के लिए जिम्मेवार कौन है? क्या वे सिपाही, जिन्होंने कानून को अपने हाथ में ले लिया था? उसकी सोच को विषैला बनाने वाले कठमुल्लावादी? या शातिर राजनीतिज्ञ जो धर्म और युवा साहस का गलत प्रयोग कर रहे हैं. युवकों के खून में नफरत का जहर घोल रहे हैं........

' जब मनजीत कौर ने भी आत्महत्या करने के लिए गोलियां खा ली थीं, और जहर खून में चला गया था, तो उसका भी डायलसिस किया गया था...... इस खून-खराबी में सभी पंजाबियों का खून खराब हो रहा है....... डायलसिस की जरूरत है.

ताई का डायलसिस हो गया है. उन्हें घर पहुंचा दिया है.

शाम ढलने लगी है. मैं कैलाश कालोनी जाने के लिए बस स्टैंड पहुंचा हूं. रास्ता वही है.

सचिवालय पहुंच गया हूं.

संसद की छाया रकाबगंज गुरद्वारे पर पड़ रही है....... और गुरद्वारे के पास खड़ा मैं बस की इंतजार कर रहा हूं. सारे माहौल में एक अजीब-सा तनाव महसूस कर रहा हूं. भवन की रोशनी सिर्फ सड़क पर है जहां ढेर सारी पुलिस तैनात है... बंदूकें, राईफलें, स्टेनगनों के साथ.

घंटा भर और बीत गया, पर बस नहीं आयी. इतने में एक सिख बुजुर्ग मेरे सामने आ खड़े हुए. उनके चेहरे परं घबराहट, आंखों में दहशत और डर से ज़बान लड़खड़ा रही थी.

"तु तुस्सी कित्थों जाणा ए?"

"मैं कैलाश कालोनी जाणा है."

मुझे पंजाबी बोलते देखकर उसने मेरी बाजू पकड़ ली और बोले, "तुसी कैलाश कालोनी अते मैं कालका बी --- साडा तां फिर इक्को ही रूट है."

...और मैं उस बुजुर्ग के चेहरे पर लहराती सफेद दाढ़ी की ओर देखकर बोला, "हां, गुरमुखो, इक्को ही तां रुट है, बिल्कुल इक्को ही." □

चलते-चलते

एक पत्रिका के प्रबंध संपादक ने एक पाठक को वार्षिक चंदे का नोटिस भेजा. फार्म के अंत में लिखा था : आपको यह अंतिम नोटिस भेजा जा रहा है.

चंदे की राशि के साथ फार्म लौटाते हुए उस पाठक ने अंतिम पंक्ति के नीचे रेखा खींच कर आगे जोड़ दिया," ऐसा नहीं हो सकता. मैं अभी कुल नब्बे साल का हूं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातवें दशक के महत्वपूर्ण कथाकार. चर्चित कृति : 'इतना बड़ा पुल'.
संपर्क : द्वारा शीर्षक प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़

सुदर्शन नारंग

जोखिम

उस इलाके को लोगों के हितों की लड़ाई उसे सचिवालय तक ले गयी थी. खाद्यमंत्री से इस्तीफे की उसकी मांग ने पूरे प्रशासन को हिला दिया था और इतनी कम आयु में उसका नाम अखबारों की सुर्खियों में आ गया था.

यह घटना बहुत पुरानी है. दस वर्ष से ज़्यादा ही. हम दोनों एक ही स्कूल में पढ़े थे और एक ही बिल्डिंग में रहते थे. मैं नीचे की मंजिल पर और वह ऊपर की मंजिल पर. मैं कानून का विद्यार्थी था और वह साहित्य का. वह हर बात पर मुस्कराता रहता. उसके प्रश्न और जिज्ञासाएं भी एक तीखी मुस्कराहट लिये रहतीं. बहुत सारी बातों के अर्थ तो मुझे उस समय समझ ही नहीं आते थे. मिसाल के तौर पर मुझे याद है कि एक बार उसने पूछा था, भारतीय संविधान के तहत बननेवाले अधिकांश कानून जम्मू और काश्मीर में क्यों नहीं लागू होते? उसके प्रश्न के उत्तर का मतलब था बहस. पर मैं बात को बढ़ाना नहीं चाहता था. उसके पिता एक अर्द्धसरकारी संस्थान में ऊंचे पद पर थे और जाहिर है, कि उनका वेतन भी चार अंकों की राशि में रहा होगा. पर उसे मैंने कभी फिजूलखर्ची करते नहीं देखा था. कपड़े भी वह बेतरतीबी से पहनता और बालों को संवारने की सुध भी उसे नहीं थी. उसकी आंखों के चश्मे के शीशे काफी मोटे थे और उसके कमरे में बढ़ती हुई किताबों से ही मैं अधिकांश लेखकों के नाम से परिचित हुआ था. एक तरह से पढ़ने-लिखने में मेरी रुचि जाग्रत करने का श्रेय उसी को था. बेमतलब की जान-पहचान से उसे वितृष्णा-सी थी जिसे वह समय के अपव्यय की संज्ञा देता था. नगर में होने वाली बौद्धिक गतिविधियों में उसकी खास दिलचस्पी थी. देखा जाये तो कविता मौहल्ले के रोमानी माहौल की जड़ता को तोड़ने वाली साहित्यिक संस्था 'परिक्रमा' भी उसी की पहल के कारण अस्तित्व में आयी थी. अर्थात् वह आदमी जो मेरा दोस्त था और मन ही मन जिसके प्रति मैं एक अव्यक्त सम्मान की भावना लिये रहता, महान होने की असीम संभावनाएं जगाता था. मुझे पूरा विश्वास था, आगे चलकर वह हमारे इस छोटे से नगर की सीमाएं फलांगता हुआ प्रदेश तथा देश की भारी हस्ती के रूप में उभरकर रहेगा. उसके अंदर ऐसे कितने लक्षण थे जिनके आधार पर उसे मैं हमेशा ही जननायक अथवा महापुरुष के रूप में देखने की कल्पना सजाये रहा था. उसका वजूद आसपास के सभी साथियों से था भी भारी.

सरकारी नौकरी से उसे सख्त नफरत थी. सरकारी क्या, किसी भी तरह की नौकरी से उसे नफरत थी. आत्मा को गिरवी रख कोई कैसे जी सकता है! उसकी बेफिक्र चाल और चेहरे से झलक रहे गहरे आत्मविश्वास से कोई भी अनुमान कर सकता था कि वह एक कुलीन परिवार का होनहार उत्तराधिकारी है.

कालिज की पढ़ाई भी हमने साथ-साथ ही पूरी की थी. क़ानून की शिक्षा के बावजूद वकालत का इरादा छोड़ मुझे सरकारी नौकरी में जाना पड़ा था. फिर मेरे साथ वह सब हो गया था जो एक सामान्य नागरिक के साथ होता है. अर्थात् मां की तरफ के रिश्तेदारों में घरेलू कामकाज में माहिर एक सुशील लड़की से ब्याह, दफ्तर से कुछ एक

दिन की छुट्टी, हनीमून और पत्नी के साथ आये सामान की पनाह पर छोटे से घर की गृहस्थी. मेरे विवाह में वह बाकायदा शामिल हुआ था. बल्कि बिल्डिंग के ही एक दूसरे दोस्त से मांगे हुए कैमरे में रंगीन रील डाल उसने ढेरों चित्र खींच डाले थे. फिर तरक्की का इंतजार, वार्षिक बढ़ोत्तरी और बोनस की दर को लेकर होने वाली हड़ताल में गला फाड़ नारे और साल दो साल में घर की मरम्मत के लिए एडवांस और वक्त-जरूरत के लिए थोड़ा-बहुत बचाकर रखने की ऊहापोह का अपना साधारण हो आया जीवन धीरे-धीरे घिसटने लगा था. पर वह अपने असाधारण उद्देश्यों और मंतव्यों के लिए जी-तोड़ मेहनत कर रहा था, ऐसा अनुमान था. उसके चश्मे के शीशे तो पहले से ही मोटे थे, अब उसने दाढ़ी भी बढ़ा ली थी.

बीच-बीच वह कई दिनों के लिए गायब हो जाता और फिर सामना होने पर पता चलता कि वह किसी लंबी यात्रा पर निकला था. देशाटन के शौक के अतिरिक्त वह बंगाल की राजनीतिक और बिहार के आदिवासी इलाकों की गरीबी की समस्याओं में भी गहरी दिलचस्पी रखता था. मुझे इस बात का संतोष था कि अपने साधारण जीवन के बावजूद मैं एक ऐसे आदमी से जुड़ा था जिसके पास योजनाएं थीं, उत्साह और उत्तेजना थी, और था मजबूत इरादा. महत्वाकांक्षाएं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति महत्वपूर्ण पुस्तकें

संदर्भ, समालोचना, हिंदी-प्रसार

विश्व सूक्ति कोश (1)/श्याम ब. वर्मा	195.00
विश्व सूक्ति कोश (2)/श्याम ब. वर्मा	195.00
विश्व सूक्ति कोश (3)/श्याम ब. वर्मा	195.00
भारतीय कला दृष्टि/अज्ञेय	50.00
हिंदी साहित्य का आदिकाल/चतुर्वेदी	60.00
भारतीय साहित्य/नगेन्द्र	200.00
मैथलीशरण गुप्त : काव्य संदर्भ कोश/नगेन्द्र	150.00
मैथलीशरण गुप्त : पुनर्मूल्यांकन/नगेन्द्र	30.00
स्वराज और घनश्यामदास/लक्ष्मीनारायण लाल	100.00
तुलसी मंजरी/विद्यानिवास मिश्र	75.00
सीमांत गांधी बादशाह खान/मदालसा नारायण	50.00
हिन्दी हम सबकी/शिवसागर मिश्र	40.00
अंग्रेजी हिंदी अभिव्यक्ति कोश/भाटिया	120.00
अंग्रेजी हिंदी शब्दों का ठीक प्रयोग/भाटिया	75.00
आदिकालीन हिंदी कोश/भोलानाथ तिवारी	120.00
राजभाषा हिन्दी	50.00
मानक हिंदी का स्वरूप/भोलानाथ तिवारी	60.00
सम्पर्क भाषा हिन्दी/भोलानाथ तिवारी	100.00
हिंदी और भारतीय भाषाएं/भोलानाथ तिवारी	100.00
कार्यालय कार्यबोध/हरिबाबू कंसल	50.00
कार्मिक प्रबन्ध कला/महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी	80.00
अनुवाद कला/विश्वनाथ अय्यर	30.00
पुनः भारतीयता की ओर/आशारानी व्होरा	60.00

उपन्यास

बारहखंभा/अज्ञेय	50.00
महायात्रा/अज्ञेय	40.00
गोली/आचार्य चतुरसेन	60.00
धर्मरक्षित/आचार्य चतुरसेन	60.00
कागज का लंगर/शिवसागर मिश्र	50.00
अजन्मा वह/शिवसागर मिश्र	40.00
सोना माटी/विवेकी राय	90.00
मार्कट्वेन का स्वर्ग/अभिमन्यु अनत	50.00
मुड़िया पहाड़ बोल उठा/अभिमन्यु अनत	50.00

हास्य व्यंग्य

पत्नी और धर्मपत्नी/श्रीनारायण चतुर्वेदी	30.00
मनोरंजक संस्मरण/श्रीनारायण चतुर्वेदी	40.00
साहित्यिक चुटकुले/श्रीनारायण चतुर्वेदी	35.00
फुलझड़ियां/काका हाथरसी	60.00
पैरोडियां/काका हाथरसी	60.00
काकदूत/काका हाथरसी	60.00
नोंक झोंक/काका हाथरसी	60.00
महामूर्ख सम्मेलन/काका हाथरसी	60.00
गिरगिट/रमेश गुप्त	50.00
अफसर की मौत/गोपाल चतुर्वेदी	30.00
मुस्कराती फाइलें/रामनाराणय उपाध्याय	60.00

जीवनी, निबन्ध, संस्मरण आदि

मानस के सांचे में/श्रीनारायण चतुर्वेदी	50.00
कसौटी/श्रीनारायण चतुर्वेदी	40.00
जन जनक जानकी/अज्ञेय	100.00
चिंतक की लाचारी/माखनलाल चतुर्वेदी	50.00
अमीर इरादे : गरीब इरादे/माखनलाल चतुर्वेदी	30.00
समय के पांव/माखनलाल चतुर्वेदी	30.00
समता के पथ पर/वियोगी हरि	60.00
अग्निरथ/विद्यानिवास मिश्र	35.00
लागौ रंग हरी/विद्यानिवास मिश्र	30.00
अंगद की नियति/विद्यानिवास मिश्र	25.00
कितने बजे हैं/रामदरश मिश्र	30.00
आम रास्ता नहीं है/विवेकी राय	70.00
प्रेरक प्रसंग/रामनारायण उपाध्याय	40.00
भारतीय वैज्ञानिक/कृष्णमुरारीलाल श्रीवास्तव	100.00
अमीर खुसरो/भोलानाथ तिवारी	60.00

विविध

विष्णु प्रभाकर : प्रतिनिधि रचनाएं/गोयनका	150.00
विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण नाटक (1)	150.00
विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण नाटक (2)	150.00
विष्णु प्रभाकर : सम्पूर्ण नाटक (3)	150.00
सत्याग्रह के प्रयोग/सुमित्रा कुलकर्णी	75.00
अनमोल विरासत/सुमित्रा कुलकर्णी	150.00
हमारी विरासत /सुमित्रा कुलकर्णी	100.00

कहानियां

घर/श्रीकांत वर्मा	20.00
इकसठ कहानियां/रामदरश मिश्र	120.00
एक थाली समन्दर/अभिमन्यु अनत	60.00
ग्लेशियर से/मृदुला गर्ग	25.00
ग्यारह लम्बी कहानियां/चित्रा मुद्गल	40.00
इस हमाम में/चित्रा मुद्गल	35.00
सूली ऊपर सेज पिया की/राजेंद्र राव	70.00
साम्प्रदायिक सद्भाव की कहानियां	60.00
नारी उत्पीड़न की कहानियां	60.00
दलित जीवन की कहानियां	60.00
ग्राम्य जीवन की कहानियां	60.00
महानगर की कहानियां	60.00
विद्रोह की कहानियां	60.00
कार्यालय जीवन की कहानियां	60.00
वृद्धावस्था की कहानियां	60.00
शिक्षाजगत की कहानियां	60.00
विकलांग जीवन की कहानियां	60.00
बचपन की कहानियां	60.00
व्यवस्था विरोधी कहानियां	60.00

प्रभात प्रकाशन

205 चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपने तो सभी के पास होते हैं पर उसके अंदर लगन थी. यात्रा या माहौल को बदलने के नाम पर कभी-कभार मुझे गांव जाना पड़ता जहां पर एक पुराना पुश्तैनी मकान और बूढ़ी मां थी. मां को इस शहर की भीड़-भड़क्का कभी रास नहीं आया और न ही आसपड़ोस में ऐसे कोई लोग थे जिनके पास उठ-बैठ हो पाती. हालांकि इस बिल्डिंग के घरों की अधिकांश महिलाएं उसी तरह से धर्मपरायण हैं जिस तरह से मेरी बूढ़ी मां थी और यदाकदा यहां भी रात-रात भर के जागरण और मंदिर में सत्यनारायण की कथा होती है. पर मेरी मां को जो विराग गांव के बूढ़े मृदुलजी महाराज की कथा से पैदा होता है, वह अन्यत्र नहीं. बीच-बीच में जब मां के बीमार होने का समाचार मिलता, मुझे गांव जाना ही पड़ता. और उस माह मेरा बजट पूरी तरह से गड़बड़ा जाता.

वह कोई छुट्टी का दिन था. कैलेंडर में लाल अंक से छपनेवाली छुट्टी नहीं थी वह. किसी नेता के आकस्मिक निधन की छुट्टी थी. ऐसी छुट्टी जिसकी गंभीरता को समझे बिना बच्चे किलकारियां मारते हुए बल्ला और गेंद उठाकर मैदान की तरफ क्रिकेट खेलने निकल जाते हैं. ऐसी छुट्टी मेरे जैसे व्यक्ति के लिए कोई पूर्व-निर्धारित योजना न रहने पर पत्नी को तंग करने और बिना जरूरत तीन-चार बार चाय पीते गुजरती है. ऐसी ही छुट्टी का दिन था जब सीढ़ियों में अचानक वह मिला था और घसीटते हुए अपने घर ले गया था.

"तुम भी क्या अजीब घर-घुसरे हो! न कोई महत्वाकांक्षा और न ही कोई चैलेंज! तुम्हें नहीं लगता कि जीवन में कुछ ऊंचे आदर्श होने चाहिए." उसने बताया था कि पिछले तीन माह वह बिहार के अकालग्रस्त क्षेत्र में बिताकर आया था. उस इलाके के लोगों के हितों की लड़ाई उसे सचिवालय तक ले गयी थी. खाद्यमंत्री से इस्तीफे की उसकी मांग ने पूरे प्रशासन को हिला दिया था और इतनी कम आयु में उसका नाम अखबारों की सुर्खियों में आ गया था. सामाजिक दायित्व के प्रति उसकी सजगता से मैं काफी प्रभावित हुआ था. कोयला खदानों में मजदूरों के शोषण के खिलाफ झरिया में काम करने की अपनी भावी योजना का बखान करते हुए वह एक तरह से उत्तेजित हो गया था और मुझे लगा था देश के राजनीतिक क्षितिज पर एक नये सितारे का उदय हुआ है. मैंने महसूस किया था, वह बहुत बोल रहा था और पहले की अपेक्षा काफी बदला हुआ-सा लग रहा था. पहले की तरह अब वह अंतर्मुखी नहीं रहा था और बात-बेबात आक्रामक हो उठता.

उसके होंठों में मंद-सी मुस्कान तैर गयी थी, "मैं चाहता हूं, तुम भी हमारे साथ काम करो. छोड़ो यह नौकरी का चक्कर! ऊब नहीं होती तुम्हें रोज दफ्तर जाकर, बच्चों को गणित और विज्ञान पढ़ाकर! या फिर साग-सब्जी के लिए मंडी के चक्कर काटते हुए!"

"मजाक कर रहे हो!" मैंने सहज ही कहा था.

"जिंदगी में कुछ रोमांच भी होना चाहिए. और सामाजिक दायित्व भी. जो जोखिम नहीं उठा सकता, वह कभी उन्नति नहीं कर सकता! औसत ढंग से जीना मुझे बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता!"

मां के बीमार होने की खबर पाकर मुझे फिर गांव जाना पड़ गया था. उसकी बातों पर गौर करने का न कारण था और न ही फुर्सत. उसके कंधों पर किसी तरह की जिम्मेदारी नहीं थी. न मां की बीमारी, न पिता का बुढ़ापा. न नौकरी की चिंता. वह जब तक चाहता, तजुरबे कर सकता था. छोटी-मोटी नौकरी के लिए उसने कभी आवेदन भी नहीं किया था. एक बार उसने कहा था, "असली जीवन चालीस के बाद शुरू होता है. तब तक घूम-फिरकर दुनिया देखनी चाहिए, अपने रुझान की पहचान करनी चाहिए."

बीच में वह अपने मामा के यहां चला गया था जो संघ लोकसेवा आयोग में सचिव पद पर आसीन थे. रोज शाम सफेद टी-शर्ट, शार्टस और फलीट्स पहन मामा के साथ वह बैडमिंटन खेलने क्लब जाता. जहां पर ऊंचे तबके के लोग बड़े अधिकारी, न्यायाधीश, बुद्धिजीवी और पब्लिक सेक्टर के अधिकारी उसी तरह इकटठे होते हैं, जैसे रिक्शा, झल्ली और ठेलेवाले शाम होते ही ठेके पर इकट्ठे होते हैं. मामा को सिफारिश भी नहीं करनी पड़ी थी. बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों के अधिकारीगण स्वयं ही उसके लिए ऊंचे-ऊंचे ओहदों के प्रस्ताव रखते रहे थे. पर उसने कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ली थी.

मां को शहर ला अस्पताल में भर्ती करना पड़ा था और फिर सुबह-शाम अस्पताल के चक्कर काटते, किसी भी तरह के विलास का सवाल ही नहीं बचा था. उसकी सफलताओं अथवा अपनी सीमाओं की तुलना की फुर्सत ही कहां थी. फुर्सत वैसे भी मेरे जीवन में कम ही रही थी. स्कूल और कालिज के दिनों में गाऊन और मोटे शीशों का चश्मा लगा बालकनी में बैठ तिपाई पर पैर फैलाये जब वह किताबों में उलझ बौद्धिक होने के सुख को ले रहा होता, साइकिल उठा मुझे ट्यूशन के लिए आधे शहर की परिक्रमा करनी पड़ती. मेरे अंदर कभी कोई बेफिक्र और अलमस्त आदमी रहा हो ऐसा मैंने कभी नहीं जाना था.

देखते ही देखते उसके रंग-ढंग तेजी से बदल गये थे. इस बिल्डिंग के फ्लैट को छोड़ उसने शहर के बाहर सभ्रांत इलाके में कोठी बना ली थी. हम लोगों के बीच पड़ौसी के नाते जो थोड़ा-बहुत सूत्र था, वह भी टूट गया. अपने पिता और मामा के ऊंचे संपर्कों के बावजूद उसने नौकरी न कर ठेकेदारी का काम चुना था. अपने ब्याह में भी नहीं बुलाया था मुझे उसने. शादी में उसे एयरकंडीशंडकार और ढेरों तोहफे मिले थे. आलीशान सूट और आंखों पर काले रंग का चश्मा पहने एक बार वह मेरी बगल से गुजर गया था और मुझे पहचाना तक नहीं था. आदतन अभिवादन में मेरे होंठ हिलकर रह गये थे. मेरे कदमों की रफ्तार भी कुछ तेज हुई थी. पर अपनी उत्तेजना को दबाते हुए मैं ठिठककर रह गया था. उससे मुलाकात के लिए अब संभवतः मुझे फोन पर पहले समय लेना पड़े और फिर बालकनी में बैठे साहिब द्वारा अंदर बुलाये जाने का इंतज़ार करना पड़े. मैंने मन ही मन तय किया था—कितनी भी गरज क्यों न हो उसकी मदद लेने कभी नहीं जाऊंगा. अब तक की मेरी यही आदत रही थी. एक बार कट जाने के बाद ऐसे आदमी से फिर मेरा कभी समझौता नहीं हुआ था. कितने ही लोग थे.

बंबई और चंडीगढ़ में उसकी फर्म ठाकुर 'एंटरप्राइजेज ने गगनचुंबी इमारतों के ठेके लिये थे. ईरान और लीबिया में अस्पताल और कल्चरल सेंटर के भवनों के ठेके भी उसके हाथ में थे. बिहार और पंजाब से विदेश जानेवाले लोगों को भेजने का काम भी उसने खोल लिया था.

इस कायापलट में कोई लंबा समय नहीं लगा था. तीन-चार वर्ष में ही इतना बड़ा परिवर्तन हो गया था. उसकी फर्म के विज्ञापन और नयी-नयी घोषणाओं के समाचार पढ़ कभी ध्यान आ जाता कि हम लोग कभी परिचित थे. इस बीच मां परलोक सिधार गयी थीं, और गांव का मकान बेच मैंने आवास विकास के बने-बनाये एल.आई.जी. फ्लैट का फार्म भर दिया था. दो कमरों के मकान के लिए आवास-विकास परिषद् की प्राथमिकता सूची में जब तक मेरा नाम आयेगा, वह पांच-सात गगनचुंबी इमारतों अथवा पांच सितारा होटल का डायरेक्टर बन चुका होगा. उसकी तेज रफ्तार और जोखिम उठाने की क्षमता के प्रति मेरे अंदर हमेशा सम्मान की भावना रही थी.

उसकी फर्म की भव्य योजनाओं के विज्ञापनों के मध्य एक दिन अखबार के पहले पृष्ठ पर आठवें कॉलम में उसकी तस्वीर देखकर लगा था जरूर कोई और सफलता प्राप्त कर उसने अपना कद ऊंचा किया होगा. उत्सुकता से तस्वीर के नीचे दिये समाचार को पढ़ने लगा था. विदेशी दूतावासों को गुप्त दस्तावेज बेचने वाले गिरोह का संचालन करने वाले अभियुक्त के रूप में उसका नाम पढ़ किसी तरह की भी प्रतिक्रिया क्यों नहीं हुई मेरे अंदर. मुंह का स्वाद सुबह से ही कसैला था. तौलिया उठाते हुए मैं बाथरूम की ओर बढ़ लिया था. दफ्तर का समय हो रहा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्चित कृतियां : 'एक नदी का मनोवेग', 'फासला' (कहानी संग्रह), व 'एक सूनी यात्रा', 'ओ अपवित्र नदी' (कविता संग्रह).
संप्रति : हि.प्र. लोक-संपर्क विभाग की मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' का संपादन.

केशव

आउट हाउस

लोकल बस अड्डा किसी भारी-भरकम जानवर की तरह ऊंघ रहा था.

दिसंबर के अंतिम दिन. बहुत छोटी होती है इन दिनों की शाम. एक झलक दिखाकर ही अंधेरा ओढ़ दुबक जाती है अगली शाम तलक.

अभी मुश्किल से सात बजे थे. लेकिन अंधेरा था कि अपने काले 'पट्टू' की तहें खोलता ही जा रहा था.

दोपहर से ही बर्फ गिर रही थी, रुक-रुककर. लेकिन कम-कम. बर्फ के देवता ने शायद अपना मुंह आधे से भी कम खोल रखा था.

बस अड्डे पर लोग काफी कम थे. इतने कम कि थोड़े से समय में ही प्रत्येक के कंधे पर हाथ रखकर इत्मीनान से उनका नाम, पता, व्यवसाय और घर-गृहस्थी की तमाम मालूमात हासिल की जा सकती थीं.

बुकिंग आफिस में कोई बहस छिड़ी हुई थी.

अक्सर बसों से खचाखच भरा रहता था अड्डा. आज बसें नदारद थीं. एकमात्र बस उस खालीपन को और गहरा कर रही थी. आपस में बतियाते लोग कभी-कभी कनखियों से देख लेते थे उधर. मानो बस न होकर कोई अकेली खूबसूरत औरत हो.

बर्फ अब नहीं गिर रही थी.

बर्फ की एक महीन-सी पर्त पनवाड़ी की दुकान से आने वाली रोशनी में चमक रही थी.

बुकिंग आफिस से अब गुर्राहटें-सी उभरने लगी थीं.

"मैं कहता हूं बस नहीं जा सकती." एक दहकती हुई आवाज.

"न ले जाने की हमारे पास कोई खास वजह नहीं है. फिर लोग आजकल एकदम शिकायत ठोंक देते हैं." एक दबी-दबी पर सख्त आवाज.

"ठोंकते हैं तो ठोंकते रहें. अपने भी बाल-बच्चे हैं." पहली वाली आवाज में अब जिद्द-सी थी.

"तुम बस ले जाने की तैयारी करो. नहीं तो लोग हम दोनों को उठाकर बस में ठूंस देंगे." दूसरी आवाज तेज थी.

"ऐसी की तैसी इस नौकरी की." जिद्द अब खाली बोरे की तरह लटक आयी थी.

तभी अचानक एक दस-ग्यारह बरस का लड़का मेरे सामने आकर खड़ा हो गया.

वह कांपते हाथों से मूंगफली टूंग रहा था. जगह-जगह से उधड़ा एक मैला-सा स्वेटर पहने था. कुछ सहमा हुआ-सा दीख रहा था. उसकी आंखों में किसी खोई हुई चीज के न मिल पाने का भय व्याप्त था. कोई-कोई मूंगफली जब वह अपनी ठिठुरती उंगलियों से न तोड़ पाता तो उसे छिलके समेत ही मुंह में धकेलकर चबाने लगता.

उसकी नाक बड़े इत्मीनान से चू रही थी. याद आने पर जिसे आस्तीन से पोंछ लेता या सड़ाक् से ऊपर खींच लेता था.

अचानक मेरे भीतर किसी चीज ने करवट ली. मुझे लगा, इस माहौल में कुछ ऐसा है जो मुझे पीछे की ओर धकेल रहा है. आउटहाउस में जीवन के कोई चिह्न नहीं हैं. जैसे आउटहाउस में रहने वाले खुद आउटहाउस में तब्दील हो चुके हैं.

"अभी तो बहस जारी है."

बुकिंग आफिस से लौटते ही अतुल ने सूचना दी. फिर अचानक मेरे पास खड़े लड़के को घूरने लगा.

अतुल को न जाने क्या सूझी. उसने झपटकर लड़के के हाथ में पकड़े लिफाफे से कुछ मूंगफलियां निकाल लीं.

लड़के ने इस हरकत का तनिक भी विरोध नहीं किया. उल्टा उसकी आंखों में कुछ खो जाने जैसा भाव एकाएक गायब हो गया.

"क्यों बच्चे की मूंगफली उड़ा रहे हो." अतुल ने जैसे मेरी बात सुनी ही नहीं. लड़का उसके साथ सटकर खड़ा हो गया था.

अतुल उसी बेतकल्लुफी से मूंगफली उड़ा रहा था.

जब लिफाफा खाली हो गया तो अचानक अतुल ने एक रुपये का नोट निकालकर लड़के की जेब में ठूंस दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चल बे अब."

"नमक न खाया सही, मूंगफली तो खायी है." मैंने कहा.

अतुल हंस दिया. एक लापरवाह-सी हंसी.

तभी पुकार हुई.

"संजौली की ओर जाने वाली सवारियां बस में बैठ जायें."

लोग बस की ओर लपके.

आधे से ज्यादा सीटें खाली रह गयी थीं. शायद बुकिंग आफिस में चलनेवाले वाक्-युद्ध ने कुछ लोगों की उम्मीद को छलनी कर दिया था. उनमें से कुछ उम्मीद के उस छलनी जिरह बख्तर को वहीं छोड़ अपने-अपने जंगल में उतर गये थे.

बस गुर्राने लगी.

"जो डटा रहता है मोर्चा भी उसी के हाथ आता है." अतुल मेरे बगल में इत्मीनान से पसरते हुए बोला.

बस की गुर्राहट, मिमियाहट में बदली. एक हल्का-सा झटका. और उस खालीपन के पंजों से छूटकर बस अपनी राह पर हो ली.

मैं खिड़की की ओर बैठा था. बगल में अतुल,तीसरे की जगह खाली थी.

"साले ने चढ़ा रखी होगी. सड़क कहां दिखाई देगी." किसी ने कहा.

"बस आगे नहीं जायेगी." ड्राईवर ने पीछे मुड़कर रूखे लहजे में कहा.

कुछ कहने के बजाय सब एक दूसरे का मुंह देखने लगे. कुछ पल एक मनहूसियत-सी छायी रही. फिर एक-एककर उतरने लगे लोग.

कोई चारा न देख हम भी उतर गये.

सड़क एकदम अंधेरे में डूबी हुई थी.

रोशनी इतनी कम थी कि लग रहा था जैसे किसी सुरंग में चल रहे हों. बर्फ की मटमैली-सी सफेदी उस गाढ़े अंधकार को घूरती प्रतीत हो रही थी.

बर्फ के कीचड़ में टटोल-टटोलकर पांव रखते अभी हम कुछ दूर ही सरके थे कि वह लड़का पीछे से आ पहुंचा. बड़ी बेफिक्री से हमारे साथ-साथ चलने लगा.

"तुम्हें जाना कहां है." अब मैंने पूछा.

लड़के में अतुल की रुचि शायद बुझ गयी थी. या फिर अपनी हड्डी-पसली के खयाल ने उसके शब्दों को कहीं अंदर दबोच रखा था. वरन् ऐसे मौकों पर अतुल की जुबान खुजलाने से चूक सकती थी भला.

"फारेस्ट कालोनी." थोड़ी देर बाद लड़के ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया.

तभी अचानक वह लड़का पीछे से आकर अतुल के साथ डट गया.

"ओए तू फिर आ गया." अतुल ने चौंककर कहा.

लड़का कुछ नहीं बोला. मूंगफली का दूसरा लिफाफा उसके हाथ में था. वह इत्मीनान से मूंगफली चबाता रहा.

अभी मुश्किल से एक किलोमीटर भी नहीं जा पाये थे कि बस को जोरदार ब्रेक लगे. सबका कलेजा मुंह को आ गया.

"क्या हुआ....क्या हुआ..." कुछ बदहवास स्वर उभरे.

दरअसल सामने उतराई पर एक ट्रक बर्फ पर तिरछा होकर अड़ा हुआ था. इतना रास्ता नहीं था कि हमारा ड्राईवर बस निकाल ले जाता.

"लो, अब बैठकर अपनी...."

ड्राईवर के मुंह से एक भद्दी गाली उछली. गाली लोगों के सर से होकर गुजर गयी. बस में बैठे लोग ट्रक ड्राईवर की ऐसी-तैसी फेरने लगे.

"लेकिन तुम आ कहां से रहे हो."

बात करते रहने से ठंड और अंधेरे का खयाल कहीं दुबक जाता है न.

"मौसी के घर से." लड़का अनिच्छा से बोला.

"अबे तेरी मौसी है या चुड़ैल. जो ऐसे मौसम में तुझे अपने घर से धकेल दिया उसने."

मेरी शंका निर्मूल निकली.

अतुल की आवाज एकदम चटख थी. न ठिठुरन, न अंधेरे का डर.

मोड़ पर पहुंचते ही स्ट्रीट लाइट के मुतहे आलोक ने हमारा स्वागत किया. अब हर चीज फैली-फैली दिखाई दे रही थी. सड़क, सड़क के किनारे की रेलिंग, दरख्तों के झुंड. सबके सब जैसे उस मद्धिम आलोक के ब्रुश से अंधेरे की पीठ पर अपना नाम लिखने की हड़बड़ी में थे.

हमारे पैरों में भी अचानक गति भर गई. बस से उतरने वाले लोगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-एककर निगल गयी थीं सड़क से ऊपर या नीचे फैली पगडंडियां. ये हम उस मोड़ पर पहुंचकर ही जान सके थे.

अब सिर्फ हम थे. हम तीन.

"अच्छा भई चंदर, अपन तो चले शार्टकट से. पर तुम्हें डर तो नहीं लगेगा न." अतुल ने अपने मजाकिया लहजे की पिटारी खोल दी.

"डर लगेगा तो गुनगुनाऊंगा. वैसे आज तो साथी भी है."

अतुल की हंसी में शामिल हो गयी मेरी हंसी. उसे बाईं ओर की पगडंडी पर चढ़ते देख मैंने पीछे से कहा, "ज़रा संभलकर जाना अतुल."

"डोंट वरी. टेक केयर ऑव योअरसेल्फ." अतुल की आवाज़ लुढ़कती हुई मेरे पास पहुंची.

अब हम दो रह गये थे. और थी सामने बिछी सड़क. फिर से अंधेरे के जबड़े की ओर सरकती.

मैंने लड़के की ओर देखा.

वह बर्फ पर अपने पैरों से चपु..चपु...कर रहा था.

वह कुछ अधीर-सा दिख रहा था. मुझे लगा जैसे हमारे बीच होने वाली बातचीत से ज्यादा उसे किसी और चीज में दिलचस्पी है. जैसे भीतर-ही-भीतर कुछ बर्दाश्त कर रहा है और फिलहाल बाकी चीजों को टाल रहा है.

आखिर वह जगह भी आ गयी जहां से हम दोनों के रास्ते अलग-अलग थे.

मुझे दूसरे रास्ते पर बढ़ता देख लड़का चिल्ला उठा. "मुझे डर लगता है. मैं अकेले कैसे जाऊंगा."

उसकी आवाज में डर नहीं ज़िद्द थी.

मुझे खीझ-सी होने लगी. जो ऐसे मौसम में मौसी का घर छोड़कर आ सकता है, वह अपने घर भी पहुंच सकता है.

"अब तुम जाओ." मैंने अपनी खीझ को बाहर नहीं उछलने दिया.

लेकिन लड़का उसी तरह अड़ा रहा. सीधे मेरी आंखों में देखता.

"अब जाते क्यों नहीं. डर लगता है तो बाप को साथ ले आना था." रोकते-रोकते भी मेरे गुस्से और खीझ की गांठ खुल ही गयी.

अचानक लड़के ने मेरे कोट का किनारा पकड़कर मुझे झिंझोड़-सा दिया. अपनी पूरी ताकत के साथ.

"अगर मेरा बाप होता तो..." लड़के ने अपना वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया.

लड़के की आवाज में आक्रोश था. व्यंग्य था. घृणा थी. और थी विवशता भी. इनमें से कौन-सा भाव प्रबल था, यह कहना मेरे लिये मुश्किल था.

बड़ी अर्जी

तेरह वर्ष की आयु में महाकवि 'अकबर' ने कचहरी में नौकरी के लिए अर्जी दी. बुलाये गये. हाज़िरी के दिन कलक्टर को उनकी शक्ल तो याद रही पर कहा, "इस बच्चे ने एक छोटी-सी अर्जी दी थी, वह कहीं खो गयी. खैर, दूसरी लिख लाओ." यह सुनकर 'अकबर' बाजार गये और कागज की आधी रिम खरीद लाये. फिर उन्होंने कागजों को गोंद से जोड़कर दीवार पर टांगने वाले नक्शे के आकार का बड़ा पोस्टर बनाया और कूची से निहायत मोटे-मोटे अक्षरों में अर्जी लिखी और अंग्रेज कलक्टर की मेज पर बिछा दी. कलक्टर ने गुस्से में पूछा, "यह क्या है?"

अकबर बोले 'हुजूर, अर्जी है. अबकी बार जरा बड़ी लिखकर ले आया हूं ताकि खो नहीं जाये.'

कलक्टर हंस पड़ा और अकबर हुसैन को नकल-नवीसी की नौकरी मिल गयी. □

इससे पहले कि मेरे अंदर धंसता उसकी आवाज का चाकू मरोड़ खाकर कई कोमल हिस्सों को काट देता, मेरे पांव स्वतः ही फारेस्ट कालोनी की ओर मुड़ गये.

कालोनी का बाजार पीछे छूट गया था.

रास्ते का कहीं नामोनिशान भी नहीं था. बर्फ के नीचे कोई पगडंडी हो सकती है, इसका अनुमान मैं लड़के के सधे हुए कदमों से ही लगा पा रहा था.

पगडंडी के एक ओर जंगल था. ऊपर ही ऊपर उठता. दूसरी ओर तीखी ढलान. ढलान के नीचे सूखी खड्ड सफेद के उस भ्रामक उजाले में एक पतली रेखा की तरह दिखाई दे रही थी.

लड़के की निडरता को देख मुझे शर्म-सी महसूस हो रही थी. अपने अंदर उछलते डर को जबरन दबोचे मैं लड़के के पैरों के निशानों पर आगे बढ़ता रहा.

लड़का मेरी ओर से एकदम निश्चिंत था.

उसने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा. आखिर वह एक मकान के सामने जाकर रुक गया.

मकान क्या किसी कोठी का उजड़ा हुआ आउट हाउस था. सन्नाटे की खाई में किसी मरे हुए गिद्ध-सा पड़ा आउटहाउस. जगह-जगह से तिड़की दीवारें. छत का टीन किसी भी पल ढलान की ओर लुढ़कने को तैयार.

खड्ड के उस पार जंगल में टिमटिमाती कुछ रोशनियां जंगल के पंजों से मुक्त होने की जी-तोड़ कोशिश में लगी हुई थीं.

अचानक मेरे भीतर किसी चीज ने करवट ली. मुझे लगा, इस माहौल में कुछ ऐसा है जो मुझे पीछे की ओर धकेल रहा है. आउटहाउस में जीवन के कोई चिंह नहीं हैं. जैसे आउटहाउस में रहने वाले खुद आउटहाउस में तब्दील हो चुके हैं.

तभी सन्नाटे की खाई में एक भुरभुरी-सी आवाज़ उभरी और ढलान पर सर धुनती खड्ड के दो पाटों के बीच दम तोड़ गयी.

मैंने देखा, लड़का दरवाजे पर दस्तक दे रहा था. दरवाजा खुला. एकदम निश्शब्द. एहतियात से. पलभर को लगा, दरवाजा बंद था ही नहीं.

इस बीच लड़का बीच से हट गया था. और लकड़ी के उस झूलते, चरमराते बरामदे में एक ओर को सरक गया था.

"आ जाइये."

एक स्त्री का धीमा, खुरदरा पर कांपता स्वर कुछ पल बरामदे में चकराता रहा.

झिझक ने मुझे बुरी तरह से पकड़ रखा था. "आइये न."

अबकी स्त्री स्वर ऊंचा था और सपाट भी. लेकिन खुरदरा कतई नहीं.

अनिच्छा की उंगली थामे मैं भीतर दाखिल हो गया. उस औरत ने बिना हत्थों की कुर्सी की ओर संकेत करते हुए निर्लिप्त भाव से कहा, "बैठिए."

कमरे की उस निचुड़ी-निचुड़ी रोशनी में वह निश्चित तौर पर तीस के आस-पास दिखाई दी. उसका चेहरा पीला-सा लग रहा था. या शायद उस रोशनी ने ही कुछ और गाढ़ा कर दिया था पीलेपन को. इसके बावजूद उसके सुंदर होने के आभास को पोंछ नहीं पा रहे थे-डगमगाती रोशनी या पीलापन.

न जाने क्यों मुझे वह चेहरा कुछ पहचाना हुआ-सा लगा. बीचों-बीच लटका था एक मैला, पैबंदों से अटा पर्दा. कमरे को सायास दो हिस्सों में बांटता.

इस बीच वह औरत दूसरे हिस्से में चली गयी थी. सामने वाली दीवार पर एक कैलेंडर टंगा हुआ था जिसमें एक औरत बच्चे को दूध पिला रही थी.

कैलेंडर पर कालिमा की पर्त चढ़ी हुई थी. इसलिए यह अनुमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाना मुश्किल था कि यह कौन से वर्ष का है. कैलेंडर से होती हुई मेरी निगाहें बाईं ओर की दीवार पर जा टिकीं. खिड़की के ठीक ऊपर फ्रेम में जड़ा किसी का चित्र था. उस धूमिल प्रकाश में भी उस चेहरे को निकट से देखने की इच्छा को मैं नहीं दबा सका. मैं उठकर खिड़की के पास चला गया.

मुझे एक जबरदस्त झटका लगा. लगा जैसे मेरी धमनियों में बहने वाला रक्त बड़ी तेजी से बर्फ में तब्दील होता जा रहा है.

''यह तो रामू है. रामसरण.'' मेरे अंदर से बरबस निकला,''तो यह उसकी पत्नी है.''

अचानक मेरे सामने दस बरस पहले की घटना साकार हो उठी....

उन दिनों मैं 'दैनिक आवाज' के लिए काम करता था. उस घटना को अपने अखबार के लिए मैंने ही 'कवर' किया था.

बीस बरस की राणो सीमेंट फैक्टरी की कल्याण शाखा में टाइपिस्ट थी. एक रात फैक्टरी के कल्याण अधिकारी ने राणो के साथ बलात्कार किया. अगले ही दिन फैक्टरी में हड़ताल हो गयी. हड़ताल कुछ दिन चली. मैनेजमेंट को कल्याण अधिकारी को निलंबित करना पड़ा था. उस पर केस भी चला था. लेकिन कोर्ट ने उसे बरी कर दिया था. और वह पुनः अपने पद पर नियुक्त हो गया था.

हड़ताल के दौरान मंच पर से बोलते वक्त इमारत की किसी खिड़की से एक पत्थर-सा फैंका गया था रामसरण पर.

''तुम ही राणो का हाथ क्यों नहीं थाम लेते.'' और वह राणो को ब्याहकर अपने घर ले आया था. साल भर में ही जिस प्लांट से रामसरण अपनी रोजी कमाता था, उसी ने उसे निगल लिया था.

राणो ने शायद मुझे पहचाना नहीं था. मैं उससे सिर्फ एक बार मिला था. अखबार के लिए बातचीत के सिलसिले में.

और आज मैं इस बर्फीली रात में राणो के छप्पर के नीचे बैठा था. जीवन के आउटहाउस में लापता होती राणो की छत तले.

मुझे लगा, कमरे की दीवारें धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ रही हैं. छत की टीन धंस रही है. नीचे, और नीचे. मुझे अपनी सांस घुटती प्रतीत हुई.

तभी राणो की आवाज मेरे कान के पर्दों से टकराई.

''जरा जल्दी कहिए.''

छत मेरे ऊपर आ गिरी. टीन ने मुझे आरी की तरह चीर दिया था. आर-पार.

''आपने मुझे पहचाना नहीं.'' बहदवासी में मेरे मुंह से निकला.

राणो का चेहरा एकाएक सख्त पड़ गया. आंखों में कुछ भक् से जल उठा. फिर वह हंस पड़ी. हंसती रही. कमरे के सन्नाटे को अपने पैने दांतों तले चबाती. विक्षिप्त और डरावनी-सी हंसी.

मैं सिहर उठा.

''आपका चेहरा देखा है. लेकिन जो चेहरे मैंने कभी नहीं देखे, उन्हें भी खूब पहचानती हूं.'' उसकी हंसी थम गयी थी. लेकिन चेहरे पर किसी भी चीज को तार-तार कर देनेवाला तीखापन मौजूद था.

''शक्ल-सूरत अलग होने से कोई फर्क पड़ता है. हर चेहरे के पीछे वही जानवर. अगर गोश्त औरत का हो तो...''

वह हांफने लगी थी.

आधे खुले दरवाजे से सर्द हवा की पैनी किरचें रह-रहकर देह में खुब रही थीं.

''दूसरों के दुख को भुनाना खूब आता है आप जैसे लोगों को. वो शब्द किस काम के जो आश्रय देना तो दूर, जो छत सर पर है उसमें भी छेद कर देते हैं.''

''देखिए हमारा काम सच को लोगों के सामने लाना है.'' मैंने अपनी चुप्पी के खोल से बाहर झांकना चाहा.

''ताकि उस सच में अपनी गलीज उंगलियां घुसेड़कर चटखारे लिये जा सकें. अपने मजे को बरकरार रखा जा सके.''

'थू' उसने मेरे सामने ही थूक दिया.

मेरे अंदर एक दंभ बार-बार आंखें खोलने की कोशिश कर रहा था. तिलमिलाहट की एक रस्सी बट खा रही थी. खुल रही थी.

''आपके वो शब्द जिससे सच को नंगा करने का दंभ आप भरते हैं, आज तक मेरा पीछा कर रहे हैं.''

उसका गला रुंध गया था.

मुझे लगा वह किसी भी पल रो सकती है.

''मुझे आपसे पूरी हमदर्दी है. लेकिन...''

''नहीं चाहिए मुझे किसी की हमदर्दी.'' वह फिर बिफर पड़ी.

''रास्ते तो बहुत हैं. सिर्फ यही एक...''

''जब सब रास्ते बंद हो जाते हैं तब भी तो जिंदा रहना चाहता है आदमी. मुझे अभी जीना है. अपने लिए, अपने बेटे के लिए.''

उसकी आवाज में पलभर के लिए जो विवशता झलकी थी उसका अब कहीं नामोनिशान भी नहीं था.

''लेकिन आप अपने बेटे को क्यों...''

मैं जो कहना चाहता था बार-बार मेरे संस्कार उसके आड़े आ जाते थे. और मेरे शब्द उसी संस्कार की भट्ठी में भस्म हो जाते थे.

''मैं जानती हूं जब वह समझने लायक होगा, मुझसे नफरत करने लगेगा. मैं चाहती भी यही हूं. तभी शायद...'' वह कुछ पल सांस लेने के लिए रुकी. उसका चेहरा तमतमा रहा था.

''मेरे बेटे को हरामी कहा जाता है. आप बता सकते हैं यहां कौन 'हरामी' है, कौन नहीं. क्या हम यह निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि हम उसी बाप की औलाद हैं जिसे हम बाप कहते हैं?''

उसका तर्क ठीक होते हुए भी कहीं बेतरह चुभ गया मुझे. मेरी तिलमिलाहट चाकू की तरह उछलकर मेरे होठों पर आ बैठी. इससे पहले कि मैं उसे बाहर फैंकता, उसकी धार एकदम कुंद पड़ गयी.

''मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूं.''

''मदद...हुंह....''

उसकी आवाज में खिल्ली उड़ाने जैसा भाव था. दूसरे ही पल वह हंस दी. शायद मुझे असमंजस में देख या कुर्सी पर पहलू बदलते देख.

उसके हंसने में न कोई व्यंग्य था, न लपट. यह हंसी कहीं बहुत गहरे से उभरी थी. उसके अंदर के किसी ऐसे कोने से जहां अभी तक उजाले की कोई फांक अटकी हुई थी.

''कोशिश तो की ही जा सकती है.''

मैंने कहा. लेकिन मुझे अपने ये शब्द खोखले लगे. एकदम फुसफुसे.

''नहीं. अब इसकी जरूरत नहीं है.''

कहकर वह एक कोने की ओर बढ़ गयी. कोने में रखी किसी चीज पर से उसने कपड़ा हटाया.

टाइपराइटर था.

मैंने कमरे के बीचों-बीच लटके पर्दे को उठाया. दूसरी ओर लड़का चारपाई पर गुदड़ी जैसी में लिपटा गहरी नींद सोया हुआ था. उसके शरीर का आधा हिस्सा नंगा था. मैंने आगे बढ़कर उस गुदड़ी को उसके गले तक ओढ़ाया और फुर्ती से दरवाज़े के बाहर निकल आया.

बर्फ पूरे वेग से गिर रही थी.

सामने खड्ड के उस पार, दो धूमिल-सी रोशनियों को जंगल अपने पंजों में जकड़े पूरी ताकत से निचोड़ने में लगा हुआ था.

इसके बावजूद वे टिमटिमा रही थीं. □

चलते-चलते

व्यापारी ने देखा कि भिखारी उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा है. वह ''बाबा, दो पैसे का सवाल है,'' सुनने के लिए तैयार हो गया. किंतु भिखारी बोला, ''अभी-अभी मुझे दो करोड़ की जायदाद मिली है मालिक, सच कह रहा हूं. पूरे दो करोड़ की!''

खिसिया कर व्यापारी ने उसे बधाई दी इस पर भिखारी बोला, ''आप एक अठन्नी दे दें तो बैंक को जरा फोन कर लूं पता नहीं चैक चला भी है कि नहीं.'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1 जून, 1946
चर्चित कृतियां : 'अग्निकुंड', 'धूप का दरिया' (कहानी-संग्रह) और 'खुले हुए दरीचे' व 'बायदा खिलाफ' (उपन्यास)
संप्रति : हिंद पॉकेट बुक्स व सरस्वती विहार में संपादक
संपर्क : 60 ब्रह्मनान स्ट्रीट, हापुड़

नफीस आफरीदी

पापाजी, आप मुर्दा हैं

वह अंकल के साथ आयी थीं और सीधे किचिन में जाकर कॉफी बनाने लगी थीं. संजू तब आंगन की छितराई बेल के नीचे था और पप्पी के साथ खेल रहा था. संजू और पप्पी ने उन्हें बारी-बारी से देखा था. एकबारगी ठिठके से रह गये थे. उनकी आंखों में कोई विचित्र भाव नहीं था. रोज-रोज देखी जाने वाली चीजों के प्रति आदीपन जैसा ही कुछ था, फिर भी पप्पी से रहा नहीं गया, वह कूं-कूं करता उनके पैरों से जा लिपटा. वह हलके से बिफरीं, 'हुश-हुश' के साथ लतियाया था उसे. पप्पी किकियाता भाग छूटा था. ऐसा रोज ही होता है, पर पप्पी मानता ही नहीं. संजू को गुस्सा आता है उस पर. क्यों मम्मी के पैरों से लिपटता है? उन्हें यह पसंद नहीं, तो फिर क्यों?

लेकिन अंकल ऐसा नहीं करते. वह पप्पी से कोई मतलब नहीं रखते. न उसकी तरफ देखते हैं, न धुतकारते हैं. संजू की तरफ बढ़ आते हैं सीधे. उनके मोटे होंठों पर मुस्कराहट फैली होती है. धीरे-से उसके गाल पर 'किस्सी' रख देते हैं. पप्पी उन्हें ऐसा करते देखकर भौंकता है और संजू को लगता है उसके गाल पर बड़ा-सा अंगारा छूकर छिटक गया है. संजू को कुछ भी अच्छा नहीं लगता. अंकल के होंठ हों या पप्पी का भौंकना.

पप्पी बहुत डरता है अंकल से. एक बार ऐसे ही भौंक दिया था. मूड ठीक नहीं था अंकल का. मम्मी से लड़ चुके थे. पप्पी का भौंकना अखर गया था. लात जमा दी थी उन्होंने जोर से. औंधा जा गिरा था पप्पी, फिर न जाने उसे क्या हुआ था कि गुर्राकर झपटा था और अंकल के पैर में काट लिया था. आपे से बाहर हो गये थे अंकल. संजू की हॉकी स्टिक उठाकर धुनाई कर दी थी और लौटने तक मम्मी से कहते रहे थे, "खतम करो इसे! कल इंजेक्शन दे दूंगा!"

अंकल चले गये थे और संजू ने रोना शुरू कर दिया था. पप्पी की लाश दिख रही थी उसे, फिर वह गड्ढा खोदकर गाड़ भी दिया गया था. उसे लगा था कि पप्पी न होगा, तो वह बिल्कुल अकेला रह जायेगा. रोते हुए गिड़गिड़ाया था वह, तब मम्मी ने उसे आश्वासन दिया था कि अंकल को वैसा कुछ नहीं करने देंगी. ज्यादा करेंगे, तो कहीं छोड़ आयेंगी. उन्होंने बताया था कि मेजर सुधींद्र कई बार पप्पी को मांग चुके हैं. उन्हें कह देंगी कि ले जायें. संजू इस पर भी राजी नहीं हुआ. पप्पी बच तो गया, पर अंकल से बेहद डरा-डरा रहने लगा.

आज भी अंकल ने उसके गाल पर अंगारा छुआया था, पीठ थपथपायी थी, "कैसे हो संजू?" उन्होंने पूछा था.

"अच्छा हूं, अंकल." उसने कहा था.

उस समय पप्पी वहां नहीं था. ऊपर छत की मुंडेर पर चढ़ा भौंक पड़ा था. अंकल बड़बड़ाये थे, "डर्टी डॉग!" और अंदर चले गये थे.

संजू कच्चे अंगूरों को तोड़ने लगा था. कुछ इस तरह जैसे झल्लाया हुआ हो. कच्चे अंगूर तोड़-तोड़कर उसने जेब में भर लिये और किचिन के सामने से गुजरा. मम्मी ने देख लिया. एक क्षण ठिठकीं वह, "कहां चल दिये, संजू?"

उसके सामने दो हिस्सों में बंटा घर फैला था. दो बंद कमरे थे और उनमें घटती अलग-अलग घटनाएं थीं. पापा और मम्मी अलग-अलग अपने अकेलेपन को पाटने में लगे थे. वह घर के इन दो हिस्सों के बीच बुरी तरह पिस रहा था.

"रिकी के पास." उसने बताया.

वह कुछ नहीं बोलीं. संजू गली में निकल आया. वह जानता है कि मम्मी कुछ नहीं कहेंगी. अंकल के रहते कुछ भी कहने की आदत नहीं. उन्हें मालूम है संजू जायेगा ही. कहीं भी निकल पड़ेगा. अंकल के आने के बाद उसे जल्दी रहती है. गली में निकलकर उसने एक बार मुड़कर दरवाजे की तरफ देखा. वह सोच रहा था, पप्पी आता होगा, पर वह नहीं आया. उसे और भी गुस्सा आता है, क्यों रहता है घर में? उसके साथ क्यों नहीं निकल पड़ता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भानमल के चबूतरे पर रिंकी लड़कियों के साथ 'उचकना' खेल रही होगी. उसे देगा कच्चे अंगूर. बहुत पसंद करती है रिंकी. अच्छी लड़की है. उसके साथ खूब पटरी बैठती है, पर बाकी लड़कियां मुंह बना लेती हैं. अपने साथ खिलाना तो दूर, बात भी नहीं करना चाहतीं. रिंकी के साथ और लड़कियों को देख कतराकर निकल जाता और लड़कों के झुंड में शामिल हो 'बिचेरा' खेलने लगता. लड़कों के साथ उसे खेलने में मजा नहीं आता. बहुत बेईमानी करते हैं. ऊपर से झगड़ा करने लगते हैं. एक-दो तो गंदी-गंदी बातें करते हैं. ऐसी, जिनका खेल से कोई संबंध नहीं होता. एक बार नरेन ने बहुत खराब बात कह दी थी. वह बर्दाश्त नहीं कर पाया. नरेन उससे तगड़ा और लंबा था, फिर भी उससे भिड़ गया. जाने कितनी जगह काटा-खसोटा. बदले में जो उस पर मार पड़ी, उसका कोई ठिकाना नहीं. नरेन से पिटा फिर मम्मी से. अंकल घर में थे. उनकी शह पर मम्मी अधिक बेदर्द हो उठी थीं.

शाम को उसने पापा से शिकायत की. वह चुप सुनते रहे. उसे गोद में लेकर प्यार किया. बाल सहलाये और कहा, "बहुत फटकारूंगा, बहुत-बहुत." संजू बहुत खुश हो गया था. उसे लगा था, अब मम्मी की शामत आयेगी. आखिर उसे बेवजह ही तो पीटा गया था, लेकिन अगले

दिन वह शाम तक प्रतीक्षा करता रहा. पापा ने मम्मी से कुछ भी नहीं कहा. दिन भर अपनी पेंटिंग में डूबे रहे. उसका मन हुआ था, दौड़कर जाये और कैनवास फाड़ दे, ब्रश तोड़ दे और सारे रंग नाली में उंडेल दे, पर कुछ नहीं कर पाया था वह. शाम के झुटपुटे में अंकल आ गये थे और पापा ने अपना कमरा अंदर से बंद कर लिया था. संजू समझ गया था, अब पापा के सामने एक बोतल होगी, वह स्वयं होंगे और तीसरा कोई नहीं होगा.

वह चुपचाप उठा था और रिंकी को ढूंढ़ने निकल पड़ा था. वह नहीं मिली, तो दिदिया के घर चला गया था. दिदिया उसे अच्छी लगती है, मम्मी से भी अच्छी. उनके साथ वह सब कुछ भूल जाता है.

उसे याद है. अनेक बार की यादें दिल और दिमाग में रची बसी हैं. वे क्षण ऐसे होते हैं, जब उसकी नसों में सिहरन-सी दौड़ जाती है. अजीब-से आवेश में जिस्म थरथराने लगता है. यह मोर्चा खुलने पर होता है. पापा और मम्मी के बीच युद्ध का ऐलान कोई भी घटना हो सकती है. एक दिन मम्मी ने पापा से ब्रश छीन कर रंग में डुबो, सारे कैनवास को बर्बाद कर दिया था. पापा किसी बालू के टीले की तरह अचानक ढह गये थे. हक्के-बक्के से, पैर पटखती जाती हुई मम्मी को देखते रहे थे, फिर पलटकर पेंटिंग को घूरा था. सहसा ईजल से कैनवास खींचकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया था और अंदर से कमरा बंद कर लिया था. इसके बाद वही होता है, जिसके होने से वह डरता है. पापा पीते हैं और रोते हैं.

रोते हुए पापा उसे कभी अच्छे नहीं लगते, जैसे चिंघाड़ती हुई मम्मी. वह सोचता, कभी इसका उलटा हो. पापा बरसें-गरजें और मम्मी की आंखों का बांध टूट जाये. 'कभी हो ऐसा, कभी हो ऐसा' की आवाजें उसके भीतर गूंजते-गूंजते थक चुकी हैं.

भानमल के चबूतरे पर रिंकी थी, पर 'उचकना' नहीं खेल रही थी, क्योंकि दूसरी लड़कियां नहीं थीं. रिंकी का चेहरा लटका हुआ था और आंखें डबडबायी हुई. हुलक के साथ उसकी ओर बढ़ा था संजू. जेब से कच्चे अंगूर निकाल कर बढ़ाये थे, "ले, रिंकी, देख, कित्ते सारे अंगूर!"

रिंकी ने न झोली फैलायी थी, न अंगूर ही लिये थे. आंखों का डबरा कुछ और भर गया था. अब उसकी नजर पड़ी थी. उसकी भरी-भरी आंखें देख वह हैरान रह गया था. रिंकी कुछ सहज हो आये, यह सोचकर उसने फिर आग्रह किया था.

"मुझे नहीं लेने अंगूर!" रिंकी तुनककर बोली थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"काहे के लिए?" उसने भोलेपन से पूछा था.

"अम्मा ने मना कर दिया है कि ना तो मैं तुम्हारे साथ खेलूं और ना तुमसे कुछ लूं." उसकी आंखों के डबरे का भराव बढ़ गया था.

संजू को झटका लगा. इत्ती अच्छी तो हैं रिंकी की अम्मा, फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा? न लड़ाई झगड़ा, न कुट्टा-कुट्टी. कुछ भी तो नहीं था. उसकी समझ में नहीं आया. कई बार ऐसा कुछ अप्रत्याशित घट-बीत जाता है कि उसकी अकल चकरा जाती है. वह उसकी तह में उतरने की कोशिश करता, पर कोरा ही वापस लौट आता.

रिंकी से ही उसने पूछना चाहा. वह चुप खड़ी रही. सहमी-सहमी नजरों से भीतर के दरवाजे की ओर देखा और फिर बिना कुछ बताये एकदम अंदर भाग गयी.

टी.वी. में कोई सीरियल शुरू हो गया था, इसलिए लड़के भी नजर नहीं आ रहे थे. वह अजीब-सी स्थिति में गर्दन लटकाये खड़ा था, फिर मरे-मरे कदमों से पेशकार साहब के मकान की तरफ बढ़ गया था. दिदिया घर पर मिल गयी थीं. उन्हीं से पूछा था उसने. भोलेपन से भरे उसके सवालों ने उदास कर दिया था उन्हें. इतना ही कह पायी थीं वह, "बड़ा होने पर सब समझ जाओगे."

"सब कुछ समझने के लिए बड़ा होना जरूरी है, दिदिया?" उसने फिर पूछा था.

"हां, भैया, ऐसी बातें बड़ों के लिए ही छोड़ देनी चाहिए." उनकी उदासी और गहरा गयी थी. वह रोशनदान में देखने लगी थी, जहां मादा चिड़िया अपने बच्चों को चुग्गा दे रही थी.

दिदिया पड़ौस के श्यामलाल पेशकार की इकलौती बेटी थीं और विधवा थीं. बच्चों से बहुत प्यार करती थीं. संजू से तो कुछ ज्यादा ही था. खाली वक्त में उसके दो ही काम होते—गली में खेलना या दिदिया के साथ गप्पें लड़ाना. पापा को वह बहुत अच्छा बतातीं, लेकिन मम्मी का नाम आते ही चुप्पी साध जातीं. इस रहस्यमय चुप्पी को वह नहीं समझ पाता था. बस, ऐसे ही एक बार उसे पता चला था कि मम्मी ने दिदिया का कुछ गिराया-बिराया था. पेशकार अंकल ने उन्हें एक हजार रुपये भी दिये थे. गिराने वाली बात को लेकर मम्मी पापा में झगड़ा न होता, तो जान भी न पाता.

पापा को किसी तरह पता चल गया था. वह घर में घुसते ही तड़पकर बोले थे, "मैं सोच भी नहीं सकता कि तुम इतना गिर जाओगी. पैसों के लालच में तुमने नीच काम किया!"

"मैं जमाने की रफ्तार को देखकर चलती हूं. तुम्हारी तरह पेंटिंग में डूबी रहने और भाषण झाड़ने वाली महिमामय नहीं हूं. सारा संतपन तुम्हें ही मुबारक!" मम्मी की आंखें लाल थीं और चेहरा विकृत हो गया था.

"तुमने नीरू का हमल गिराकर न तो उस बेवा के साथ अच्छा किया और न ही अगले साल रिटायर होने वाले पेशकार साहब के साथ." पापा बौखलाये हुए थे.

"अच्छा-अच्छा, बंद करो यह लफ्फाजी! अच्छा-बुरा समझना मुझे खूब आता है." उन्होंने बेहद तीखेपन से कहा था और पैर पटकती हुई अपना बैग संभालकर तेजी से बाहर निकल गयी थीं. उनके जाने का वक्त हो गया था. वह महिला अस्पताल की इंचार्ज डाक्टर थीं.

संजू नहीं जानता था कि दिदिया और राजीव चाचा के बीच कौन से संबंध थे. वह दिदिया के घर बहुत आया करते थे. उन्हें देखते ही दिदिया का चेहरा लाल हो जाता था. कुछ झेंपी-झेंपी-सी लगने लगती थीं. एक बार संजू ने राजीव चाचा को दिदिया की पप्पी लेते भी देखा था. उस रोज दिदिया ने उसे ढेर सारा प्यार किया और गाजर का हलवा बनाकर खिलाने के बाद कहा था, किसी से कहना नहीं. वह नहीं समझ पाया तो उन्होंने समझाया कि पप्पी वाली बात अच्छी नहीं होती. वह फिर भी नहीं समझ सका, लेकिन उसने किसी से कुछ कहा नहीं.

एक दिन छज्जे में आकर दिदिया ने उसे आवाज देकर कहा था कि अपने राजीव चाचा को बुला लाये. उनके पेट में दर्द हो रहा था. उसे दिदिया पर हंसी आयी थी. पेट दर्द में भला वह क्या करेंगे? और उसने मम्मी से कह दिया था.वह अस्पताल जाने को तैयार खड़ी थीं. अपना बैग उठाये दिदिया के पास पहुंच गयीं. लौटीं तो उनकी त्यौरियों पर बल चढ़े थे. संजू गली में खड़ा मुर्गों की लड़ाई देख रहा था. चलते हुए उससे बोली थीं, "शाम को पेशकार साहब आयें तो मुझे बताना." वह गर्दन हिलाते हुए लहूलुहान मुर्गों को देखने लगा था.

पापा मम्मी की लड़ाई के दिन वह सीधा दिदिया के पास पहुंचा था और कहा था कि एक तो मम्मी ने उनका न जाने क्या गिरा दिया, ऊपर से रुपये भी ले लिये. उसने वायदा किया था कि बड़ा होने पर वह उनके पैसे चुका देगा. उसने बताया था कि एक दिन रिंकी का गुलदान उसने गिरा दिया था. शीशे का सतरंगा गुलदान था. गिरकर टूट गया. मामा के यहां कश्मीर गयी थी, वहीं से लायी थी. वह नया गुलदान तो नहीं दे सका, पापा से लाकर पचास रुपये दे दिये थे, जो उसकी मम्मी ने नहीं रखे और कह दिया, "कोई बात नहीं, दूसरा आ जायेगा."

उसने यह भी पूछा था कि जो कुछ गिरा है, क्या वह दुबारा नहीं आ सकता? दिदिया कहेंगी, तो वह पापा से मंगवा देगा. दिदिया सहसा भड़क उठी थीं. पहली बार खूब डांट पिलायी थी और कान भी उमेठ दिया था. दिमाग भिन्ना गया था उसका. वह हैरान रह गया था. अचानक दिदिया को क्या हो गया था? उसकी आंखें भर आयी थीं और भागता हुआ अपने घर की छत पर चढ़ गया था. उसे दिदिया पर बहुत गुस्सा आ रहा था. मंगली जैसी पागल हो गयी थीं, लेकिन वह पागल तो

लघुकथा

सिलसिला

अशफाक अहमद

करीमन दादी की रोजाना की ये आदत थी, जब तक एक कहानी न सुना देतीं, वो चैन से सो नहीं पाती थीं. आज भी रोज की तरह मुहल्ले की चंद नौजवान लड़कियां उनके इर्दगिर्द जमा थीं – उन्होंने दर्द भरी आवाज में कहानी की शुरुआत की... "बहुत साल पहले की बात है.सलीम नाम का एक नौजवान, साजिदा नाम की एक लड़की को कहीं से भगा लाया. कहने लगा मैं इस लड़की से शादी करना चाहता हूं. मुहल्ले के तमाम लोग सलीम की इस राय से सहमत हो गये. सलीम का निकाह साजिदा के साथ कर दिया गया. कुछ ही महीने गुजरे होंगे, उनके घर एक हंसती-खेलती लड़की पैदा हुई...समीना. लेकिन जवान होते ही मुहल्ले के एक लड़के रहीम के साथ फरार हो गयी. साजिदा और सलीम ने गम बर्दाश्त न करते हुए खुदकशी कर ली. कुछ दिनों बाद समीना को भी इस बात का पता चला. वह भागी-भागी आयी, लेकिन वक्त किसी का इंतजार नहीं करता. जो होना था हो चुका. धीरे-धीरे दिन बीतते गये. समीना के घर भी एक लड़की पैदा हुई. लेकिन जवानी की दहलीज पर कदम रखते ही वह फरार हो गयी. समीना ने ये गम बर्दाश्त न करते हुए खुदकशी कर ली."

करीमन दादी ने आंसू पोंछते हुये अपनी कहानी जारी रखी, "जानते हैं वह लड़की कौन थी? वह मैं हूं!" भीड़ में बैठी हुई तमाम लड़कियों के मुंह हैरत से खुले के खुले रह गये.

"लेकिन अब वह सिलसिला जो हमारे पुरखों से चला आ रहा था, खत्म हो चुका है...क्योंकि मैं बांझ हूं. मुझे कोई औलाद न हुई!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हैं. अच्छी-भली हैं. मंगली तो अजीब-अजीब हरकते करती है. कपड़े फाड़कर सड़कों पर घूमती है.

रात फिर पापा-मम्मी में कहा-सुनी हो गयी थी. वह अपनी पढ़ने की मेज पर बैठकर पढ़ने के बजाए ऊंघ रहा था. दिदिया का नाम आया, तो कान उधर ही लगा दिये. पापा कह रहे थे कि मम्मी की हरकत की वजह से अब राजीव बिल्कुल हत्थे से उखड़ गया है. उन्होंने राजी किया था कि तुरंत ब्याह कर ले; पर अब....?

पापा एक रद्दी आदमी जैसे लगते है संजू को. कभी-कभी ही मम्मी पर गुस्सा होते और जरा बहुत देर में ही यह गुस्सा ढह जाता. मम्मी बहुत तगड़े वार करतीं. बातों-ही-बातों में कचूमर निकाल देतीं. वह चीख-चीखकर कहतीं, "मैं जैसी थी, तुम्हारे सामने थी. कुछ भी नहीं छिपाया था तुमसे, फिर क्यों स्वीकार बैठे?"

"मैंने सोचा था तुम बदलोगी, पर तुम नहीं बदलीं. मैं कोशिश करके हार गया. मैं जानता हूं तुम अपनी गंदी केंचुल को उतार कर नहीं फेंक पाओगी." पापा मुट्ठियां भींचकर दांत चबाते हुए कहते.

"तो छोड़ क्यों नहीं देते? दूसरी कर लो. भतेरी मिल जायेंगी." मम्मी की उबल आयी आंखें संजू को डरा देतीं.

वह सहम जाता, फिर भागकर किसी कोने में जा छिपता. वह कांप रहा होता. होंठ थरथरा रहे होते. उसकी चकरायी हुई अकल में कांटे से चुभने लगते. यह सब क्या है? इनके बीच यह जंग क्यों छिड़ी हुई है? ये बार-बार गली के मुर्गों की तरह क्यों लड़ते हैं, पापा उसे बहुत बार बेकार के आदमी लगते. पता नहीं क्या हो जाता था उन्हें? मम्मी जैसे-जैसे चीखती-चिल्लाती वह थके-थके से नजर आने लगते, फिर हार जाते एकदम. आंखें डबडबायी-सी हो आतीं. कंधों पर हाथ लटक जाते और धीमे कदमों से जाकर वह अपने कमरे में बंद हो जाते, फिर सब वही होता, जो वह देख नहीं रहा होता और तब उसे लगता वह कुछ भी नहीं है. उसका कहीं कोई अस्तित्व नहीं. वह अपने को गलत जगह फंसा हुआ महसूस करता और अपने भीतर की बेचैनियों को थामने दिदिया के पास भागता. वह उसे अच्छी लगतीं. इतनी कि जैसे मां होती है. एक बार उसने कह भी दिया था, "दिदिया, मैं तुमको मां कहकर बुलाऊंगा."

वह हंस पड़ी थीं. "कुछ भी करके बुलाओ. हूं तो मां बराबर ही."

"नहीं, तुम उनके बराबर नहीं, उनसे बड़ी हो. जैसे मां होती है. सच्ची मां." उसने कहा था और दिदिया के चेहरे को गाढ़ेपन—से देखने लगा था. ऐसे जैसे कोई दूध पीता बच्चा देखता हो.

दिदिया को लगने लगा था कि वह बड़ा होता जा रहा है, क्योंकि वह बड़ी—बड़ी बातें करने लगा है. ऐसी बातें, जो उसके कद और अक्ल से भी बड़ी थीं. उलझी-सुलझी-सी. खरोंचों के जंगल उगे थे. इतने झाड़-झंखाड़ थे कि उन्हें घबराहट होने लगी थी. आखिर उन्हें कहना ही पड़ा था, "इतना मत सोचा करो, संजू! अपनी पढ़ाई में ध्यान लगाओ. तुम्हें बड़ा आदमी बनना है."

"बड़ा आदमी बनकर क्या होगा, दिदिया? किसे खुशी होगी?" उसने गहरी उदासीनता के साथ कहा था.

संजू का सवाल बहुत देर तक उनके दिमाग में बजता रहा था. फूटी तुरही से निकली बेसुरी आवाज की तरह. सचमुच उनके पास कोई जवाब नहीं था. संजू के लिए कोई हल खोज पाना भी संभव नहीं लगता था.

वह जानती थीं कि संजू के पापा ने शुरु से ही अभावों को ओढ़ा है और अपनी मस्ती में जिये हैं. ट्यूशनों पर गुजारा करते थे. जरूरत पड़ने पर रंग और कैनवास के लिए अपनी नयी—की—नयी शर्ट बेच देने वाले व्यक्ति के भीतर आज भी किसी प्रकार का सौदा न करने की दृढ़ता है, लेकिन संजू की मम्मी एक सौदागर की तरह सब कुछ खरीद लेना चाहती हैं. रामानुज अंकल, साड़ियों का अंबार, फ्रिज, रंगीन टी.वी. और कार के सपने उनके जीने के लिए जरूरी हैं. गंदे मौहल्ले का यह मकान, पिछड़ा हुआ कस्बा, मामूली आदमी की तरह संजू के पापा, सब कुछ उन्हें अपनी हैसियत से छोटा लगता. हर चीज को वह अपने हिसाब से बदल देना चाहती थीं. संजू भी उनके लिए फुर्सत के क्षणों की चीज बन गया था.

इतने पर भी संजू के पापा पता नहीं कैसे उस औरत के साथ रह लिये, जो जिंदगी के हर हिस्से में अपने ही ढंग से जीती रही. यहां तक कि अपने गंवई बाप और उसके गांव-घर को भी छोड़ा. अपने पूर्व पति परचून के उस दूकानदार को भी छोड़ा, जिसे अपनी पत्नी को डॉक्टर बनाने की धुन थी और बाद में उसने आत्महत्या कर ली. इतना सब होने पर भी वह कहीं ठहरी नहीं. लगता था, उनके भीतर सिर्फ एक पत्थर है, जो अभी रामानुज नाम की हस्ती के लिए पिघला हुआ है, पर कब अपने पूर्व रूप में आकर उन्हें भी दौंचकर किसी और दिशा में फिंक जायेगा, कुछ ठीक नहीं?

संजू को लगता, वह एक घने जंगल में भटक रहा है, जहां दो जानवर एक-दूसरे के सामने खड़े गुर्रा रहे हैं. जब यह गुर्राहट तेज होती है, तो उसे क्रिकेट कमेंटरी या टी.वी. सीरियल भी नहीं बदल पाते. ऐसे में वह छत पर चला जाता और सूनी-सूनी आंखों से नीले आसमान में तैरते परिंदों और पतंगों को देखा करता या फिर किसी कोने या सीढ़ियों के नीचेवाली बुखारी में घुसकर अपने आपको नोचता-खसोटता, पागलों-सी हरकतें करता और फिर रोते-रोते सो जाता.

लघुकथा

चैन की सांस

सीतेश आलोक

किसी की जेब से बटुआ निकालते समय वह रंगे हाथों पकड़ा गया. अचानक गालियों की बौछार और अपनी ओर तनी हुई मुट्ठियां देखकर वह घबराया तो...पर दूसरे ही क्षण उसने अपने को संभाल लिया.

लोगों को जैसे ललकारते हुए वह बोला, "मारो, और मारो....मार डालो मुझे. यही तो मैं चाहता हूं. क्या रखा है जिंदगी में...?"

भीड़ उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार से सकपका गयी.

वह तैश में बोलता गया, "तुम लोग मुझे ही तो मार सकते हो...उन काला बाजारियों को तो छू नहीं सकते जो जनता का खून चूस रहे हैं...उन मंत्रियों की तो आरती उतारते हो जो जनता का गला काट कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं. हां...हां...मार डालो मुझे क्योंकि मैंने अपना पेट भरने के लिए चार पैसे चुराए हैं...अपने भूखे बच्चे के दूध के लिए..."

"अरे जाने दो बेचारे को...." उसकी बात काटते हुए एक ओर से आवाज आयी.

"छोड़ो यार इसको..." किसी दूसरे ने तरस खाते हुए कहा.

"अच्छा जाओ, लेकिन ऐसा फिर कभी मत करना, नहीं तो..." उसका कॉलर छोड़ते हुए उसे पकड़ने वाले व्यक्ति ने कहा. लोग बिखरने लगे.

वह सोच-सोच कर आश्चर्यचकित भी था और प्रसन्न भी कि ठीक समय पर अपनी बुद्धि के प्रयोग से उसने अपनी जान बचा ली.

लौटते समय उसने महंगी विलायती शराब की एक बोतल ली. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दिन अंधेरा पसरने पर वह छत से उतरा था. उसकी आंखें चमक रही थीं, जैसे ढेर सारा उजाला भर गया हो. बांछें इस तरह खिली पड़ रही थीं, जैसे अभी–अभी कुछ सुखद घट गया हो. वह सीधे पापा के पास चला आया था, जो किसी मोटी किताब में डूबे थे. आहट पर उन्होंने गर्दन उठायी और किताब औंधी रख दी थी. उन्हें लगा, वह उसे इसी तरह तरोताजा देखना चाहते हैं, बल्कि होंठों की मुस्कराहट को खिलखिलाहटा में बदलते हुए देखने का मन है.

लेकिन क्षण भर में ही बुझ-से गये. उनके भीतर एक मसमसाहट-सी उतरती चली गयी. वह जानते थे, मुस्कराहट की उम्र क्षणिक है. कुल इतनी, जो हवा के आवारा झोंके की तरह आकर हुलक भर दे और तभी–तब एकदम लौट जाये, छेड़कर चुपचाप. इस उम्र में ऐसा ही होता है. पल में हंसना–पल में रोना. स्थायी नहीं होता कुछ भी. कुछ दिलचस्प घटा होगा या उचंगो कल्पना ने हिलौरें भेंट दी होंगी. अभी कुछ देर में ही लौट जायेगा अपने कोप–भवन में, जहां उसके सिवा कोई नहीं होगा. थोड़ा–सा बचपना होगा और ढेर सारी घुटन.

कुछ बोल नहीं पाये थे वह .ठगे से देखते रहे थे. संजू ही बढ़ा था आगे, "क्या मैं पंछी बन सकता हूं, पापा ?"

"क्या करोगे फिर ?" धीमी आवाज में पूछा था.

"पंछी बहुत अच्छे होते हैं. आपस में बहुत प्यार करते हैं और मस्ती से आसमान में उड़ते-फिरते हैं. शाम को फिर लौट आते हैं घौंसलों में.' उसकी आंखों में चमक और होंठों में मुस्कान शेष थी. वह अपना गाल पापा की बढ़ी हुई दाढ़ी पर रगड़ने लगा था.

बहुत अजीब कुछ भी नहीं था, इस पूछने में, लेकिन उनके लिए जवाब देना बहुत कठिन था. दिमाग की नसों में बेचैनी-सी भर गयी थी. कुछ भी नहीं सूझने की स्थिति में वह झुंझला गये थे और बोले थे, "क्योंकि पंछी कुत्ते नहीं होते. अब पूछोगे कि कुत्ते क्यों झगड़ते हैं, तो मैं क्या जवाब दूंगा? ये ऐसी बातें हैं, जिनका जवाब देना मुश्किल है."

"लेकिन मम्मी और अंकल तो पंछी हैं. पापा." उसने बेहद भोलेपन से कहा था.

"प्लीज, संजू!" वह आहत्-से हो उठे, जैसे किसी ने उनके भीतर पलीता रख दिया हो.

"तो पापा आप क्यों नहीं बन जाते पंछी ? आप क्यों नहीं करते मम्मी से प्यार?" उसने गहरी-गहरी आंखें उन पर गड़ा दी थीं.

"संजू!" वह बिलबिला उठे थे. भीतर जैसे विस्फोट हो गया था. उन्होंने संजू को खींचकर अपने से चिप्टा लिया था और भींच–भींचकर प्यार करने लगे थे. अचानक न जाने क्या हुआ था कि संजू सुबकने लगा था.

आज भी वह पप्पी के साथ खेल रहा था. सफेद–झबरा, पस्ता कद कुत्ता उसका साथी होता. उनके पास प्लास्टिक की सतरंगी बॉल थी. संजू जूते की टो से किक मारता. पप्पी बॉल की तरफ दौड़ता और पंजों से धकियाता वापिस उसके पास छोड़ जाता. वह बेहद खुश था, पर संजू में उतनी उमंग नहीं थी. ऐसे खेल अब उसे बचकाने लगते थे. उसका मन होता कि केरम या लूडो खेले. पप्पी इनमें उसका साथ नहीं दे सकता था. पिछली गर्मियों में वह केरम बोर्ड लाया था. कुछ दिन पापा के साथ खेला. वह खुद ही ऊब गये. केरम से अधिक उन्हें रंग प्यारे थे या फिर किताबें.

अभी-अभी पापा कहीं से लौटे थे. थके-थके से लग रहे थे. उनका चलना बोझ ढोने जैसा था. माथे पर कुछ अधिक सिलवटें थीं. उसे देखकर वह मुस्कराये थे. उनकी मुस्कराहट में फीकापन झूल रहा था. वह भी मुस्करा दिया था. बस, इतना भर कि जैसे किसी ने स्वीकृति में गर्दन हिला दी हो.

पापा आंगन में इजीचेयर डालकर बैठ गये,पुश्त पर सिर टिकाकर आंखें मूंद लीं. बॉल को किक लगाते हुए सहसा उसका पैर रुक गया था. कहीं पापा के लग गयी तो! पप्पी खेल की उत्तेजना में किकिया रहा था. वह अचकचाया-सा खड़ा रहा.

"खेलो-खेलो! रुक क्यों गये?" पापा ने आंखें खोलते हुए कहा.

"आप बरामदे में हो जाइए ना." संजू बोला था.

"नहीं, तुम खेलो!" वह मुस्कराने लगे.

पप्पी ने जोर से किक मारी. बॉल जोर से उछली. दीवार से टकरायी और धमाक से उनके चेहरे पर जा लगी. उन्होंने दोनों हाथों से चेहरा ढांप लिया. संजू कांप उठा. पापा ने कभी उसे पीटा नहीं था, लेकिन आज.....!

उन्होंने चेहरे से हाथ हटा लिये थे और उसे घूरने लगे थे. संजू की गर्दन झुकती चली गयी. पप्पी बॉल को पंजों से लुढ़का रहा था. पापा अचानक उठे और उससे बॉल छीन ली. संजू ने चौंककर देखा! आज तो फाड़ ही डालेंगे, चिथड़े उड़ा देंगे बॉल के.

दर्शन और पाप

अनिल श्रीवास्तव

एथेंस की लोकतांत्रिक सत्ता द्वारा नास्तिकता एवं नौजवानों को भड़काने के आरोप में सुकरात को मौत की सजा सुनायी गयी. सुकरात ने बगैर किसी भय या दुविधा के विष का प्याला होंठों से लगा लिया. ई.पू. 399 की उस घटना ने स्पष्ट कर दिया कि सुकरात की जिन सिद्धांतों में आस्था थी उन्हीं सिद्धांतों से उसका आचरण भी निर्धारित होता था...कि स्पष्ट नजर आती मृत्यु भी उसे सिद्धांत विरुद्ध आचरण करने को मजबूर नहीं कर सकी. दोस्तों द्वारा मौका जुटाये जाने पर भी उसने काल कोठरी से भागना उचित न समझा. ऐसा करना उसकी दृष्टि में राज्य के कानूनों का उल्लंघन होता जिसे वह एक नागरिक के लिए सिद्धांत विरुद्ध मानता था. साथ ही वह उस पर अडिग था कि विचार की स्वतंत्रता होनी चाहिए और उसने अपने विचार प्रकट कर किसी कानून को नहीं तोड़ा है.लोकतांत्रिक सत्ता को सुकरात की यह विचार-स्वतंत्रता असहनीय लगी. वह भी अपने मनगढंत आरोपों पर अड़ी रही. अंततः सुकरात को विष का प्याला पीकर अपने सिद्धांत और सिद्धांतनिष्ठ आचरण की रक्षा करनी पड़ी.

सुकरात के योग्यतम शिष्य और खुद एक महान दार्शनिक प्लेटो की दृष्टि में यह 'राज्य का दर्शन के प्रति पाप' था. वह इसे कभी भी माफ नहीं कर सका. सारी जिंदगी वह एक आदर्श एवं न्यायोचित शासक ढूंढने में लगा रहा. अपने विचारों के अनुरूप 'योग्य शासक' बनाने के उसके आजन्म प्रयासों के बावजूद कोई योग्य शासक न बन सका. इतिहास अपनी उथल-पुथल भरी रफ्तार से बदस्तूर चलता रहा. सुकरात द्वारा विष का प्याला पीने के लगभग पचहत्तर वर्ष बाद जैसे इतिहास का एक चक्र पूरा हो गया हो. सिकंदर महान की मौत के साथ ही अभिजात तंत्रीय एवं निरंकुश शासकों का दौर-दौरा समाप्त हुआ. एथेंस में एक बार फिर से लोकतांत्रिक सत्ता की स्थापना हुई और फिर से एक अन्य दार्शनिक पर नौजवानों को भड़काने के आरोप में मुकदमा चलाये जाने की तैयारियां जोरों से होने लगीं. इस बार अरस्तू पर यह आरोप लगा था. अरस्तू को किसी तरह राज्य की इन तैयारियों की खबर लग गयी. एक रात वह चुपके से देश छोड़कर भाग गया. ...लेकिन जाते-जाते वह अपने शिष्यों को देश छोड़कर भागने का एक कारण भी बता गया था – मैं राज्य को दर्शन के प्रति दुबारा पाप करने का मौका नहीं देना चाहता. निश्चय ही, अरस्तू कहीं ज्यादा व्यावहारिक दार्शनिक था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"संजू, तुम्हें बॉली-बॉल आती है?" वह बोले थे.

"य....यस, पापा!" वह घबराहट में हकला गया था.

"तो आओ, खेलें!" पापा ने बॉल उसकी ओर उछाली थी.

कुछ भी नहीं समझ पाया था वह. हैरानी में बॉल को वापस फैंकने की जगह झेल बैठा था. पापा जोर से हंस पड़े और मुंह से निकला, "फाउल!"

"सॉरी, पापा, मैं चूक गया था. अच्छा, मैं सर्विस करता हूं." भीतर का भय बह गया था और उसने एक हाथ पर बॉल रखकर दूसरे हाथ से सर्विस कर दी थी.

दोनों खेलने लगे थे. खेलते रहे थे. पप्पी दोनों के बीच कूदता रहा था. बॉल गिरती, तो तेजी से उस पर लपकता. किसी के पास भी बॉल पहुंचा देता.

संजू ने देखा मम्मी आ गयी थीं, पर उन्होंने इधर ध्यान नहीं दिया. सीधे अपने कमरे में चली गयी थीं. खेल जारी रहा. बॉल एक बार उस तरफ जा गिरी. संजू ने दौड़कर उठायी, तो कमरे में भी झांक लिया. मम्मी औंधी पड़ी थीं और गहरी-ठंडी सांसें फेंक रही थीं. वह चुपचाप लौट आया. आज क्या हो गया मम्मी को? कभी इस तरह हारी हुई-सी नहीं लगीं. हमेशा गम पर सवार रहीं. सारे झगड़े-झमेले के बावजूद तरोताजा दिखती थीं. लौटतीं, तो होंठों पर गुनगुनाहट होती. टू-इन-वन में कैसेट प्ले कर देतीं और बाथरूम में घुस जातीं. देर तक नहाती-गुनगुनाती रहतीं. उन्हें रत्ती भर भी एहसास नहीं होता कि घर में और लोग भी हैं, जो अपना-अपना नर्क भोग रहे हैं.

एक क्षण संजू गुमसुम खड़ा रहा था. पापा ने उसे बाहर खींचा था, "हरीअप, संजू!" और खेल फिर जारी हो गया था.

तभी रामानुज अंकल आये थे और अचानक बॉल उनकी खोपड़ी में जा लगी थी.

"रास्कल!" दांत भींचकर चीखे थे वह, लेकिन पापा को देखकर झेंप गये थे और तेजी से मम्मी के कमरे में चले गये थे.

पापा के हाथ झूल गये. चेहरा लटक गया. मुर्दनी-सी छा गयी थी, "बस, खेल खत्म." उन्होंने धीरे से कहा था.

उसने देखा, वह अपने कमरे की तरफ जा रहे थे. मरे-मरे पैरों से. मुर्दा जिस्म ढोते हुए. अभी शाम है और पापा रंगों में नहीं, बोतल में डूबेंगे. उसके मन में आया, दौड़कर जाये,बोतलों को चूर-चूर कर दे. यह सब चलते मुर्दा बन गये हैं पापा. मुर्दे से भी बदतर.

लेकिन वह कुछ नहीं करता. मम्मी के कमरे से आती तीखी बहस पर भी ध्यान नहीं देता. मम्मी की आवाज में तेजी भरी हुई थी और अंकल का लहजा झिड़कियों वाला था. उसने गर्दन झटक दी थी और सीढ़ियां चढ़कर छत पर चला आया था, पतंगबाजी के नजारों में अपने को उलझाने के लिए, पर आसमान में कटने-टूटने वाली इन खिलंदड़ी दुर्घटनाओं में मन नहीं रमा उसका. लेट गया सीमेंट की चिकनी छत पर. ठंडी-ठंडी छत ने उसे छुआ. जिस्म में सिहरन-सी दौड़ी. आंखें मुंदती चली गयीं. न जाने कब तक पड़ा रहा ऐसे ही. उसके सामने दो हिस्सों में बटा घर फैला था. दो बंद कमरे थे और उनमें घटती अलग-अलग घटनाएं थीं. पापा और मम्मी अलग-अलग अपने अकेलेपन को पाटने में लगे थे. वह घर के इन दो हिस्सों के बीच बुरी तरह पिस रहा था.

कोई चीखा था. चौंककर उठ बैठा वह, फिर एक और चीख. वह मम्मी थीं. बेचैन हो उठा वह. रोने के बीच में चीखें. वह सीढ़ियां उतरता चला गया.

अंगूर की बेल के नीचे वह ठिठक गया. मम्मी के कमरे का दरवाजा खुला था. रोशनी में एक परछाई हिल रही थी. वह रामानुज अंकल थे. परछाई हिल रही थी, फिर आवाज आयी थी,"जमाने भर की जूठन हो तुम! कुतिया कहीं की! जहां देखा, वहीं मुंह मारने लगी, तुम समझती क्या हो अपने को? चाहती हो, तुम्हीं से बंधा रहूं! माइंड योर सेल्फ, मैं तुम्हारे झांसे में आने वाला नहीं!"

"आज तुमने मुझ पर हाथ उठाया, राम! मुझे गाली दी तुमने! मैं तुम्हें बर्बाद कर दूंगी. देख लेना..." रुलाई और गुस्से में लिथड़ी हुई आवाज थी.

"ओSSS, यू शट अप!" चीखे थे रामानुज अंकल और तड़ाक की आवाज के साथ एक भरपूर तमाचा दूसरी परछाई के चेहरे पर छा गया था. परछाई लड़खड़ाती हुई ओझल हो गयी थी. घुटी-घुटी चीख के साथ.

संजू आंगन में खड़ा था और थरथर कांप रहा था. उसकी मुट्ठियां भिंची थीं और पसीने से लिसलिसा रही थीं. क्रोध और बेबसी ने अजीब-सी हालत बना दी थी. आंखें गहरे सुर्ख रंग से भर गयी थीं और बहती जा रही थीं. पप्पी उसके पैरों से सटा भौंक रहा था. शायद वह डर गया था. शायद उसके भीतर का जानवर भी रो रहा था.

अचानक न जाने क्या हुआ. संजू बिलबिलाने लगा था "पापा जी!.... पापा! आप सचमुच मुर्दा हैं! हां, बिल्कुल मुर्दा! ....आप मेरे पापा नहीं. मैं आपसे प्यार नहीं करूंगा, पापा! कभी भी नहीं. समझ गये न! मझे पापा अच्छे नहीं लगते."

और वह दौड़ता हुआ मम्मी के कमरे में घुस गया. पप्पी भी उसके पीछे था. वह बहुत जोर से भौंक रहा था. संजू एकदम रामानुज अंकल के पैरों में लिपट गया था और बक्का भरकर कूल्हे पर काट लिया था. पप्पी के दांतों में उनकी पतलून का पांयचा फंसा था, जिसे गुर्राते हुए वह खींच रहा था.

"यू डर्टी, अंकल, आई हेट यू...आई हेट यू...!" उसने जोर से दांत किटकिटाकर कहा था और अबकी बार और भी जोर से काट लिया था.

कराह उठे थे वह. तिलमिलाकर जोर से धक्का दिया था. संजू फिसलता हुआ दीवार से टकराया था. उसके होंठों से निकला था, "हाय मम्मी!"

मम्मी के चेहरे का रंग बदल गया था. डरा-सहमापन-सा भर गया था आंखों में. ऐसा लगा, जैसे दिल अभी उछलकर हलक में आ जायेगा. वह उसकी तरफ लपकी थीं. उसे बांहों में भरकर उठाया था. साड़ी के पल्ले से पसीने से भीगा चेहरा और बहती हुई आंखें पौंछी थीं.

संजू ने गहरे तक देखा था उन्हें. उसके होंठ थरथराये थे. जोर-ज़ोर से गर्दन हिलाते हुए कहा था उसने, "नहीं-नहीं, मम्मी, मुझे बहकाओ मत..... मैं किसी के बहकावे में आने वाला नहीं. आप बहुत बुरी हैं, मम्मी! मैं आपसे भी प्यार नहीं करूंगा."

वह तड़पकर उनकी बांहों से निकल गया था और धीरे-धीरे बाहर जा रहा था. पप्पी आंगन में मुंह लटकाये खड़ा था. वह रामानुज अंकल को गली तक खदेड़ आया था. संजू ने पप्पी को गोद में उठा लिया था और सीने में भींचे हुए अपने कमरे की तरफ जाने लगा था.

मम्मी कमरे के दरवाजे पर खड़ी थीं. उसे देखती हुई. उन्हें लग रहा था, जैसे कोई उनका कलेजा खींचकर लिये जा रहा है. संजू ने धड़ाक से अपने कमरे का दरवाजा बंद कर लिया था. दरवाजे की आवाज उनके दिमाग में हथौड़े की तरह पड़ी थी और वह दोनों हाथों से सिर पकड़कर वहीं बैठ गयी थीं. □

चलते-चलते

किशोर युवती बच्चों की तैराकी की कक्षा ले रही थी. उसे ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय के तैराकी पूल में क्या कुछ प्रगति हुई देखना था. एक युवा मां ने पास में खड़े आदमी से कहा, "जो गुलाबी सूट पहने है यह मेरी लड़की है. इसकी तैराकी की पहली क्लास है. देखो, इसने तैराकी में कैसी तरक्की की है."

आदमी बोला, "ये जो अध्यापिका है न, यह मेरी पुत्री है और यह तैराकी की क्लास पहली बार ले रही है." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : रामपुर : 5 अप्रैल 1951
अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. अध्यापन के बाद भारतीय पुलिस सेवा में प्रवेश.
संप्रति : पुलिस अधीक्षक विजिलेंस, मेरठ.

शैलेंद्र सागर

अजनबी लोग

मुन्ने की मा,.कुडी लगा लीजो...मास्टर टीकाराम ने साइकिल गली में खड़ी करके दरवाजे की सीड़ियों पर सीधे पांव की पैंट के पहुंचे को क्लिप में दबाते हुए नितप्रतिदिन की भांति आवाज दी.

''आ मैं...'' अपनी पत्नी का स्वर सुनकर आश्वस्त होते हुए वह साइकिल पर चढ़कर स्कूल की ओर चल दिये.

यही कोई दस-बारह मिनट का मार्ग था यह. कई मोहल्ले, गलियों को पार करता ऊबड़–खाबड़ व संकुचित मार्ग. लोग रोज ही मास्टर टीकाराम को इधर जाते देखकर समय का अनुमान लगाया करते थे. स्थान, स्थान पर 'मास्साब नमस्ते', 'गुरुजी प्रणाम', 'पां लागू मास्साब' के स्वर उभरते जाते. मास्टर टीकाराम एक हाथ उठाकर, कसर हिलाकर और 'जीते रहो, जीते रहो' पुकारते, बुदबुदाते जल्दी-जल्दी पैडल मारते ठीक समय पर स्कूल पहुंचते, हां, कभी-कभी इन अभिवादन करनेवाले कुछ छात्रों व व्यक्तियों के लहजे में छिपे व्यंग्य व उपहास से मन ही मन खिन्न भी होते थे. पिछले कुछ वर्षों में हुए इन परिवर्तनों पर मास्टर टीकाराम कभी-कभी अत्यत व्यथित अनुभव करते किंतु समग्र परिवेश में हुए अनगिनत कष्टप्रद परिर्वतनों को दृष्टिगत करते हुए शीघ्र अपने को समझा लेते.

स्कूल के निकट आते–आते विद्यार्थियों के समूहों से साक्षात्कार होने लगे. भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिवादन कानों में पड़ने लगे. परीक्षा दिवस होने के कारण आज स्कूल के आस-पास अच्छी चहल-पहल दीख पड़ती थी. अन्य दिवसों पर स्थिति भिन्न होती. स्कूल के निर्धारित समय पर आने वाले छात्रों की संख्या प्राय: कम होती. पिछले कुछ वर्षों में यही स्थिति अध्यापक वर्ग की भी होती जा रही थी. अधिकतर अध्यापक विलंब से ही आते. जो अधिक विलंब और अनियमित रूप से आते, वे उतने ही अधिक लोकप्रिय व सम्मानित बनते दीख पड़ते.

''अरे यार, श्रीवास्तव तो सचमुच दादा है. रोज एक, डेढ़ घंटे लेट आता है और इंटरवल के बाद गायब...''

''भइया, बड़ी पहुंच वाला है. देखते नहीं लगभग प्रतिदिन ही डी.आइ.ओ.एस. उसे बुलाते रहते हैं.''

''सो तो है. मगर अब टाइम से आने वाले कितने हैं, सिवाय टीकाराम के हर कोई किसी न किसी दिन लेट हो ही जाता है.''

''टीकाराम तो बूढ़े हो चले हैं. घर में तबीयत नहीं लगती होगी उनकी.''

सब के सब ठहाका मार के हंस देते.

मास्टर टीकाराम तक सब बातें पहुंचती. दुखी भी होते किंतु अपने नित्यक्रम में किसी प्रकार का विघ्न न आने देते.

मास्टर टीकाराम को आज अध्यापन करते तीस वर्ष से ऊपर हो चले हैं. बैंक में मिली क्लर्की को छोड़कर हाई स्कूल की अध्यापकी को

प्राचार्य पूरा प्रकरण सुनते रहे. समाप्ति पर एक अध्यापक बोल उठे, ''श्रीमान जी, नक्ल तो पचास प्रतिशत छात्र करते हैं केवल स्तर का अंतर है. एक को पकड़ने से क्या लाभ...''

वरीयता दी थी. 'क्लर्की थर्ड डिवीजनर के लिये है.' वह कहा करते थे. इसलिए जब महानंद विद्यालय में विज्ञान के अध्यापक के रूप में उनकी तैनाती हुई तो फूले नहीं समाते थे.

अपनी तीक्ष्ण बुद्धि, लगन व परिश्रम से वह विद्यालय ही क्या, पूरे नगर में लोकप्रिय हो जाने जाने लगे थे. महानंद विद्यालय के विज्ञान संवर्ग में विद्यार्थियों की संख्या मास्टर टीकाराम के कारण ही बढ़ती चली गयी. नौबत यहां तक आ गयी कि महानंद विद्यालय में प्रवेश एक गंभीर समस्या बन गयी थी. कुछ व्यक्ति मास्टर टीकाराम के पास सिफारिश के लिए आते किंतु वह दो टूक 'न' उत्तर दे डालते. फिर कुछ धनाढ्यों ने उन्हें लोभ भी दिया किंतु मास्टर टीकाराम इससे और अधिक चिढ़ उठते. प्रधानाचार्य से भी शिकायत कर देते और अपनी ओर से पूरा प्रयास करते कि उस विद्यालय में ऐसे विद्यार्थी का प्रवेश न हो.

महानंद विद्यालय में प्रवेश न होने पर ट्यूशन के आग्रह किये जाते. ऐसा नहीं था कि मास्टर टीकाराम ट्यूशन नहीं करते थे किंतु इसकी संख्या केवल चार-छ: विद्यार्थियों तक सीमित रहती. प्राय: एक ही छात्र को एक बार में पढ़ाते थे किंतु अधिकतम दो छात्रों को ले लेते थे. छात्रों का चयन भी देखभाल के करते. कुछ लोग अधिक छात्र लेने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए दबाव डालते किंतु वह इससे अप्रभावित ही रहते. मुस्कराकर पास के मोहल्ले में निवास कर रहे गणेशी लाल को संदर्भित कर देते. गणेशी लाल प्रातः छह बजे से रात्रि दस बजे तक दस-दस विद्यार्थियों के सात-आठ समूह निकालते थे. विद्यालय का अध्यापन उनके लिए गौण था. क्लास में यदि कोई छात्र कोई प्रश्न पूछता तो झिड़क देते, "सब क्लास में ही नहीं पढ़ाया जाता..." विद्यार्थी अगले दिन ही ट्यूशन के लिए घर पहुंच जाता.

मास्टर टीकाराम गणेशी लाल की इन प्रवृत्तियों से परिचित थे और मन ही मन उसके लिए उनके हृदय में घृणा व चिढ़ थी. ट्यूशन पर किसी विद्यार्थी को लेते समय स्पष्ट कर देते थे, "यह मत समझना कि प्रेक्टीकल में पूरे अंक दिलवा दूंगा. जैसा करोगे वैसे ही अंक मिलेंगे."

प्रारंभिक वर्षों में मास्टर टीकाराम के लिए सबके हृदय में सम्मान दिखता था. विद्यार्थी उनका छात्र होने में गौरवान्वित अनुभव करते. प्राचार्य महोदय अध्यापक की यदि कोई छवि विद्यार्थियों के मस्तिष्क में उभरती तो वह मास्टर टीकाराम ही थे.

साइकिल स्टेंड पर खड़ी करके मास्टर टीकाराम ने जब विद्यालय में प्रवेश किया तो अभिवादन करने वालों की झड़ी सी लग गयी. हाथ अभिवादन में ऊपर किये हुए वह अध्यापक-कक्ष की ओर बढ़े. वहां चार्ट में अपनी ड्यूटी देखी और परीक्षा सामग्री लेने केंद्र व्यवस्थापक के कक्ष की ओर चले.

प्रत्येक कक्ष में दो अध्यापकों की ड्यूटी रहती थी. मास्टर टीकाराम अब इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे, उनके साथ ड्यूटी देने में अध्यापकों में कैसी खींचतान मची रहती थी. अधिकतर अध्यापक उनके साथ ड्यूटी देने में आनाकानी करते. अपने नाम कटवा लेते और कहते, "मास्टर टीकाराम के साथ कौन पहरेदारी करे!" अंततः सबसे सीधे, सरल व नये अध्यापक को ही साथ पर्यवेक्षण के लिए रखा जाता.

काफी समय तक मास्टर टीकाराम इसके कारण से परिचित नहीं थे और दरअसल कभी जानने का वास्तविक प्रयास भी नहीं किया उन्होंने, किंतु एक दिन उनके ही पूर्व सेवानिवृत सहयोगी मंगला सिंह ने उनसे किसी अन्य प्रकरण पर बातें करते कहा तो वह सकपकाकर रह गये, "टीकाराम तुम समय के साथ बदलना नहीं सीखे..."

"मैं समझा नहीं, मास्साब." उन्होंने अचरज से पूछा.

"भई, अब वह पुराना वाला माहौल नहीं. अब नीति-नियम पालन करने या करवाने का समय नहीं."

"होगा मास्साब. पर अपना तो जीवन जिस ढर्रे पर चला है, उसी पर चलना है." हृदय से उभरी टीस को छुपाते हुए मास्टर टीकाराम बोले.

"तभी देखते नहीं, विद्यालय में सभी तुम से कटे-कटे रहते हैं." मास्टर मंगल सिंह के स्वर में तिरस्कार मिश्रित उपहास का भाव था.

मास्टर टीकाराम का अंतरंग जैसे धूं-धूं कर जलने लगा. हृदय में मास्टर मंगल सिंह के लिए जो वर्षों पुराना सम्मान था, चरमराकर ढह गया. मन में न जाने कैसे कैसे कुत्सित विचार कौंधे किंतु अंदर जमे संस्कार उन्हें थामे रहे. बदलाव का इतना कड़वा एहसास उन्हें पहली बार हुआ. मन मसोसकर वहां से चल दिये.

घंटी बजने के बाद जब वह कक्षा में प्रवेश करने लगे तो विद्यार्थी आपस में खुसर-पुसर करते व सहमे से दीखे.

"अरे, खूसट आ गया है, जरा होशियारी से..." एक विद्यार्थी का स्वर उनके कानों में पड़ा था.

परीक्षा प्रारंभ होने के कुछ ही समय बाद अनेक अध्यापक कक्षाओं के बाहर घूमते-फिरते, मूंगफली टूंगते, धुआं उड़ाते और गप-शप में व्यस्त दीख पड़े. सामने की कक्षाओं में विद्यार्थियों के इधर-उधर घूमने, बाहर आने-जाने के दृष्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित थे. मास्टर टीकाराम इन सबसे उदासीन रहने का प्रयास करते किंतु कहीं न कहीं उनके अंदर कुछ चुभता रहता.

"मास्साब, जरा पिशाब..." एक लड़के ने जब तीसरी बार यह प्रार्थना की तो उनसे न रहा गया, "परीक्षा देने आये हो या पेशाब करने. बार-बार पेशाब के लिए जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती..."

"मास्साब, मेरी आदत ही ऐसी है...." एक निर्लज्ज हंसी के साथ वह लड़का बोला और पूरा क्लास खिलखिला दिया.

"चुप रहो..." मास्टर टीकाराम चीखे.

विद्यार्थीगण हंसी को दबाते हुए काम में लग गये.

पंद्रह, बीस मिनट बाद वही विद्यार्थी पुनः पेशाब की अनुमति मांगने लगा- किसी संकोच अथवा झिझक के साथ नहीं, अपितु इसके स्थान पर चिढ़ व झुंझलाहट पैदा करने वाली एक कुटिल मुस्कान उसके मुख पर थी. हृदय में उबाल लिये मास्टर टीकाराम उसे ताकते रहे और वह उन्हें. मास्टर टीकाराम की स्थिति कुछ दयनीय-सी हो चली. साथी पर्यवेक्षक बीच में बोल उठे, "गुरु जी, जाने दें, अपना ही तो समय नष्ट करेगा."

"मगर यह वहां जाकर अवश्य अनुचित कार्य करेगा..." वह फुंकार से उठे.

"तो अपना ही तो नुकसान करेगा. कौन प्रथम श्रेणी आ जायेगी इसकी..." वह अति सहज भाव से बोले.

विद्यार्थियों के सम्मुख इस विवाद से मास्टर टीकाराम एकदम परेशान से हो चले. साथी अध्यापक की विचारधारा से हतप्रभ भी थे और दुखी भी.

वह छात्र इस बीच बाहर जा चुका था और कुछ समय बाद "म्याई कमिन सर..." कहते-कहते अंदर आकर अपने स्थान पर बैठ गया. उसके चेहरे पर एक अजीब-सी तुष्टि नृत्य कर रही थी.

मास्टर टीकाराम कसमसाकर रह गये. असहाय से उसकी धृष्ट हरकतों को देखते रहे. कभी वह इस बल बैठता तो कभी दूसरे बल. कभी पैर सिकोड़ता तो कभी कुर्सी पर एकदम लेट जाता.

साथी पर्यवेक्षक अन्य अध्यापकों की भांति बाहर धूप सेंकने लगे. "मास्साब, चाय ले लें..." कुछ समय बाद उन्होंने बाहर से आवाज दी.

"धन्यवाद..." मास्टर टीकाराम ने बाहर झांककर उत्तर दिया.

"अरे, मास्साब लड़कों को काम करने दें...." एक पड़ोसी कक्ष के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापक उपहास भरे स्वर में बोले. अन्य साथी भी खिलखिला दिये.

मास्टर टीकाराम अपने को स्थिर व शांत रखकर पर्यवेक्षण के कार्य में व्यस्त हो गये. यकायक उन्हें उसी छात्र द्वारा अनुचित साधन प्रयोग करने का संदेह हुआ. वह तुरंत उसकी ओर लपके और उस छात्र को डेस्क व टांगों के बीच एक पुस्तक रखे पाया. उन्होंने पुस्तक खींच ली. लड़का भी खड़ा हो गया.

"चलो उठो," मास्टर टीकाराम दहाड़े, "तभी बार-बार पेशाब आती थी. शर्म नहीं आती...!"

छात्र अपने स्थान पर खड़ा रहा.

"चलो, प्राचार्य के पास चलो."

वह तब भी वैसे ही खड़ा रहा और फिर हाथ जोड़कर कहने लगा, "मास्साब, पहली गलती है, माफ कर दो..."

"किस बात की माफी.... पूरी पुस्तक से नकल कर रहा है और माफी..."

"जी मास्साब, अब कभी नहीं करूंगा...." उसने अपने स्वर को दयनीय बनाने का प्रयास किया.

मास्टर टीकाराम उसका हाथ पकड़कर कक्षा से बाहर लेकर चल दिये. साथी पर्यवेक्षक निकट आकर कान में फुसफुसाने लगे, "गुरु जी, छोड़ दें. झमेला ही है..."

"मैं समझा नहीं...."

"मतलब यह गुरु जी, कि जब सब कमरों में यही हो रहा है तो..."

मास्टर टीकाराम की भाव-भंगिमा देखकर वह अध्यापक आगे न बोल सके किंतु मास्टर टीकाराम अब अपने को शांत न रख सके, "तो परीक्षा समाप्त करवा दीजिये न. क्यों यह ढकोसला करते हैं. किस बात का पर्यवेक्षण करने हमें भेजा गया है. सबको पुस्तकें थमा दीजिये."

साथी अध्यापक वापस कक्ष में चले गये.

मास्टर टीकाराम के साथ कुछ अन्य अध्यापक भी प्राचार्य कक्ष में आ गये थे.

प्राचार्य पूरा प्रकरण सुनते रहे. समाप्ति पर एक अध्यापक बोल उठे, "श्रीमान जी, नकल तो पचास प्रतिशत छात्र करते हैं. केवल स्तर का अंतर है. एक को पकड़ने से क्या लाभ...."

"यह कोई तर्क नहीं," प्राचार्य रोष भरे स्वर में बोले, "जो पकड़ा जायेगा उसे ही तो दंडित किया जा सकता है. फिर आप लागे क्यों ढिलाई दिखाते हैं."

"श्रीमान्, आप ठीक कहते हैं," एक अधेड़ आयु के अध्यापक ने स्थिति को सम्हाला, "मगर छोटा बच्चा है. जीवन खराब हो जायेगा..."

"पहली बार पकड़ा गया है. एक अवसर तो दे दीजिये." दूसरे कहने लगे.

"कम से कम तीन वर्ष खराब होंगे इसके आवारागर्दी ही करेगा." तीसरे अध्यापक ने कहा.

"इसका पिता वकील है. एकदम सज्जन पुरुष, मेरे परिचित भी हैं. मैं उनके सामने क्या मुंह दिखाऊंगा." एक अन्य याचना करने लगे.

विद्यार्थी के पक्ष व प्रतिरक्षा में दिये जा रहे तर्कों व दलीलों से मास्टर टीकाराम का अंतरंग क्षोभ व पीड़ा से कसमसा उठा. समझ में नहीं आया किसको क्या उत्तर दें.

"टीकाराम जी, निर्णय आपका है, बोलिये..." प्राचार्य ने कहा.

"मेरा, मेरा क्या निर्णय होता...अनुचित साधनों का प्रयोग कर रहे छात्र को दंडित किया ही जाना चाहिए."

"तो फिर लाइये...."

औपचारिकताएं पूरी की जाने लगीं. आस-पास खड़े अध्यापक बड़बड़ाते हुए बाहर निकल गये.

परीक्षा समाप्ति के बाद जब मास्टर टीकाराम बाहर निकले तो अनगिनत नेत्र उन्हें एकटक घूरते से लगे. लगभग तीस वर्षों से अध्यापन कर रहे इस विद्यालय में वह नितांत अकेले व अजनबी से अनुभव करने लगे. अभिवादन के स्थान पर साथियों तथा विद्यार्थियों की दृष्टि में उनके प्रति रोष व उपेक्षा के मिले-जुले भाव थे.

तेजी से पैडल मारते हुए वह आगे बढ़े किंतु उनका मस्तिष्क साइकिल के पहिये से भी तेज गतिमान था. एक उथल-पुथल सी मची हुई थी. उस दिन ट्रेन में घटी घटना आज उन्हें कितनी सार्थक लगी.

पत्नी के साथ वह यात्रा कर रहे थे. यात्रियों से लबालब भरा द्वितीय श्रेणी का डिब्बा था. प्रौढ़ावस्था का एक टिकिट निरीक्षक टिकिट चैक करने लगा तो सब लोग लोग अचकचाकर उसे देखने लगे थे.

"लेओ, इत्ती भीड़ में टिकिट चेकिंग...पगला गया है..." एक व्यक्ति बुरबुराया.

"मगर भई, यह तो इसका काम है...!" मास्टर टीकाराम ने धीरे से कहा.

"अजी, क्या काम है. धंधे के चक्कर हैं...डिब्बे से उतरते-उतरते पचास-सौ बना लेगा."

मास्टर टीकाराम के पास शांत रहने के अतिरिक्त भला क्या उपाय था.

कुछ समय बाद टिकिट निरीक्षक व एक नवयुवक के मध्य विवाद सुनाई पड़ा.

"बिना टिकिट लिये यात्रा करते हो..."

"बाबू जी, गलती हो गयी..."

"गलती कैसी...खैर, कहां से चले थे...?"

"लखनऊ से..."

"एक सौ चालीस रुपये निकालो..."

"एक सौ चालीस...?"

"हां, पैनाल्टी देनी होगी..."

"बाबू जी, गरीब हूं...."

टिकिट निरीक्षक ने कोई उत्तर नहीं दिया. रसीद बुक निकालकर कुछ लिखने लगा. वह युवक कानों में कुछ फुसफुसाया.

"पागल हुए हो...!" वह चीखा, "हर किसी को पैसे से खरीदने की कोशिश करते हो...! चलो टिकिट बनवाओ...!"

वह युवक पुनः कुछ फुसफुसाया.

"आफ्फो...," इस बार उसने अपना सिर पीटा, "कौन ज्यादा पैसे के लिए कह रहा है! रुपये निकालो वरना अगले स्टेशन पर...."

उस युवक की ओर से अनेक व्यक्ति बोल उठे.

"अरे लड़का है...माफ कर दें..."

"बाबूजी, लड़कों में यह फैशन है. छोड़ दें. पंद्रह, बीस लेकर खत्म करें यह मामला...."

टिकिट निरीक्षक अपनी बात पर अड़ा था.

"पागल है...!" कुछ ने टिप्पणी की.

"बात खुल गयी है तो हरिशचंद्र बनता है..."

"देखना बाद में ज्यादा पैसे लेकर छोड़ देगा...."

न जाने कितने मंतव्य इस प्रकार व्यक्त किये गये. सभी यात्रियों की दृष्टि जैसे उसे बेध रही थी. उसकी स्थिति कितनी दयनीय लगी थी मास्टर टीकाराम को. उस भीड़ में वह कितना अकेला और अजनबी बन चला था, ठीक आज के मास्टर टीकाराम की भांति...

घर के दरवाजे के सामने साईकिल रुकी और वह साईकिल अंदर चढ़ाने लगे. □

चलते-चलते

कलकत्ता विश्वविद्यालय की बिल्डिंग के बाहर एक सुझाव बक्स जीर्ण-शीर्ण अवस्था में लटका था. एक सुबह किसी मसखरे ने बक्स के नीचे पेंट से लिख दिया सबसे अच्छा सुझाव है, इस बक्से की मरम्मत करवायी जये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 21 अक्तूबर, 1952 जगरांव.
कृतियां : जॉन कीट्स व लॉर्ड बायरन पर अंग्रेजी में समीक्षात्मक पुस्तकों के अतिरिक्त विविध पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित.
संपर्क : बी./बी. 401, वाई.ए.सी. नगर/चूना वाला कंपाउंड, जे.बी. नगर, अंधेरी (पूर्व) बंबई-59

तेजेंद्र शर्मा

रेत के शिखर

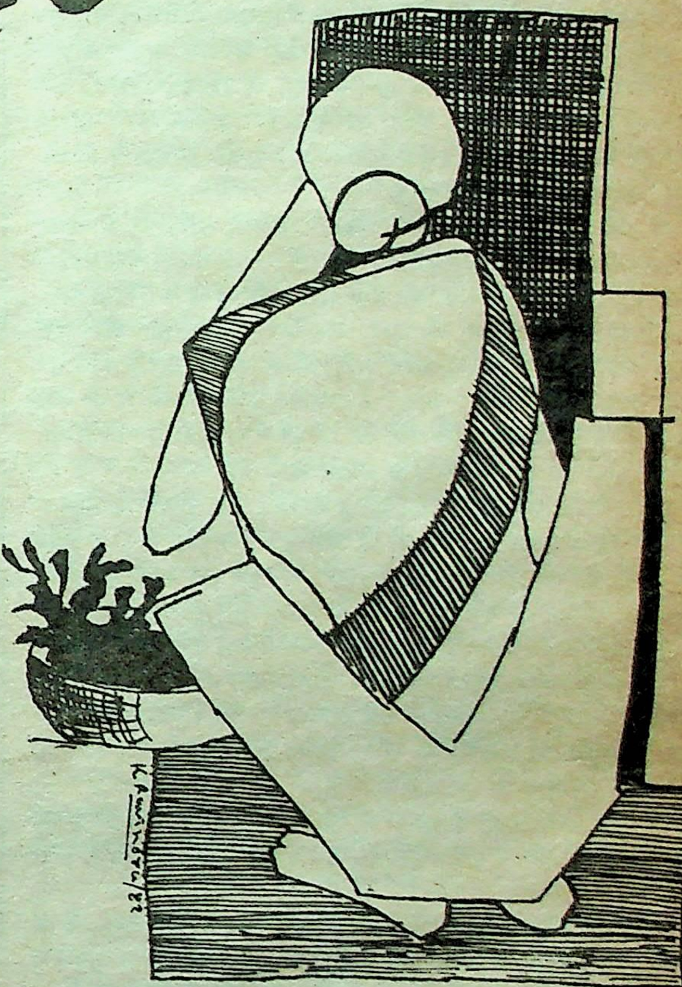

दीपा के चले जाने के बाद भी मंजुला काफी देर तक खिड़की में खड़ी रही. और तब तक हाथ हिलाती रहीं जब तक कि दीपा आंखों से ओझल नहीं हो गयी. दीपा आज पूरे पांच वर्ष बाद उसे मिली थी--उसके कालेज के समय की सहेली. बी.ए., एम.ए. दोनों ने साथ-साथ ही किया था. खिड़की के पल्ले सरकाकर मंजुला कमरा ठीक करने लगी. नाश्ते की प्लेटें हटाकर उसने दीवान की चादर ठीक की. सब कुछ व्यवस्थित करने के पश्चात उसने एक लंबी-सी ठंडी सांस ली और वहीं कार्पेट पर बैठ गयी. आज का दिन अच्छा बीत गया था. बहुत दिनों बाद जैसे वह कुछ तरोताजा महसूस कर रही थी. जब से उसने अपनी रिसर्च छोड़ी है एक अजीब-सा खालीपन उसके जीवन में भर गया है. दीपा के साथ उसकी बहुत-सी चुलबुली यादें जुड़ी हुई हैं. दीपा पिछले चार वर्षों से कालेज में लेक्चरार है और उसका तबादला इसी शहर में हो गया है. मंजुला को यह जानकर बहुत राहत महसूस हुई. अब उसका अकेलापन कुछ कम हो जायेगा.

उसका मन हुआ कि वह आज फिर अपना पसंदीदा संगीत सुने. वह उठने को हुई. उसे लगा कि सोफे पर कोई पुस्तक पड़ी है. शायद दीपा ही भूल गयी थी. मंजुला ने फिर उठाकर अनायास ही पन्ने पलटने शुरू कर दिये. 'आधुनिक कविता में छायावाद.' लेखक का नाम पढ़कर मंजुला चौंक उठी--डा. नवीन चंद्र. उन्हीं के मार्गदर्शन में शोध आरंभ किया था मंजुला ने. कितनी महत्वाकांक्षी थी वह भी. आज वह डा. मंजुला भार्गव होती. किसी कालेज में लेक्चरार होती. पर अब तो सब कुछ एक दुःस्वप्न बनकर रह गया है.

डा. नवीन चंद्र. क्षोभ और वितृष्णा से उसका मन भर आया. अधजले सिगार के धुएं की गंध जैसे उसके नथुनों में भर गयी. और कमरे में एक-एक कर के अतीत के सारे बिंब उभरने लगे.

मंजुला ने एम.ए. प्रथम श्रेणी में पास किया था. पिता फूले नहीं समाये थे--"आखिर बेटी किसकी है." उन्होंने प्यार से बेटी का सिर चूम लिया था. फिर मां से बोले, "मिठाई-विठाई खिलाओ कुछ. आज तो खुशी का दिन है."

मां बड़बड़ाती हुई दूसरे कमरे में चली गयी थी. मंजुला की दोनों बड़ी बहनें इंटर पास करके अपना-अपना घर बसा चुकी थीं. मां को उन्हें पढ़ाने का विशेष शौक नहीं था. तीन-तीन बेटियां मां के लिये काफी बड़ा बोझ थीं. उनकी पढ़ाई की अपेक्षा मां को बेटियों की शादी की अधिक चिंता थी. मंजुला की पढ़ाई में पिताजी के साथ का विशेष सहयोग रहा. फिर मंजुला की असाधारण प्रतिभा एवं योग्यता के कारण भी मां अब तक उसकी पढ़ाई का विरोध नहीं कर पायी थीं.

किताब बंद करके वह महेश के पौरुष को पूर्णता प्रदान करने के लिए आ गयी थी. अपने पति को वह यह नहीं समझा सकी थी कि पुरुष को पूर्णता प्रदान करने में स्वयं के अधूरे रह जाने का एहसास कितना पीड़ादायक है नारी के लिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अब मां चुप बैठने वाली नहीं थीं. जैसे ही उन्हें पता चला कि मंजुला रिसर्च के विषय में सोच रही है, वह फट पड़ीं थी-- "मैं कहे देती हूं जी, अब बेटी के विवाह की चिंता करो. इससे ज्यादा पढ़ गयी तो बिरादरी में लड़का मिलना भी मुश्किल हो जायेगा. पढ़े-लिखे लड़के मिलते कहां हैं आजकल. और फिर हमें कौन-सी नौकरी करवानी है इससे. एक बार ब्याह हो जाये तो चाहे पढ़ाई करे या नौकरी."

मंजुला को लगा कि मां आज भी मानसिक रूप से कई बरस पीछे है. मंजुला पढ़-लिखकर कुछ बनना चाहती है और मां है कि...... क्या हर औरत की तरह उसकी नियति भी शादी, पति और बच्चे ही हैं. नहीं. वह और पढ़ेगी. साहित्य में उसकी रुचि है. वह शोध करेगी, पुस्तकें लिखेगी और नाम कमायेगी.

परंतु मां के तर्कों के आगे पिताजी की भी एक न चली. और मंजुला भी मां को यह समझाने में असफल रही थी कि इस तरह जीने में कोई सार्थकता नहीं.

और फिर वही हुआ जो मां चाहती थी. मंजुला का महेश से विवाह. इंटर पास महेश -- जो व्यवसाय में रत. पढ़ाई की अपेक्षा पैसे कमाने में महेश की अधिक रुचि. दोष महेश का नहीं, उसके संस्कार ही ऐसे थे. परिवार में सभी प्रायः मिडल और मैट्रिक ही थे. वही संभवतः सबसे अधिक पढ़ा-लिखा था. पिछली कई पीढ़ियों से चला आ रहा बिजनेस ही उसे विरासत में मिला था. स्वयं महेश को भी कभी पढ़ाई की कमी महसूस नहीं हुई थी. वह अपने धंधे में निपुण था और अच्छी आमदनी भी थी. किसी भी वस्तु की कमी नहीं थी.

मां इसी में बहुत प्रसन्न थी. "पढ़ाई ज्यादा न सही, पर खानदान कितना अच्छा है. तीन बिल्डिंगें, दो गाड़ियां -- राज करेगी मेरी बेटी." और मां ने बेटी का विवाह बिल्डिंगों और गाड़ियों से कर दिया था.

नये माहौल में मंजुला को काफी असुविधा महसूस होने लगी थी. सुबह होते ही महेश जल्दी-जल्दी नहा-धोकर नाश्ता करके काम पर चला जाता. घर में नौकर-चाकर थे इसलिये कुछ खास काम भी नहीं होता था. सास की सेवा और पति की प्रतीक्षा में ही दिन बीत जाता था. मंजुला जल्दी ही इस दिनचर्या से ऊबने लगी थी.

पहले तो वह रात की प्रतीक्षा करती थी किंतु अब तो रात के नाम से भी उसे उबकाई-सी आने लगती थी. महेश दिन भर का काम से थका घर आता था और रात को अपने शरीर की उत्तेजना शांत करके सो जाता था. कालेज में रूप सुंदरी कहलानेवाली मंजुला -- अब उसका सौंदर्य पराजित अनुभव करने लगा था. उसे सब कुछ बेमानी लगने लगा था, एकदम निरर्थक. उसके भीतर का साहित्यकार जो संबंध अपने पति से जोड़ना चाहता था उसका तो उसे अवसर भी नहीं मिला. महेश एक मजदूर प्रकृति का व्यक्ति था और मंजुला उसमें एक कलाकार को तलाशती रह गयी.

एक दिन हिम्मत करके महेश के सामने अपने आगे पढ़ने की इच्छा व्यक्त कर दी. और मंजुला बहुत प्रसन्न हुई जब महेश ने कोई आपत्ति नहीं की.

"तुम्हारी इच्छा है तो जरूर पढ़ो. रिसर्च करके डाक्टर बनो. मैं भी फख्र से कह सकूंगा कि मेरी पत्नी डाक्टर है... वैसे मुझे थोड़ा मुश्किल लग रहा है यह काम. अब शादी के बाद तुम कर सकोगी पढ़ाई?"

"इसमें मुश्किल ही क्या है? हमारे एम.ए. के प्रोफेसर डा. मेहता के मित्र डा. नवीन यहीं यूनीवर्सिटी में रीडर हैं. डा. मेहता ने मुझे उनका 'रेफरेंस' दिया था. अगर आप कहें तो उनसे बात कर देखूं?"

महेश को तो कोई आपत्ति नहीं थी. पर मंजुला भूल गयी थी कि घर में एक सास भी है. और उसकी सास तो मंजुला की मां से भी पुराने विचारों की नारी है. मंजुला की सास को जब पता चला कि मंजुला रिसर्च शुरू करने वाली है तो वह फट पड़ी. "अरे हमारा भी तो एक जमाना था. घर की बहू घर से बाहर कदम रखती थी तो अपने पति के साथ. यहां तो नजारा ही उल्टा है. इतना ही पढ़ाई का शौक था तो बैठी रहती बाप के

अच्छी पोशाक

चाऊ में एक आदमी रहता था जिसे बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनने का बहुत शौक था. कपड़ों में जरा-सी भी कमी होती तो वह संकोच करता और तब तक उसे चैन न मिलती जब तक वह कपड़े बदल न लेता.

एक दिन उसे कहीं जाना था. वह पूरे उत्साह में था. कपड़े पहनते समय उसे पता ही नहीं चला कि उन पर कीचड़ लगा है. आधे रास्ते में एक दोस्त ने उसे यह बात बतायी तो वह एकदम उदास हो गया. उसने मिट्टी तो रगड़ कर झाड़ दी पर दाग फिर भी बना रहा. दाग उसके दिमाग पर इस तरह हावी रहा कि वह एक कदम चलता था और दो दफा धब्बे को देखता था. □

घर. शादी की इतनी क्या जल्दी थी..... अरे घर में कोई पोता खेले यह तो सोचा नहीं और बस ... पढ़ाई करेंगी मेम साहिब."

मंजुला जहर का घूंट पीती रही और सब सुनती रही. फिर उसकी सास का कुसूर भी क्या था? वह उन भारतीय संस्कारों को लेकर जी रही थीं जिनमें नारी के लिये अपने व्यक्तित्व को स्थापित करना एक बड़ा अपराध है.

मंजुला जब डा. नवीन चंद्र से मिली, तो उन्होंने बहुत प्रोत्साहित किया था, "तुमने ठीक ही सोचा है. इतनी पढ़ाई करने के बाद केवल घरेलू पत्नी बनकर रहो, यह तो कोई बात न हुई. आज की औरत केवल चूल्हे-चौके तक ही सीमित नहीं. पी.एच.डी. कर लोगी तो 'लेक्चररशिप' तो कहीं नहीं गयी."

डा. नवीन ने विषय भी स्वयं ही सुझाया.

मंजुला की सास अब महेश के कान भरने लगी. "अरे बेटा, देख पड़ोस में राजेंद्र और गणेश की शादियों को साल भी पूरा नहीं हुआ, बच्चों की किलकारियां घर में सुनाई देने लगी हैं. आस-पड़ोस की औरतें अब तो बातें बनाने लगी हैं. बहू को कह पढ़ाई छोड़े और गृहस्थी में रुचि ले." महेश के पौरुष पर सीधी चोट की थी मां ने. एक रात जब मंजुला नोट्स बना रही थी महेश झल्ला उठा, "यह क्या झंझट पाल लिया है तुमने. इतनी आसान नहीं है डाक्टरेट की पढ़ाई. फिर अगर तुमने पूरी कर भी ली तो क्या फर्क पड़ जायेगा. क्या मिल जायेगा तुम्हें? पति, घर, गाड़ी, इज्जत, यही सब होता है जिसकी चाह होती है एक औरत को."

"आप भी ऐसा सोचते हैं. आपको भी लगता है कि पढ़ाई बेकार की वस्तु है. कला के बिना यह जीवन कितना नीरस रह जाता है. सूक्ष्म भावनाओं से ही जीवन में रंग बहार आती है."

"यह आर्ट और कला से अधिक बेकार की वस्तु तो कोई है ही नहीं. जब भूख लगती है तो प्रेमचंद के उपन्यास भूख नहीं मिटाते, महादेवी और पंत की कविताओं का बिस्तर बनाकर सो नहीं सकते. कोई बात है कि मैं यहां बिस्तर में अकेला पड़ा हूं और तुम नोट्स बनाए जा रही हो."

मंजुला महेश का आशय समझ गयी थी. किताब बंद करके वह महेश के पौरुष को पूर्णता प्रदान करने के लिये आ गयी थी. अपने पति को वह यह नहीं समझा सकती थी कि पुरुष को पूर्णता प्रदान करने में स्वयं के अधूरे रह जाने का एहसास कितना पीड़ादायक है नारी के लिये. क्या उसे अपने व्यक्तित्व को पूर्ण बनाने का अधिकार नहीं.

नहीं, वह छोटी-छोटी बातों से विचलित नहीं होगी. और मंजुला नये उत्साह से अपनी पढ़ाई में जुट जाती. अब घर की जिम्मेदारियों के प्रति और सजग हो गयी थी ताकि उसके पति या सास को कोई शिकायत का मौका न मिले. पर नोट्स तैयार करके नियमित रूप से डा. नवीन को दे आती. मंजुला का उत्साह और लिखने की गति देखकर डा. नवीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी चकित थे.

"भई इतनी लगन और इतना उत्साह मैंने आज तक अपने किसी विद्यार्थी में नहीं देखा. और जिस गति से तुम लिख रही हो, मुझ में तो पढ़ने की उतनी गति है नहीं. देखो न पिछले सप्ताह जो नोट्स तुम दे गयी थीं; वो तो अभी देख भी नहीं पाया."

मंजुला को डा. नवीन के लापरवाही से काफी निराशा हुई. अपने क्षोभ को छिपाते हुए बोली, "सर, कोई बात नहीं. मैं आज के नोट्स भी छोड़े जा रही हूं. आप इकट्ठे देख लीजिएगा. पर मैं कुछ एक पाईट्स आपसे डिसकस करना चाहती थी."

"मंजुला, देखो भई आज तो मेरा मूड नहीं है कुछ पढ़ने-पढ़ाने का. अगली बार आओगी तो ले लेंगे." और डा. नवीन ने सिगार सुलगा ली.

मंजुला को अधजले सिगार की गंध से बहुत नफरत थी. उसके धुएं से जैसे उसे मतली-सी आने को होती थी. पर मंजुला ने जो काम शुरू किया था उसे पूरा करना था. शोध पूरा करके अपनी आशाओं को मूर्तरूप देना चाहती थी. इसके लिये चंद घंटे सिगार का धुआं भी सह लेती थी.

"अच्छा, यह बताओ कि तुम्हारे पति ने पढ़ाई की इजाजत कैसे दे दी?" डा. नवीन मुस्कुरा रहे थे.

मंजुला उनकी मुस्कुराहट का रहस्य समझ नहीं पायी. कुछ अटकते हुये बोली, "मेरे पति काफी उदार विचारों के हैं सर."

"नहीं, वो बात नहीं. दरअसल अधिकतर पति सुंदर पत्नी को घर में बंद करके रखना चाहते हैं."

"नहीं सर, अब तो पुरुष के दृष्टिकोण में काफी अंतर आ गया है. और मेरे पति भी मेरी महत्वाकांक्षाओं की कद्र करते हैं." मंजुला ने विषय बदलते हुये कहा. उसे डा. नवीन की चुहल कुछ अच्छी नहीं लगी. वह उन्हें एक गंभीर एवं शालीन व्यक्ति समझती थी.

अगली बार एपाइंटमेंट के बावजूद डा. नवीन घर पर नहीं मिले. उसे लगा कि वह दिन रात एक करके मेहनत कर रही है उसका कुछ लाभ नहीं. वह सारे नोट्स लिख भी डाले, जब तक डा. नवीन उन्हें देखकर सही न कर दें, उसका काम आगे नहीं बढ़ सकता.

मंजुला ने मन ही मन तय किया कि वह डा. नवीन से अनुरोध करेगी कि वह जांचने का काम साथ के साथ कर दें तो काम जल्दी पूरा हो जायेगा. यही सोचते हुए मंजुला डा. नवीन के घर एक बार फिर पहुंची. उसे देखकर खुशी हुई कि डा. नवीन घर पर ही थे और उसके नोट्स उनके सामने दीवान पर बिखरे पड़े थे.

मंजुला को काफी संतोष हुआ. पर साथ ही क्षोभ भी कि डा. नवीन ने केवल एक ही चैप्टर देखा है जबकि वह लगभग आठ-नौ चैप्टर लिख कर दे चुकी है. फिर भी उसका उत्साह कम नहीं हुआ. और वह नियमित रूप से अपना काम करती रही.

अंतिम चैप्टर के विषय में वह डा. नवीन से कुछ बातचीत करना चाहती थी. इसीलिये वह समय तय करके डा. नवीन के घर पहुंची थी. फोन पर भी डा. नवीन ने बताया था कि उन्होंने कई चैप्टर जांच लिये हैं. मंजुला को लगा कि अब उसके सपने साकार होने में अधिक समय नहीं लगेगा.

दरवाजा डा. नवीन ने ही खोला था. संभवतः घर पर और कोई नहीं था. डा. नवीन सदा की भांति काफी रंगीन मूड में थे. मुंह में पान था और हाथ में सिगार. शायद कुछ पढ़ रहे थे.

क्या यही डा. नवीन हैं. विश्वविद्यालय के वरिष्ठ व्याख्याता, साहित्य के मर्मज्ञ. हिंदी कविता व उपन्यासों पर अनेक समीक्षात्मक पुस्तकों के रचयिता. उनका बाहय स्वरूप, उनके हावभाव, उनके व्यक्तित्व से बिल्कुल मेल नहीं खाते थे.

"बैठो मंजुला," उन्होंने दीवान की ओर इशारा किया. मंजुला की आंखें अपनी थीसिस के पन्ने ढूंढ रही थीं. पर आसपास बिखरी पुस्तकों में उसे अपने नोट्स दिखाई नहीं दिये.

"सर, आपने मेरे नोट्स देखे?"

डा. नवीन अलमारी से नोट्स निकालकर लाये और मंजुला के साथ ही दीवान पर बैठ गये.

"तुम्हारे हाथ बहुत सुंदर और कलात्मक हैं मंजुला. मैंने कहीं पढ़ा था कि जिनके हाथ पतले, लंबे व कलात्मक होते हैं उनका हस्त लेख भी बहुत सुंदर होता है. तुम्हारे नोट्स पढ़ते हुए मुझे यही ख्याल आया. तुम्हारा हस्तलेख भी बहुत सुंदर है."

मंजुला ने कुछ प्रतिक्रिया की आवश्यकता नहीं समझी.

"सर, आप अगर मेरे नोट्स जल्दी देख देते तो मेरा काम जल्दी हो जाता." मंजुला का स्वर विनम्र था.

"अच्छा यह बताओ कि हम अगर तुम्हारा काम जल्दी कर भी दें तो हमें क्या मिलने वाला है? आजकल के विद्यार्थी अपने गुरु की सेवा करना तो जानते ही नहीं." डा. नवीन ने शरारती मुस्कान से मंजुला की ओर देखा.

"ठीक कह रहा हूं ना? तुम हमें 'गुरु दक्षिणा' दो तो हम भी तुम्हारा काम जल्दी निपटा दें." और उन्होंने मंजुला के कंधे पर अपना हाथ रख दिया.

मंजुला उठ खड़ी हुई और उसने जलती हुई दृष्टि से डा. नवीन को देखा. वे अब भी टेढ़ी मुस्कान लिये उसकी ओर देख रहे थे. काम-वासना उनकी आंखों में स्पष्ट रूप से झलक रही थी. "अरे, बैठो भाई." उन्होंने मंजुला का हाथ पकड़कर दीवान पर बैठा लिया.

"हां, तो तुम हमारी दक्षिणा नहीं दोगी?" कहते-कहते डा. नवीन ने मंजुला को अपने आलिंगन में बांध लिया. अधजले सिगार और तंबाखू की तीखी गंध से मंजुला का सिर चकरा गया. सब कुछ इतनी जल्दी-जल्दी घटित हुआ कि मंजुला कुछ समझ नहीं पायी.

"यह क्या बदतमीजी है सर." डा. नवीन को एक ओर झटककर मंजुला उठ खड़ी हुई.

"भई कुछ पाने के लिये, कुछ तो देना भी पड़ता है.डाक्टरेट की उपाधि ऐसे ही तो नहीं मिल जाती."

मंजुला को अपने कानों पर यकीन नहीं हो रहा था. डा. नवीन का यह रूप आज ही उसके सामने आया था. उससे पहले भी कई लड़कियों ने डा. नवीन के साथ काम किया था. पर क्या डाक्टरेट की उपाधि के लिये उन्होंने भी इतनी कीमत चुकाई होगी. नहीं, नहीं. मंजुला को ऐसी उपाधि, ऐसी डिग्री की आवश्यकता नहीं जिसके लिये उसे अपना मान-सम्मान खोना पड़े. अपनी महत्वाकांक्षाओं के लिये वह इतनी बड़ी कीमत नहीं चुकायेगी. उसे ऐसे शिखर पर नहीं चढ़ना है जिसके नीचे भुरभुरी रेत हो और वह कभी भी ढह पड़े. उसे कीचड़ में नहीं धंसना है.

मंजुला जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरकर नीचे आ गयी. उसके हाथ-पैर अभी भी कांप रहे थे. आज वह बस की प्रतीक्षा नहीं करेगी. उसे लगा कि डा. नवीन अभी भी अपनी बाल्कनी में खड़े उसे ही देख रहे हैं. उनकी वह वासना से परिपूर्ण लोलुप दृष्टि जैसे पीछा कर रही हो. सड़क पर उड़ते हुए पत्ते, कागज जैसे उसकी अपनी ही थीसिस के पन्ने हों जो उड़-उड़कर उसके आसपास बिखर गये हों. □

चलते-चलते

एक आदमी अपनी दादी को चश्मा लगवाने के लिए दुकान पर गया. डा. ने आंख का नंबर टेस्ट करने के लिए हिंदी चार्ट पर रोशनी डाली. तभी उसकी निगाह वृद्धा की नौ गज की साड़ी पर पड़ी. उसने सोचा इस युग में ऐसी साड़ी....जरूर ये अनपढ़ होगी. अपनी संतुष्टि के लिए डाक्टर ने व्यक्ति के कान में धीरे से पूछा.

इससे पहले कि व्यक्ति कोई जवाब दे. वृद्धा धारा प्रवाह अंग्रेजी में बोली, हां. मेरी हिंदी थोड़ी कमजोर है. मैं अंग्रेजी चार्ट को ही तरजीह दूंगी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलवर की अंदलीब

बाला दुबे

रेत का मानसरोवर—राजस्थान. पर इस भूरे वीराने के एक कोने में एक छोटा—सा चमन भी था... अलवर. और अलवर के दरबार में दो अंदलीब (बुलबुल) भी कूकती रहती थीं—— मुस्सी और मुद्दी. वे दोनों बहनें थीं. चचाजाद बहनें. महाराजा बख्तावर सिंह अपने मुंहलगे वकील अहमद बख्श खां से कहा करते थे:

"आवाज का घाव बहुत जानलेवा होता है अहमद बख्श.इस मुस्सी ने हमें अपनी इसी मीठी छुरी से इतना घायल कर दिया है कि हम नीमबिस्मिल हो गये हैं."

और उस दिन अलवर की वे दोनों अंदलीब दरबार को लुभाने सजधजकर आ बैठी थीं. इंदर का अखाड़ा—सा लग रहा था अलवर दरबार. अगरबत्तियों के धुएं सुरमई साया की तरह जगह—जगह टंग गये थे. केशर—कस्तूरी के जाम जब टकराते तो लगता जैसे शीशों के बने दिल खनक रहे हों. तभी साज छिड़ गये. वातावरण और भी नशीला बन गया. मुद्दी और मुस्सी ने अपनी झुकी नजरें उठायीं तो चारों तरफ एक खामोश कत्लेआम—सा हो गया. आज मुद्दी ने पहल की और टीपदार आवाज फेंकी....

"सलामत रहें दिल में घर करने वाले इस उजड़े मकां में बसर करने वाले"

अहमद बख्श खां पर जैसे टोना कर दिया हो... वे मुद्दी को आंखों ही आंखों पीने लगे. शराब का नशा तो पहर-दो-पहर का होता है पर इश्क की शराब जिंदगी भर गालिब रहती है. महाराजा बख्तावर सिंह ने कनखियों से अपने वकील अहमद बख्श खां को देखा और मुस्कराये. खुदा खैर करे. आज शेख को मयखाना रास आ गया है शायद. उन्होंने ठीक ही सोचा था. अहमद बख्श खां की तबियत महक उठी थी.

उन दोनों बहनों के 'गजरे' के बाद वे कुम्हला गये जैसे गर्म लू के थपेड़े खाकर गुलाब अधमरा हो जाता है. उस रात वे दबे पांव मुद्दी की हवेली पहुंचे थे. पहले तो मुद्दी उन्हें देखकर चौंकी.

"अरे वकील साहब आप?"

"हां मैं. कल की गजल का खुमार अब तक बाकी है. और खुमार को तोड़ने का तरीका तजुर्बेकार शराबी यही बतलाते हैं कि ताजा घूंट तभी फिर से लिये जायें. मैं भी इस नुस्खे के तहत तुमसे एक और गजल सुनने आया हूं."

मुद्दी ने अपनी नजर की बिजली अहमद बख्श खां पर सिर से पांव तक गिरा दी. अहमद खां ने अधखुली आंखों से मुद्दी को देखा गोया के प्यार से नहा गये हों.

"जहे किस्मत, तशरीफ लाइये वकील साहब."

तब तक मुद्दी की बहन मुस्सी भी आ पहुंची. अहमद बख्श खां ही क्या पूरा अलवर जानता था कि मुस्सी महाराजा बख्तावर सिंह की मुंह लगायी डोमनी है. उन्होंने उसे बाकायदा अपनी दाश्ता (रखैल) कबूल किया था और 'गुलाबी हवेली' उसे दे दी थी. मुस्सी की आवाज में वजन था. वह जानती थी कि उसकी कोई भी बात महाराजा बख्तावर सिंह ओछी नहीं पड़ने देंगे. तभी तो वह कभी—कभी अच्छों से दो टूक बात करने में भी नहीं हिचकिचाती थी. फिर मुस्सी अलवर के वकील अहमद बख्श खां की साख भी जानती थी. सुबह का सूरज ये वकील अहमद बख्श खां – किस्मत के आसमान में तेजी से चढ़ते हुए. और फिर हाल ही में उन्होंने जो मदद फिरंगी जनरल लार्ड लेक को भरतपुर के खिलाफ दी थी. यह कोई छोटा—मोटा काम नहीं था. कुछ भी हो वह अंग्रेज लाट अहसान फरामोश नहीं था. हालांकि जनरल लेक ने अपने सब घोड़े खोल डाले पर जाटों का मिट्टी गारे का वह किला अटल खड़ा रहा. फिरंगी तोपों के उगले गोले दीवार हजम कर गयी हो जैसे. और हार कर लार्ड लेक को वापस जाना ही पड़ा. फिर भी अलवर के वकील अहमद बख्श खां का रसद पहुंचाना और भरसक मदद करना उसे याद रहा. लार्ड लेक ने ही सिफारिश की थी कि वकील अहमद बख्श खां को इनाम मिलना चाहिये. उन दिनों बात चल रही थी कि फिरंगी तलवार से एक इलाका तराशा जायेगा और उस नयी जागीर को अहमद बख्श खां को बतौर 'इनामे खैर ख्वाही' दिया जायेगा. इस अफवाह को खास-खास लोग ही जान पाये थे जिनमें अहमद बख्श खां के

अतीत के हादसों के कब्रगाह को कुरेदने में माहिर बाला दुबे के धारावाहिक आयोजनों – 'अनजानी इतिहास कथाएं' और 'गलियां जहां इतिहास कैद है' को 'सारिका' के पाठकों द्वारा बेहद सराहना मिली थी. इस अंक से हम प्रारंभ कर रहे हैं इन्हीं का एक नया स्तंभ 'अनजानी प्रेम कथाएं'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालिक महाराजा बख्तावर सिंह भी थे. महाराजा बख्तावर सिंह के जरिये ही मुस्सी को पता लगा था कि वकील साहब के दिन फिरने वाले हैं. और आज यही उभरता सूरज उसकी बहन मुद्दी पर अपनी किरणें बिखेरने उसकी देहरी पर आ दमका है.

मुस्सी को देखकर पहले अहमद बख्श खां चौंके. वह जानते थे कि मुस्सी उनके मालिक की 'खूबसूरत कमजोरी' है. तभी मुस्सी मुस्करायी और बोली, ''तशरीफ लाइये वकील साहब. आपके आने से हमारी झोंपड़ी जगमगा उठी.''

थोड़ी ही देर में साज 'एक लौ' हो गये. एक बार फिर सुरों से शराब बरसने लगी. मुस्सी मुस्कराकर बोली, ''आप तो कद्रशनास हैं वकील साहब.मुद्दी एक गजल छेड़ रही है जो पुर मतलब भी है और पुरमजाक भी. गौर फर्माइयेगा और एक एक शेर का जायजा लीजियेगा.'' मुद्दी ने संभल कर सुर छेड़ा और फिर गाने लगी,

''जो राहे इश्क में कदम रखें,
वो ह नशेबो फराज क्या जाने!''

इस शेर को सुनकर अहमद बख्श खां झनझना उठे. मुद्दी उन्हें चुनौती दे रही हो जैसे. तबले पर सम खत्म होते ही मुस्सी बोल उठी, ''वाह-वाह, क्या शेर है. इश्क के नगीने की परख करने वाले जौहरी भी किस्मत से ही मिलते हैं.''

अहमद बख्श मुस्कराये. अपने गले से मोतियों की लड़ उतारकर मुद्दी के सामने फेंक दी और उठ लिये. मुस्सी ताड़ गयी थी. तीर अपने निशाने पर लग चुका था.

महाराजा बख्तावर सिंह के पास सर झुकाये अहमद बख्श खां खड़े थे. महाराजा बोले, ''इश्क कोई गुनाह नहीं अहमद बख्श...हां इश्क करके धोखा देना गुनाह है. खूब सोच समझ लो. अब तुम कुछ ही दिनों में बड़े आदमी बन जाओगे. रुतबे का नशा बड़ा खराब होता है, उतरता ही नहीं है कमबख्त.''

अहमद बख्श खां बोले, ''आलीजाह, मुद्दी की गजल का शेर मुझे याद है. जब इश्क की राह ही पकड़ ली फिर ऊंच-नीच क्या मानी रखते हैं.''

महाराजा मुस्कराये, ''शाबास वकील साहब, जिस दिन मुद्दी को अपने आंगन लाना मुझे उस रोज दावत पर बुलाना! मैं जरूर आऊंगा.'' फिर भाग्य की बयार चल पड़ी थी अहमद बख्श खां को सुख देने. फिरोजपुर झुर्का की नयी-नयी तराशी जागीर उन्हें फिरंगियों ने बख्शी थी और लार्ड लेक ने कहा था, ''वेल अहमद बख्श खां, हम पच्चीस हजार सालाना का रैवेन्यू माफ करता, पर तुम को पचास सवार हमारे वास्ते हमेशा तैयार रखने होंगे.'' अहमद बख्श खां मान गये और तभी से वे नवाब फखुद्दिदौला अहमद बख्श खां बन गये. फिर उन्होंने अपने समकालीन सूबेदार अब्दल्ला बेग के भाई नसरूल्ला बेग से अपनी बहन की शादी कर दी. यही नहीं बाद में नवाब अहमद बख्श खां के छोटे भाई मिर्जा इलाही बख्श 'मारूफ' ने अपनी लड़की उमराव बेगम का विवाह सूबेदार अब्दुल्ला बेग के लड़के असद उल्लाह खां से कर दिया जो बाद में मिर्जा गालिब के नाम से विख्यात हुए.

अपने वचन के अनुसार अहमद बख्श खां ने बाकायदा मुद्दी का हाथ थामा और उसे अपने यहां ले आये. और जब वे नवाब बन गये तब उन्होंने मुद्दी को एक नया नाम दिया....बहू खानम. बहू खानम को उन्होंने कांच के बर्तन की तरह सभाल कर रखा. वे जानते थे कि जरा-सी ठेस लगने पर शीशा चूर-चूर हो जाता है. उनके प्यार का इनाम भी कुदरत ने उन्हें दिया...एक बेटा जो शम्सुद्दीन खां के नाम से पुकारा गया. उन्होंने शम्सुद्दीन खां को गोद में लेते हुए मुद्दी से कहा था, ''तुम्हारा ये बेटा ही मेरी जागीर का मालिक होगा.'' वैसे मुद्दी से इब्राहीम अली, नवाब बेगम और जहांगीरा बेगम भी पैदा हुए पर शम्सुद्दीन खां पर उनका प्यार झमझमाकर बरसता रहा.

फिर चार पैसे और बढ़ता हुआ रुतबा देखकर ही उन्हीं के बुजुर्ग और रिश्तेदारों ने नवाब अहमद बख्श खां को आ घेरा, ''ठीक है तुमने अलवर की इस तवाइफ को अपनाया है. पर फिर भी हमारी इल्तजा है कि एक शादी 'नजीबुल तरफैन' (दोनों पक्ष एक ही प्रतिष्ठा के हों) से भी होना लाजिमी है.''

नवाब अहमद बख्श खां पशोपेश में पड़ गये. तब मुद्दी ही उनकी मुश्किल देखकर पास आकर बोली थी:

''आपके रिश्तेदार ठीक कहते हैं. मैं आपको अपनी तरफ से इजाजत देती हूं. मुझे मालूम है कि आप मुझे धोखा नहीं देंगे!''

फिर सीने पर पत्थर रखकर ही नवाब अहमद बख्श खां ने मुद्दी की बात मानी थी.

''मुद्दी, मैं कुराने पाक की कसम खाता हूं कि तुम्हारा बेटा ही जागीर का मालिक रहेगा!''

और फिर मुगल नियाज मुहम्मद बेग की बेटी कूफू बेगम को ब्याह कर वे अपने घर ले आये. कूफू बेगम से भी चार संतानें हुई...अमीनुद्दीन अहमद, जियाउद्दीन अहमद, माहे रुख बेगम और बादशाह बेगम.

पर उनका बड़ा बेटा शमसुद्दीन अहमद खां ही फिरोजपुर झुर्का का उत्तराधिकारी बना. और जब सौतेले भाइयों में बिगड़ने लगी तब उन्होंने अपने जीते जी जागीर का एक परगना लोहारू कूफू बेगम के लड़कों को दे दिया पर शेष जागीर शम्सुद्दीन अहमद खां के ही पास रही.

मुद्दी ने डबडबाई आंखों से अहमद बख्श खां से कहा था, ''जब तलक आप जैसे अहले वफा इस दुनिया में रहेंगे, इश्क की परवरिश होती रहेगी.''

नवाब अहमद बख्श खां ने मुद्दी को सीने से लगा लिया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : बलिया : सन् 1953
संप्रति : पत्रकारिता और कथा-लेखन.रूढ़ियों, विसंगतियों, जटिलताओं और पाखंडों पर प्रहार करना ही विनय अपने लेखन का उद्देश्य बताते हैं.
संपर्क : ए 138, किदवई नगर, नई दिल्ली - 23

विनय बिहारी सिंह

नींद टूट गयी

सुदूर आदिवासियों की बस्ती में बैठे शकर और भिखारी सिंह आपस में बातें कर रहे हैं. अभी-अभी उन्होंने राम प्यारे शुक्ल, आई.ए.एस. को एक पत्र लिखकर अपने एक साथी के हाथों भेजा है. मन में अब कोई उलझन नहीं है. क्या सारे आई.ए.एस. आफिसर एक जैसे होते हैं?...भिखारी सिंह को अफसोस है कि उनकी नींद पहले क्यों नहीं टूटी? और शंकर को ही क्या कम अफसोस है?

शंकर और भिखारी सिंह पिछली बातें भूल जाना चाहते हैं लेकिन ऐसी बातें क्या इतनी जल्दी भूलती हैं? शुरू से लेकर अब तक की एक-एक घटना दिमाग के तहखाने में जीवित है...

राम प्यारे शुक्ल आई.ए.एस. को आश्चर्य हो रहा है. क्या कस्बे में अब कोई भी लड़का बेरोजगार नहीं है?.....कहां गयी नौकरी मांगने वालों की भीड़?

पूरे कस्बे में शोर हो गया कि कलक्टर साहब ने भिखारी सिंह का कान फूंककर उन्हें चेला बना लिया. कलक्टर साहब यानी राम प्यारे शुक्ल आई.ए.एस..शुक्लजी के कान फूंकने का मतलब है गुरमंत्र बताना. गुरुमंत्र के शब्दों को भिखारी सिंह पकड़ नहीं पाए. कस्बे का कोई चेला बननेवाला व्यक्ति किसी भी गुरु के शब्द नहीं पकड़ पाता. गुरुजी कुछ बुदबुदाते-फुसफुसाते हैं और शिष्यत्व ग्रहण का काम हो जाता है.

वैसे तो शुक्लजी के पिताजी एक डिग्री कालेज में अध्यापक थे लेकिन साथ ही पुरोहिती भी करते थे. लोगों का कान फूंककर वे चेला बनाया करते थे...यह भी बताया करते थे कि किसी विद्वान का शिष्य बनने पर आदमी घोर विपत्तियों में कभी नहीं पड़ता.

उनके एकमात्र पुत्र राम प्यारे शुक्ल के कलक्टर बनने और अध्यापन से उनके रिटायर होने की घटना एक साथ हुई. रिटायर होने के बाद भी वे चूनेवाली सुर्ती खाते हुए पुरोहिती करते रहे. उनके मरने के बाद पुरोहिती की परंपरा ही खत्म हो गई उनके परिवार से.

राम प्यारे शुक्ल शुरू से ही पुरोहिती को घृणा की दृष्टि से देखते थे. वे आई.ए.एस. बनना चाहते थे. आई.ए.एस. बनने के बाद क्या चेलों की कमी रहती है? पांव पूजने वाले पुरोहिती...और आखिर वे बन ही गये आई.ए.एस.

अपने जिले से दूर, प्रदेश के एक छोर पर बसे जिले के वे कलक्टर हुए तो एक हल्की-सी समस्या उनके सामने आ खड़ी हुई थी. उनके घर-खेत की देखभाल कौन करेगा? मां मर चुकी है. पिता के मरने के बाद उनके चेले अब मुफ्त का बेगार नहीं करते हैं. फिर? कोई न कोई उपाय तो करना ही होगा. भिखारी सिंह कैसे आदमी हैं?....गुड.....

भिखारी सिंह ठहरे नपुंसक आदमी. आप चौंक रहे हैं न? पर हैं वे नामर्द ही. बचपन से ही हावभाव स्त्रैण. उनकी शादी नहीं हुई.

दो दिन की आयी बहुरिया (बहू) भी उनके सामने खुलकर बातचीत करती है. ठठाकर हंसती है. जिस घर की बहुरिया बेहद उदास रहती है, प्रयास करने पर भी उसकी उदासी नहीं टूटती, उस घर के लोग भिखारी सिंह को बुलाते हैं. भिखारी सिंह सीधे बहुरिया के कमरे में घुस जाते हैं. घर के परदा प्रथा के घोर हिमायती पुरुषों को कोई ऐतराज नहीं होता. और कुछ ही देर बाद बहुरिया की खिलखिलाहट सुनाई पड़ती है. बहुरिया उस दिन से उदास नहीं दिखती. तब घर की बड़ी-बड़ी औरतें उनसे आग्रह करती हैं, 'कल भी जरूर आइएगा!'

पर वे मेहनती आदमी भी हैं. कोई भी मौसम हो जब खेत में काम करने में जुट जाते हैं तो हट्टा-कट्टा किसान भी उनका साथ नहीं दे पाता. लोग कहते हैं कि ऊपर वाले ने नपुंसक बनाया है तो बदले में लोहे का शरीर भी दिया है भिखारी सिंह को.

यही देखकर कलक्टर साहब ने भिखारी सिंह का कान फूंक दिया. पूरा कस्बा एकबारगी चौंक गया. कलक्टर साहब ने तो कभी ऐसा नहीं किया था! पिता के मरने के सात साल बाद उन्हें पहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये हस्ताक्षर

किसी भी उम्र और वर्ग के ऐसे रचनाकारों के लिए यह स्तंभ प्रारंभ किया जा रहा है जो स्तरीय लेखन के बावजूद अब तक किसी बड़ी पत्रिका में प्रकाशित नहीं हो सके हैं.

बार किसी को चेला बनाने की बात कैसे सूझी? और वह भी भिखारी सिंह जैसे नामर्द को चेला बनाया! क्या कोई सद्गृहस्थ उन्हें नहीं मिला?

बड़ी तत्परता से भिखारी सिंह उनके खेतों की देखभाल करने लगे. कलक्टर साहब ने आश्वासन दिया है कि उनके भांजे शंकर को वे नौकरी दे देंगे. भिखारी सिंह की इज्जत एकाएक काफी बढ़ गयी.भिखारी सिंह भीतर से बहुत आनंदित हैं.

पूरा जिला कलक्टर साहब का चेला बनने के लिए आतुर है. सबके घर में कम से कम एक बेरोजगार बैठा है. कलक्टर साहब चेला बनाने की सिफारिश सुनते-सुनते तंग आ गए हैं. और एक दिन कलक्टर साहब ने ऐलान किया कि पिताजी ने मरते वक्त हिदायत दी थी कि एक आदमी से ज्यादा चेला बनाओगे तो तुम्हारा सत्यानाश हो जायेगा.

कस्बे के सिन्हाजी बड़े रोचक आदमी हैं. वे रूस और अमरीका को गाली देने में नहीं हिचकते. कलक्टर साहब को वे कैसे छोड़ दें? बोले, "राम हो...... राम हो...... देखा कलक्टर की चालाकी! मरे हुए पिता का वास्ता देकर झूठ बोल रहा है."

पांच साल बाद अचानक दो घटनाएं एक साथ घटीं. कलक्टर साहब सचिवालय में संयुक्त सचिव हो गए और इधर भिखारी सिंह को हैजा हो गया.

इस जिले के कलक्टर साहब ने भिखारी सिंह का विशेष इलाज कराया. यह कलक्टर साहब संयुक्त सचिव राम प्यारे शुक्ल के सहपाठी हैं. डाक्टर और नर्स भिखारी सिंह के इलाज के लिए दौड़ पड़े.अस्पताल के मरीज पूछने लगे, "कौन वी.आई.पी. आ गया इलाज के लिए हो भइया?" जवाब मिलता, "कलक्टर राम प्यारे शुक्ल की प्रापर्टी देखने वाला मैनेजर है."

मैनेजर! सुनकर भिखारी सिंह गदगद हो जाते. उनके जैसा निरक्षर आदमी मैनेजर! आधी बीमारी तो इस सम्मान के कारण ही दूर हो गयी. पर इस सेवा-सुश्रुषा के बावजूद उनके भीतर एक टीस उठती — ईश्वर ने उन्हें कैसा दंड दिया नामर्द बना कर! ....पत्नी होती, बच्चे होते तो वे हृदय से सेवा करते. पत्नी का स्पर्श उन्हें और जल्दी ठीक कर देता. अस्पताल की तामझाम की सेवा कहीं गहरे खोखली लगती है.

अस्पताल से स्वस्थ होकर निकले तो जिले के कलक्टर जैन साहब ने उन्हें चाय की 'दावत' दी. पूरे कस्बे में शोर हो गया — भिखारी सिंह ने कलक्टर जैन साहब के साथ चाय पी.

ठीक होकर भिखारी सिंह जब अपने कस्बे में आये तो उसके एक महीने बाद तक कस्बे के लोग उनकी तबियत का हाल पूछते रहे. भिखारी सिंह मन ही मन तय कर चुके थे कि अपने भांजे शंकर को वे अपने साथ रहने के लिए बुला लेंगे. अकेले रहना ठीक नहीं. इस शरीर का क्या ठिकाना! शंकर भी तो पढ़-लिखकर अपने घर बेकार ही बैठा है!

शंकर उनके पास आ गया है. कस्बे के लोग अचरज में हैं. उसकी आंखें किसी नशीली खुमारी में डूबी रहती हैं. सात साल की लंबी बेरोजगारी ने उसे तनिक गंभीर बना दिया है. किसी से कुछ बोलता-चालता नहीं है. कस्बे के लोग उसकी बड़ी इज्जत करते हैं. क्या पता कलक्टर साहब कब उसे अफसर बना दें!

हालांकि शंकर, भिखारी सिंह का कुछ खास ख्याल नहीं रखता फिर भी वे निश्चिंत हैं. शंकर का आ जाना ही उनके लिए बहुत बड़ा संबल है.

शंकर का सिगरेट का बिल अधिक हो गया है. मुख्य सड़क पर स्थित कबीला साहू की दुकान से होकर वह अब आना-जाना नहीं चाहता. कबीला साहू उसे जब देखता है, रोक देता है, "शंकर बाबू, आप हिसाब कब चुकता करेंगे?" तंग आकर उसने मुख्य सड़क से आना-जाना छोड़ दिया है. कबीला साहू भिखारी सिंह से पैसे की बात कहना चाहता है लेकिन उनसे कहने की हिम्मत नहीं होती. भिखारी सिंह अब 'मनीजर बाबू' हैं. ...शंकर की तरह छोकरे नहीं.

राम प्यारे शुक्ल, आई.ए.एस., एक दिन अचानक नियुक्ति सचिव बना दिए गए. पहले हर चार महीने बाद वे अपने घर-खेत का हाल जानने अपने कस्बे में आ जाते थे. लेकिन अब मुख्यमंत्री फुरसत नहीं देते. राम प्यारे शुक्ल आई.ए.एस. का मोहभंग होने लगा घर-खेत से. क्या मिलता है इन खेतों से? ....दिस नानसेंस...फार्मिंग. दूसरे जब घर जाओ तो नौकरी मांगने वालों की अजहद भीड़ का सामना करो. पैतृक संपत्ति की कोरी भावुकता....नहीं...सब बेकार की बातें हैं. उन्होंने अपने सारे खेत बेच दिये. कस्बे के लोग एक बार फिर भौंचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सऊदी अरब की लोक कथा

अरब का बीरबल अबू

किसी अमीर के यहां गोश्त पक रहा था. इतनी खुशबू उठ रही थी कि गली गमक उठी थी. एक भिखारी उधर से जा रहा था. गोश्त की एक बोटी पा जाने की उम्मीद से वह दरवाजे के पास बैठ गया. घंटों बैठा रहा, पर किसी ने उसे कुछ न दिया. खुशबू से ही पेट भर कर वह चला गया.

दूसरे दिन भिखारी ने अमीर से कहा, "हुजूर, कल के लिए शुक्रिया. आपने मुझे यहां से भगाया नहीं, इससे मेरा पेट भर गया. क्या खुशबू थी! वाह वाह!"

अमीर बोला, "अच्छा तो तूने मेरे खाने का जायका खराब किया था? मैं भी कहूं कि खाना बेस्वाद क्यों हो गया है. सारी खुशबू तो तूने चुरा ली थी."

अमीर ने राजा के यहां फरियाद की. भिखारी को पकड़ बुलाया गया. उस पर खुशबू चुराने का जुर्माना किया गया—बारह चांदी के रुपये.

भिखारी के पास एक पैसा न था. उसने एक दिन की मोहलत मांगी, मिल गयी. वह दौड़ा-दौड़ा अबू के पास पहुंचा. सारी बात सुन अबू ने उसे बारह रुपये दिए और दूसरे दिन राजा के पास जाने को कहा.

दूसरे दिन भिखारी ने दरबार में जाकर कहा, "मैं रुपये ले आया हूं."

अमीर ने कहा, "लाओ."

भिखारी ने पत्थर पर एक रुपया गिराया, "टन!" और फिर उसे वापस अपनी झोली में डाल लिया. इसी तरह उसने एक-एक कर बारहों रुपये पत्थर पर टन-टन की आवाज के साथ गिराये और फिर अपनी झोली में वापस डाल लिए.

अमीर बोला, "रुपये लाओ."

इस पर अबू ने वकालत की, "आपने रुपये की 'टन टन' आवाज सुनी?"

अमीर बोला, "सुनी."

"तो आपको आपके हिस्से के रुपये मिल गये. अगर कोई आदमी सूंघ कर खाना बेस्वाद कर सकता है तो उसका जुर्माना भी 'टन टन' की आवाज से चुकाया जा सकता है."

दरबारियों ने तर्क को ठीक पाया और भिखारी को छोड़ दिया गया. □

अनुराधा शुक्ला

हो गए. तो क्या कलक्टर साहब अपनी जन्म भूमि से नाता तोड़ रहे है? (कस्बे के लोग अब भी राम प्यारे शुक्ल को कलक्टर साहब ही कहते हैं...और शायद हमेशा कहेंगे.) ये बातें सुनकर कलक्टर साहब मुस्करा भर देते हैं...उनकी मुस्कराहट पता नहीं क्या-क्या कह जाती है. है कोई कस्बे में मुस्कराहटों की भाषा पढ़ने वाला?...शायद भिखारी सिंह हैं...और शायद शंकर भी.

भिखारी सिंह गमगीन हो चले हैं. अब वे कलक्टर साहब के सिर्फ घर की देखभाल करेंगे, उसमें दिया-बाती जलाएंगे. वे जब भी शंकर की नौकरी की बात करते कलक्टर साहब झुंझला जाते थे. वे उनका 'कान फूंकने' का वास्ता देते. आखिर कलक्टर साहब फट पड़े, "चेला माने? ....क्या नाक में दम करने के लिए आप चेला बने हैं. क्या आप चाहते हैं कि मैं आपको शाप दे दूं....?"

सुनकर भिखारी सिंह का हृदय धक्क से हो गया. शाप! नहीं. अब वे शंकर की नौकरी के लिए नहीं कहेंगे. शंकर इसी बात को लेकर उनसे मजाक करता है अब.

कलक्टर साहब पहले चिट्ठी भेजकर भिखारी सिंह का हालचाल पूछते थे. अब वे चिट्ठी भी नहीं भेजते. लेकिन गांव के लोगों से वे झूठ बोलते हैं, "कलक्टर साहब गुरु जी, अब पहले से ज्यादा ध्यान रखते हैं मुझ पर."

गांव के लोग पूछते हैं, "तो इतना ही ध्यान रखते हैं तो शंकर की नौकरी क्यों नहीं लगा देते हैं."

भिखारी सिंह का जवाब होता है, "उसकी कुंडली के ग्रह अच्छे नहीं हैं. कलक्टर साहब गुरु जी ने बताया है."

गांव के लोग तब चुप हो जाते हैं.

शंकर आदिवासियों के इलाके में एक स्कूल में अध्यापक हो गया. उस स्कूल का मैनेजर आदिवासी है. शंकर के किसी दोस्त का पिता. वह भिखारी सिंह को भी वहीं ले गया है. आदिवासियों की बस्ती में धीरे-धीरे शंकर और भिखारी सिंह घुल मिल गए हैं. दोनों को बेहद अफसोस है कि उन्होंने अपनी जिंदगी इसी तरह शुरू क्यों नहीं की. आदिवासियों का पूरा इलाका उनकी इज्जत करता है. और शंकर को लग रहा है कि वह नौकरी, सुख, दुख और पीड़ा से ऊपर उठ चुका है. भिखारी सिंह को अपने कस्बे की औरतें याद आती हैं तो वे बीच-बीच में वहां भी चले जाते हैं. लेकिन रहना वे शंकर के साथ ही चाहते हैं. इस शरीर का क्या ठिकाना! शंकर के पास अगर उनकी मृत्यु होगी तो वह उनकी 'मिट्टी' को चील-कौवों के नोंचने के लिए नहीं छोड़ देगा. बाकायदा अंतिम संस्कार करेगा.

इन दिनों राम प्यारे शुक्ल अपने कस्बे में आए हुए हैं. वे अपना घर भी बेचना चाहते हैं. कस्बे का कोई आदमी उनके पास नहीं जाना चाहता. वे लोगों को पास भी बुलाते हैं तो लोग कतराते हैं. राम प्यारे शुक्ल, आई.ए.एस. को आश्चर्य हो रहा है. क्या कस्बे में अब कोई भी लड़का बेरोजगार नहीं है? ...कहां गयी नौकरी मांगने वालों की भीड़? वे शंकर और भिखारी सिंह को बुलाने के लिए बार-बार अपनी गाड़ी आदिवासी इलाके में भेज रहे हैं. हर बार ड्राइवर यही आकर बताता है, "वे दोनों कहीं गये हुए हैं सर!"

और हर बार उनका एक ही आदेश होता है, "खोजो कहां हैं...पता लगाओ...कहना कि तुम्हारे गुरुजी बुला रहे हैं..."

अपने कस्बे के लोगों पर कलक्टर साहब मन ही मन भन्ना रहे हैं. पिताजी ठीक ही करते थे. जादू, टोना और प्रेत-बाधा के भय से ये कस्बे के लोग कुछ भी करने के लिए तैयार रहते हैं. मरते दम तक पिताजी ने इन्हें भयभीत रखा. पर मैं क्या करूं? कस्बे में कोई हलचल नहीं है. जैसे वे एक वरिष्ठ आई.ए.एस. अफसर नहीं, भेड़-बकरी हों. मैं इन्हें नौकरियां दे देता तब क्या ये मेरे सामने हाथ जोड़े रहते?

अचानक एक आदिवासी प्रकट हुआ और शंकर के हाथ की लिखी चिट्ठी उन्हें दे गया. लिखा था, "आप में अब हमारी कोई रुचि नहीं है. आप बार-बार ड्राइवर न भेजें." नीचे शंकर का हस्ताक्षर और भिखारी सिंह के अंगूठे का निशान था. ठीक उसी समय राम प्यारे शुक्ल आई.ए.एस. को लगा कि मकान का पिछवाड़ा भरभरा कर गिर पड़ा है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी आंखें

ज्योतिवाला

आरती अपने कमरे के बाहर बरामदे में बैठी हुई अभी-अभी बनाये अपने चित्र को पूरा करके देर तक निहारती रही, फिर वह खिलखिलाती हुई रसोई में पहुंची और मम्मी के सामने अपना बनाया चित्र रख दिया. मम्मी ने देखकर आश्चर्य से कहा, "अरे यह क्या है, किसका चित्र बनाया है?"

आरती हंसते हुए मम्मी से कहने लगी, "यह तो मैं भी नहीं जानती कि कौन है, किसका चित्र है. यह तो मेरी कल्पना है, मेरा सपना है." मम्मी उसकी बात पर हंस दी और हल्के से गाल पर थपकी देते हुए बोली, "बिटिया, तूने अपनी दवाईयां खा लीं?"

आरती एकदम गंभीर हो गयी और मम्मी से बोली, "आप मेरी दवाईयों की इस तरह फिक्र क्यों करती हैं. आखिर आप इनके सहारे मुझे कब तक अपने पास रख सकती हैं. आखिर एक दिन तो सब जाते हैं, और मैं भी इसी तरह चली जाऊंगी." इसके आगे वह कुछ नहीं कह पाई, क्योंकि मम्मी ने आंखों में आंसू भरकर उसके मुंह पर हाथ रख दिया. उसकी आंखों में भी आंसू झिलमिलाने लगे.

आरती ने हताश मम्मी की आंखों को पोंछा, और ढाढस बंधाते हुए कहने लगी, "अरे मम्मी, आप तो रूठ गयीं, अरे बाबा आगे से कभी ऐसी बात नहीं कहूंगी." और आरती ने बातों का रुख बदल दिया फिर हंसती चहकती हुई बोली, "मम्मी आज क्या बनाया है खाने में?"

मम्मी ने गहरी सांस लेते हुये कहा, "तू क्या खायेगी?" आरती मम्मी का आशय समझ गयी और जल्दी से बोली, "मुझे सेब की खीर बहुत अच्छी लगती है. आज आप वही बना दीजिये. मैं भी आज आपके साथ काम में मदद कर देती हूं. आप अकेली कितनी थक जाती होंगी, है न मम्मी?"

मम्मी उसकी ओर विस्मित नेत्रों से देखते हुये बोली, "तुझे क्या हो गया है आरती, तू कैसी बहकी-बहकी बातें कर रही है?" आरती मम्मी की ओर देखकर मुस्कुराने लगी मगर उसने उनकी बात का कोई जवाब नहीं दिया.

अस्पताल में आरती बेड पर लेटी हुई थी. उसे घेरे हुये डाक्टर मंडली खड़ी हुई थी. आरती की आंखें बंद थीं और उसका खिला सलोना-सा चेहरा उसके सौम्य नटखट स्वभाव का सूचक बना हुआ, शांत नीरस वातावरण को चीर रहा था. पास में खड़ी उसकी मम्मी उसे अपलक निहार रही थीं.

डाक्टर मंडली निरीक्षण करते हुए आपस में विचार-विमर्श कर रही थी. तभी नर्स ब्लड रिपोर्ट लेकर आयी और सर्जन के हाथ में थमा दी. सर्जन ने रिपोर्ट पढ़ी और चुपचाप वार्ड से बाहर निकल गये. अचानक आरती ने आंखें खोल दीं और हंसते हुये सभी को देखने लगी. फिर मम्मी की ओर कृतज्ञता पूर्वक देखते हुये कहने लगी, "मम्मी मेरे जाने के बाद आप मेरी कोई चीज जो दूसरों के काम आ सके जरूर ही दे देना. जिससे मेरी आत्मा को शांति पहुंचेगी."

आरती नहीं, अस्पताल से उसका मृत शरीर ही बाहर आया. आरती के मम्मी-पापा ने उसकी अंतिम इच्छा के अनुरूप उसकी आंखें अस्पताल को समर्पित कर दीं.

कुछ दिन बाद डा. खन्ना से अमित बोला जिसे आरती के नेत्रदान की बदौलत दुनिया देखने का सौभाग्य मिला था, "डाक्टर साहब, उस हमदर्द का नाम बता दीजिए, जिसने मेरे जीवन को प्रकाशवान कर दिया है."

डाक्टर के लाख बार मना करने पर भी वह जिद पर अड़ा रहा, अपने जीवन को रौशन करने वाले शख्स के बारे में जानने के लिये. आखिर डाक्टर साहब को उसकी जिद के आगे झुकना पड़ा और उसके घर का पता बता दिया.

अमित उस पते को खोजता हुआ आरती के घर पहुंच गया और दरवाजा खुलने पर वह जैसे ही ड्राइंग रूम में गया कि सामने दीवार पर टंगी पेंटिंग में अपनी ही तस्वीर देखकर ठिठक गया.

उसने अपने बारे में और डाक्टर खन्ना के बारे में बताया. फिर आरती के पिता से आग्रह किया कि आप उनके बारे में बताइये जिन्होंने मुझे रोशनी दी है. आरती की मम्मी भी तब तक वहां आ गयी थीं. वे आंखों में आंसू भरकर कहने लगीं कि तुम्हें रोशनी देने वाली पहले ही चिर निद्रा में सो गयी है.

अमित ने खेद प्रकट करते हुए माफी मांगी और बात को बदलते हुए दीवार पर टंगी अपनी तस्वीर के बारे में पूछा.

मम्मी उसके कहने का आशय समझ गयीं, उन्होंने बताया, "बेटा, आरती का सपना सच हो गया. तुम्हारे से मिलती हुई यह तस्वीर कहीं से आयी नहीं थी, यह उसी ने बनायी थी. हां उसी ने जिसकी आंखों से तुम दुनिया और यह तस्वीर देख रहे हो."

सुनकर अमित सन्न रह गया.

विधि का यह कैसा विधान था...वे तीनों ही नहीं जान पाये... □

■ द्वारा : श्री वी.के. जैन, बी.डी.ओ., खिलचीपुर, जिला-राजगढ़ ब्यौबरा (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतियां : 'शापित लोक', 'जिलाधीश की वापसी', 'ऊंचाइयों का ईश्वर', 'राह के पत्थर', 'एहसासों की शाम.'
संप्रति : निदेशक, राजभाषा विभाग पटना.

भगवतीशरण मिश्र

पवन पुत्र

हनुमान के जीवन पर आधारित आत्मकथात्मक उपन्यास का एक और अंश...

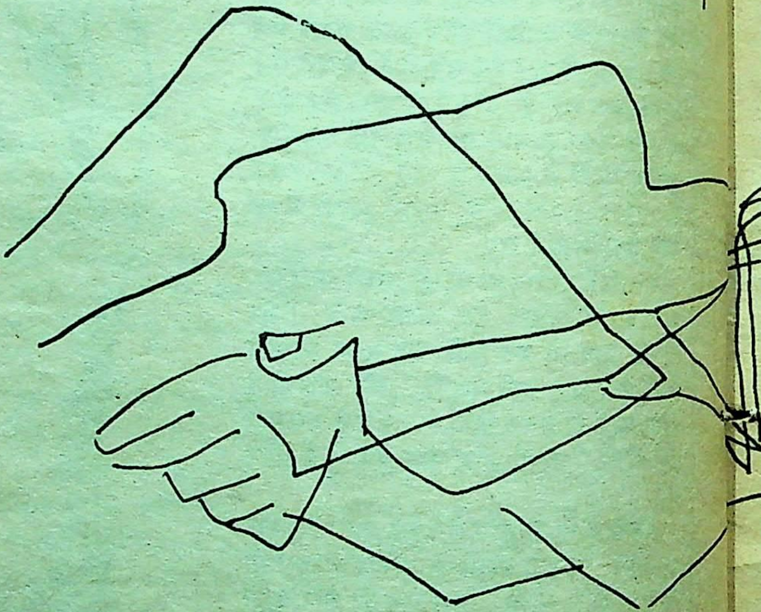

हनुमान तुम लंका से लौटे, बोलो वहां की क्या कथा है?
वहां की कथा (हाल) क्या बताऊं, वहां तो एक ही कथा है.
कौन-सी?
अब कह ही देता हूं....

वहां न तो साज-श्रृंगार की कथा है न खेल कूद की. न गीत-वादन की कथा है न मद-मत्त हाथियों और घोड़ों की. धनुष-वाण की भी वहां कोई कथा नहीं है. राक्षस-राज रावण के नगर में तो बस आपके भय से भागने की ही कथा है. स्वप्न में भी वहां कोई अन्य कथा है ही नहीं.

का श्रृंगार कथा, कुतूहल कथा गीतादि विद्या कथा.
माद्यत्कुम्भी कथा कुतूहल कथा कोदंड दीक्षा कथा
एकैवास्ति मिथ: पलायन कथा त्वद्भीत. रक्ष: पतेर्देव,
श्री रघुनाथ तस्य नगरे स्वप्नेऽपि नान्या कथा.

रे अंगद! तू क्यों बहकी-बहकी बातें कर रहा है? मेरे प्रताप का तुझे पता नहीं है क्या? तो सुन! वर्षा का अधिपति इंद्र मेरे यहां पुष्प-चयन करने वाले माली का काम करता है. प्रकाश का अधिष्ठाता सूर्य मेरे दरवाजे पर पहरा देता है. शीतलता-दायक शशि मेरे लिए छाता लगाता है. पवन और वरुण मेरे घर-आंगन की धुलाई-सफाई करते हैं और स्वयं अग्नि मेरे यहां रसोइया बना बैठा है. क्या वह सब कुछ तुझे दिखाई नहीं पड़ता?

हे मथिली! यह सुवर्ण (अच्छे रंग रूप) की अंगूठी, यह सुवर्ण (अच्छे अक्षरों वाली-रामानाथ के अक्षर) की अंगूठी, यह सुवर्ण (अच्छी जाति) की अंगूठी, यह सुवर्ण (स्वर्ण) निर्मित अंगूठी, राम ने तुम्हारे लिए ही भेजी है.

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्य च मैथली,
प्रेषित रामचंद्रेण सुवर्णस्यांगुलीयकम्.

आपके धैर्य की परीक्षा तो नहीं हो गई? आप कहिएगा मैं कहां-कहां की ले बैठा. कभी इस डाल पर तो कभी उस डाल पर. ठीक अपने नाम से अनुरूप. नहीं? अरे नहीं हुआ बंदर तो क्या? नाम तो कपि पड़ा ही रहा न? तो छलांग लगाने की कला में तो दक्ष होना ही चाहिए.

नहीं, यह बात नहीं, अरे ये तो कुछ उदाहरण थे हन्नूमन्नाटक के साहित्य-सौष्ठव के. कैसे लगे आपको? क्या वर्णन-शैली है? कैसे भाव? कैसे अलंकार? कैसा कथोपकथन?

ठीक ही हन्नूमन्नाटक एक बेजोड़ ग्रंथ है. संस्कृत के इस आदि-नाटक को जितनी बार पढ़ा जाये उतनी ही बार नये भावोन्मेष होते हैं. हर बार एक नए रस की अनुभूति होती है. ठीक इसी तरह जैसे तुलसी के मानस को पढ़कर मन हर बार आनंद के नये स्रोत से साक्षात्कार करता है.

आप कहिएगा मैं भावावेश में बहता जा रहा हूं. इस ग्रंथ की प्रशंसा में कुछ उठा ही नहीं रखना चाहता. आखिर मेरे द्वारा रचित जो ठहरा यह? क्यों?

अरे यही तो रोना था. लोग-भक्ति-भाव में आ कर कौन-कौन से अनर्थ नहीं कर बैठते? कभी बाल्मीकि-रामायण की तरह एक पूरी रामायण मेरे द्वारा रचवा देते हैं तो कभी तुलसी की पंक्तियों को मेरी पंक्तियां कह बैठते हैं. और यहां तो बड़े अकाट्य तर्क दिये जाते हैं. लोग कहते हैं यह नाटक तो हनुमान पर है नहीं, यह तो राम-कथा है. हनुमान का उल्लेख तो प्रसंग-वश ही आया है, तो फिर इसका नाम हन्नूमन्नाटक क्यों पड़ा? इसीलिए तो कि इसे हनुमान ने रचा?

अब बताइए क्या जवाब है इसका? पर इसका जवाब है. मैं कहता हूं मान लिया वह किसी हनुमान के द्वारा ही रचित है पर वह हनुमान मैं ही होऊं वह कैसे सिद्ध होता है? मेरे बाद क्या किसी का हनुमान नाम नहीं रखा गया? आज क्या नहीं रखा जाता? आज भी तो बहुत सारे हनुमान मिश्र और हनुमान सिंह मिल जाते हैं? आप कहिएगा तो इस हनुमान ने, उस महान् आदि-नाटककार ने अपना अता-पता क्यों नहीं छोड़ा पुस्तक पर ताकि इस अटकलबाजी की आवश्यकता ही न रहे. मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहता हूं कितने ऐसे प्राचीन लेखक हुए जिन्होंने अपना पता तो पता नाम तक भी छोड़ा हो अपनी कृतियों पर? कौन है वेदों का लेखक? और उपनिषदों का? किसने रचे इतने सारे पुराण? किसने लिखा महाभारत और उसमें अंतर्निहीत उस ग्रंथों के ग्रंथ गीता को? आप कहिएगा वेद-व्यास ने? तो कितने हुए वेद-व्यास और कहां है उनका अता-पता? या एक ही व्यक्ति ने अपने एक ही जीवन-काल में इतने सारे ग्रंथ रच दिए? एक लाख श्लोक वाले एक महाभारत-ग्रंथ की रचना के लिए ही तो एक जीवन पूरा नहीं पड़ता.

तो अनाम ही रहे भारत-भूमि के ग्रंथकार. यही है इस भूमि की विशेषता. नाम में नहीं, यश-कीर्ति में नहीं, मात्र कर्म में विश्वास रहा उनका. ऐसा ही अनाम था वह हनुमन्नाटक का प्रणेता. कम-से-कम मुझ कपि की स्वीकृति नहीं है वह. विशेषकर इसलिए कि इसमें मेरे संबंध में भी ऐसी-ऐसी उपमाएं गढ़ी गई हैं, ऐसी ऊंची बातें कही गई हैं जिनके योग्य मैं कदापि नहीं हूं. स्वयं अपने संबंध में उन बातों को लिखना तो मेरे लिए कदापि संभव नहीं होता.

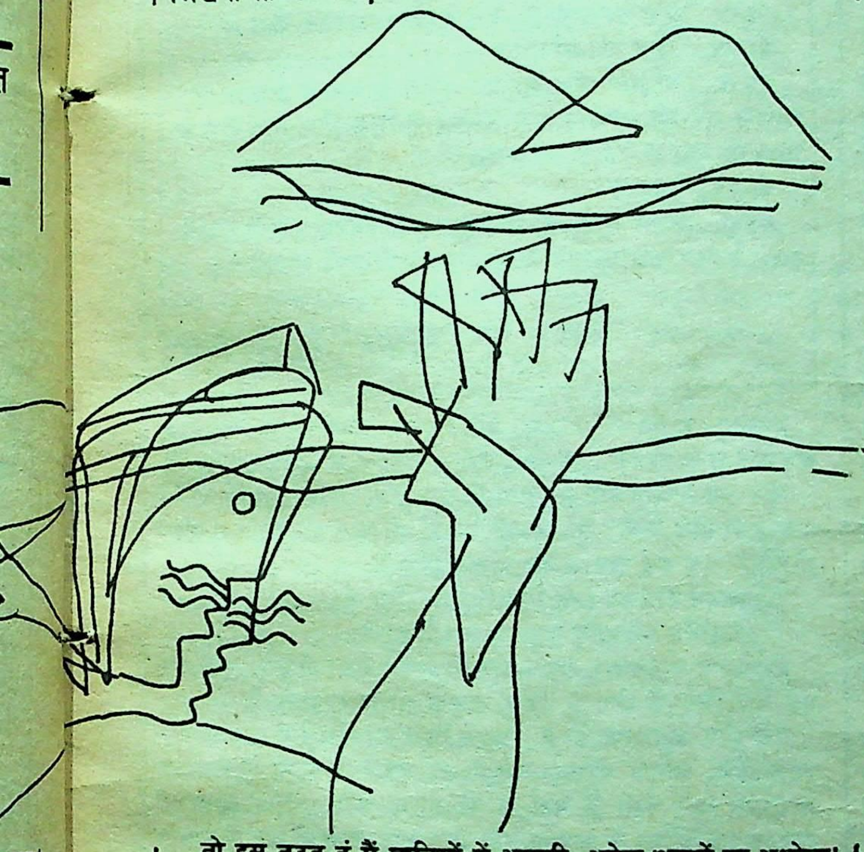

तो इस तरह हूं मैं ज्ञानियों में अग्रणी. अनेक शस्त्रों का अध्येता! वेद-वेदांग में परांगत! वैयाकरण, संगीतज्ञ और क्या-क्या?

ऊपर देखी न आपने मेरे संगीतज्ञ होने की बात? यह मैंने यों ही अनजाने में नहीं कही. आप सोचते होंगे हनुमान और संगीतज्ञ? अपना गाना और दूसरों का रोना किसे अच्छा नहीं लगता? पर विश्वास मानिए यह उपाधि भी मैंने स्वयं नहीं ले ली है और न मुझे अपने स्वर के तथाकथित माधुर्य को लेकर ही कोई भ्रम है. कपि की किलकिलाहट कोयल की कूक भी तो नहीं कि किसी बहाने उसमें संगीत की मिठास खोज ली जाय? पर क्या कीजिएगा, कहने वाले तो कहते हैं कि मैं एक महान् गायक, एक संगीताचार्य भी हूं. और ऐसी बातों के स्रोत साधारण नहीं, आपके पुराण-ग्रंथ ही हैं. पुराणों के पुराण श्रीमद्‌भागवत में भी मेरे संगीतज्ञ होने की चर्चा है. भागवत कहता है.....किंपुरुष वर्ष में हनुमान किन्नरों और गंधर्वों के साथ लक्ष्मण के अग्रज आदि पुरुष सीता-सर्वस्व राम के गुणों का गायन करते हैं. जी हां, स्पष्ट लिखा है और स्वयं भी इसे गाते हैं... "स्वयं चेंद गायति." अब लीजिए, मैं और गाऊं? वह भी किन्नरों और गंधर्वों के स्वर में स्वर मिला कर? आप को विश्वास हो रहा है इस सब पर? आपको तो हो ही रहा होगा. आदमी अपने श्रद्धा-पात्र अथवा प्रेम-पात्र में वे सारे कल्पित गुण ढूंढ ही निकालता है जिन्हें यह अपने में यहीं खोज पाता. माना कि मैं राम के गुणों का गान करता हूं-संकीर्तन करता हूं. यह मेरी आदत है, मेरा धर्म. पर एक कीर्तन-कर्त्ता उच्च कोटि का गायक भी हो, कहां से सिद्ध होता है? पर आपने तो सिद्ध करने का कोई प्रयास नहीं छोड़ा है. भागवत की बात तो आपने सुन ली. अब सुनिए एकाध और उदाहरण मेरी संगीतज्ञता के.

कैलास की बात तो आपने सुनी होगी. हिमाद्रि का यह हिममंडित शिखर अपने धवल सौंदर्य के लिए विख्यात रहा है. तो इसी कैलास पर तपोनिष्ठ ऋषि गौतम का आश्रम था. ऋषि अपने अनन्य सेवकों-साधकों के साथ इस देव-शिखर पर सानंद निवास कर रहे थे. उनके परम प्रिय शिष्यों में एक का नाम था शंकरात्मा. शंकरात्मा जितना कैलास-पति आशुतोष शिव का भक्त था उतना ही अपने गुरु गौतम के प्रति भी श्रद्धा-नत. अवधूत रूप में विचरण करता शंकरात्मा देखने में बड़ा अपावन और व्यवहार में उद्दंड था.

एक दिन गौतम के आश्रम में अतिथियों की भीड़ जुटी. पाताललोक से वाणासुर अपने गुरु शुक्राचार्य के साथ पहुंचा और उनके साथ था दैत्यपति वृष्पर्वा. कुछ दिन आश्रम में शांतिपूर्वक बीते. किंतु एक दिन अनर्थ घट गया.

वृष्पर्वा भी शिवभक्त था. एक सुबह शिवाभिषेक के पश्चात् वह बर्फ-निर्मित शिवलिंग के समक्ष स्तोत्र-पाठ में लीन था कि नंग-धड़ंग शंकरात्मा कहीं से आ टपका. वृष्पर्वा की अर्चना-उपासना की उपेक्षा-सा करता वह शिवलिंग के सामने ही खड़ा हो गया. स्तोत्र-पाठ के बाद शिवभक्त वृष्पर्वा ने आंखें खोलीं तो सामने के दृष्य को देख दंग रह गया. उसने आव देखा न ताव और तलवार से शंकरात्मा की गर्दन उतार ली. ऋषि-कुटि में रक्त की नदी बह गयी. गौतम दौड़े-दौड़े पूजा-गृह में पहुंचे तो शिष्य शंकरात्मा का निष्प्राण शरीर छटपटा रहा था. सिर एक ओर बिल्व-फल की तरह पड़ा हुआ था. अपने प्रिय शिष्य को इस तरह अकाल कालकवलित हुए देख ऋषि अपने को रोक नहीं सके और उन्होंने भी अपने प्राणों को खींच उन्हें ब्रह्मांड में विलीन कर दिया. दैत्य-कुल-गुरु शुक्राचार्य के पास यह संवाद पहुंचा तो उन्होंने इस अनर्थ के मूल में अपने को ही समझा और इस पाप के प्रायश्चित हेतु अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए. ऋषि के साथ आये दैत्यों ने जब अपने गुरु के प्राण-विसर्जन की बात सुनी तो उन्होंने भी एक-एक कर अपने प्राण छोड़ दिए. थोड़ी देर पहले जो आश्रम शिवभक्तों से सेवित और जीवन से स्पंदित था वही अब श्मशान की तरह शांत और भयावह हो आया.

ऋषि-पत्नी अहल्या ने जब यह हाल देखा तो घोर पीड़ा से व्याकुल हो क्रंदन कर उठी. सद्य विधवा बन आयी अहल्या को जितना अपने पति के प्राणों के जाने का कष्ट था उससे कम अनेक शिव-भक्तों के प्राणोत्सर्ग का नहीं था. शिव-भक्तों के आराध्य, पशुपति भी तो कैलास-वासी ही हैं! अहल्या-रुदन को उन तक पहुंचने में विशेष समय नहीं लगा और वे नंदी पर आरूढ़, गौतम-आश्रम आ धमके. संयोगवश उस समय उनके यहां ब्रह्मा और विष्णु अतिथि बने हुए थे. शिव के साथ वे ही अहल्या के समक्ष उपस्थित हुए. त्रिमूर्ति को अपने समक्ष खड़ी देखकर अहल्या ने अपने जीवन को धन्य माना पर पति-वियोग के दुःख को वह तब भी भूल नहीं पायी.

"औघड़ दानी आशुतोष के दर्शन व्यर्थ नहीं होते. वर मांगो." शिव ने अपनी सहज मुसकान के साथ कहा तो अहल्या चुप ही रही.

विष्णु ने भोलेनाथ के कानों से मुंह लगाया और बोले, "आप रह गये बौड़म के बौड़म ही. अरे, अपने इन सभी भक्तों को जीवन-दान दीजिए. इससे बड़ा वरदान अभी क्या हो सकता है?"

विष्णु की बात सुनते ही शिव ने शवों पर अपनी अमृत वर्षिणी दृष्टि फेरी और वे प्राणवंत हो आये. थोड़ी देर पूर्व की मरघट-तुल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांति हर्षोल्लास के वातावरण में बदल गयी.

प्रसन्नता से भरे त्रिदेव चले मानसरोवर की तरफ और वहां जल-क्रीड़ा में रत हो गये. बूढ़े ब्रह्मा तो तट पर ही खड़े अपने नेत्रों को तृप्त करते रहे पर शिव एवं विष्णु सरोवर के मध्य एक दूसरे पर जलांजलि फेंकने और हास-परिहास में लीन हो गये. सभी ऋषि और देवता भी यह दृश्य देखने मानसरोवर के तट आ जुटे और थोड़ी देर पहले के दारुण दुख को भूल, भोले शंकर और बैकुंठपति की इस जल-क्रीड़ा को निहार तालियां बजा-बजा आनंदित होने लगे. ठीक इसी समय नारदजी भी आकाश-मार्ग से पहुंचे. "नारायण! नारायण!" के स्वर के साथ उनकी वीणा का झंकार दिग्दिगंत में व्याप्त हो गया. पशुपति और विष्णु भी सरोवर से बाहर आ तट पर विराजमान हो गये और लगे इस आनंद का उपभोग करने. नारद की वीणा की तान पर देव-मुनि सभी नृत्य-मग्न हो गये, पर एक बात की कमी सभी को खल रही थी. नृत्य और वाद्य तो ठीक पर संगीत? बिना संगीत के वाद्य क्या? नृत्य क्या?

"इस समय हनुमान की कमी खल रही है." किसी ने कहा और मेरी आफत आ गयी. देवताओं की बात देवताओं तक पहुंचते कितना समय लगता है? और फिर जहां मेरे आराध्य साक्षात् विष्णु को मेरी आवश्यकता प्रतीत हो वहां पहुंचने में मैं विलंब करूं, यह कैसे हो सकता है? झट मैं भी मानसरोवर के तट पहुंचा. त्रिदेवों को नमस्कार निवेदित किया और तट पर पालथी लगा बैठ गया. नारद ने वीणा का नये सिरे से झंकार किया और मैं गायन-मग्न हो गया. उस दिन ब्रह्मा, विष्णु और शिव की स्तुति में मैं इतना तन्मय हुआ कि पता नहीं आरोह-अवरोह के किन स्वरों पर चढ़ मेरा गायन सबकी वाह-वाह का कारण बन आया और लोगों ने कहा कि ऐसे नैसर्गिक गायन का आनंद तो उन लोगों ने उसके पूर्व कभी लिया ही नहीं था. भोले बाबा तो इतने प्रसन्न हुए कि सारी सुध-बुध खो तट पर ही लेट गये और अपना दाहिना पैर उठा मेरी गोद में डाल दिया, "धन्य हो हनुमान, तुमने तो आज संगीत की स्वर्णिम धारा ही बहा दी."

भोले बाबा के चरण मेरे अंक में पड़े और मेरे आराध्य तक को ईर्ष्या हो आयी और उसको रोकने में असमर्थ वे आशुतोष को उलाहना दे बैठे, "मैंने वर्षों तक प्रति दिन हजार कमल-पुष्पों से अर्चना की. संसार में यह प्रसिद्ध भी है कि नारायण को शिव और शिव को नारायण प्रिय हैं पर हनुमान का यह सौभाग्य देख मुझे अपना भाग्य व्यर्थ-सा प्रतीत होने लगा."

इस घटना का लोगों ने खूब बढ़ा-बढ़ाकर प्रचार किया. एक ने तो यहां तक कह दिया कि मेरे गाने के पहले तक तो कुछ लोग गुन गुना भी रहे थे पर मेरे संगीत के आरंभ होते ही सब मंत्र-मुग्ध हो श्रोता बन गये, गायक केवल मैं ही रहा.

तो यह है मेरे गायन का एक प्रसंग. नारायण से यह जुटा था इसलिए मैंने इसे निवेदित कर दिया वर्ना मैं ऐसे प्रसंगों को सुनाने से रहा. पर इससे आप मुझे सचमुच ही कोई महान् संगीतज्ञ न समझ बैठें. भक्ति-भाव के प्रवाह में कभी-कभी सभी बह जाते हैं. उस समय अंदर से जो कुछ स्पष्ट-अस्पष्ट निकलता है वह सब छंदोबद्ध और ताल-लय युक्त ही हो आता है. बाल्मीकि की बात आप भूले नहीं न? क्रौंच-युगल में एक की हत्या होते ही "मा निषाद" के रूप में जो कुछ उनके अंदर से फूटा था वह काव्य तो था ही, किस संगीत से कम था? उसी रामायण को गा-गा कर न लव-कुश ने प्रभु का सानिध्य प्राप्त कर लिया था?

तो मैं कह रहा था हनुमान संगीतज्ञ नहीं है. और वह चाहे जो हो पर संगीत से उसका क्या वास्ता? पर आप मेरी बात पर ध्यान ही कब देते हैं? आपने तो संगीताचार्यों की सूची में भी मेरा नाम गिना दिया है.

आंजनेयो मातृगुप्तो रावणो नंदिकेश्वर,
स्वातिर्गणो विदुराजः क्षेत्रराजश्च काहल.

हनुमान, मातृगुप्त, रावण, नंदिकेश्वर, स्वातिगार्ण, विदुराज, क्षेत्रराज तथा काहल... ये आठ संगीत-शास्त्र के आदि प्रवर्तक हैं.

और अब संगीताचार्य बन गया तो कुछ छंद, अलंकार आदि भी मैंने चलाये ही होंगे. नहीं? मेरे भक्तों ने यहां भी कोई कंजूसी नहीं की है और मेरे नाम कई छंद-अलंकार कर दिए हैं.

आद्यं दीर्घत्रयं प्राह द्वितीयं ह्रस्वमेव च,
विदुर्विंदु त्रयेणापि हनुमान् सार्धीविदुना.

हनुमान के मतानुसार, प्रथम तीन दीर्घस्वर, फिर दो ह्रस्व, पुनः तीन एवं अर्ध बिंदु के योग से 'विंदु' नामक अलंकार बनता है.

ऐसे और उदाहरण भी हैं. कितने गिनाऊं? संक्षेप में यह कि जैसे पहले कहा, आपके भक्ति-भाव ने ही मुझमें ये सारी विशेषताएं आरोपित कर रखी हैं वर्ना मैं तो ठहरा कपि... एक साधारण राम-भक्त! भक्ति के अलावा मुझे और कुछ आता हो यह मैं मानता नहीं और भक्ति में भी मैं पारंगत हूं, यह कैसे कहूं? भक्त भी ऐसे-ऐसे हुए हैं इस धरा पर मैं उनके सामने पानी भरूं. अब भरत के सदृश भी कोई भक्त हुआ है कभी, और होगा कभी? विभीषण की तरह? निषाद-राज की तरह? आगे सुनिए मेरी जन्म की कहानी जिसकी बड़ी आतुर प्रतीक्षा है आपको. है ही वह कुछ ऐसी वर्ना एक ही साथ कई एक नाम कैसे लग जाते मेरे साथ? हनुमान भी, आंजनेय भी, शंकर-सुवन भी, केसरी-नंदन भी. और सबके ऊपर पवन-पुत्र मारूति भी. तो आगे यही कहूंगा—अपने जन्म की विस्तृत गाथा. तब तक थोड़ा नाम लेते हैं अपने राम का. बहुत देर हो गयी अपनी ही बात करते. तो आइये गाते हैं तुलसी से स्वर मिला कर....

भायं कुभायं अनख आलसहुं,
नाम जपत मंगल दिसि दसहुं.

भाव से, कुभाव से, शत्रुता से, आलस्य से, जैसे भी राम का नाम लो वह दसों दिशाओं में मंगलकारी ही होता है. □

(यह उपन्यास राजपाल एंड संस दिल्ली द्वारा शीघ्र प्रकाश्य)

फारसी कथा

बहरे दोस्त की मिजाजपुर्सी

एक बहरा आदमी अपने एक बीमार दोस्त की मिजाजपुर्सी के लिए घर से निकला. रास्ते में वह सोचता गया कि उसे क्या पूछना है और जाहिर है वह उसके प्रश्नों का उत्तर वह जिस तरह देगा तो जवाब में उसे क्या कहना है. उसने सोचा कि बहरा हूं तो इसका मतलब यह तो नहीं कि दोस्त की तबीयत पूछने ही न जाऊं. पर सोचे हुए जवाब न मिलने पर दोनों दोस्तों का संवाद कुछ इस प्रकार हुआ :

बहरा, "कैसे हो दोस्त?"

बीमार, "बहुत खस्ता हाल हूं. मेरा ख्याल है मैं मौत के दरवाजे तक पहुंच गया हूं."

बहरा, "खुदा का शुक्र है. वैसे तुम्हारा डाक्टर कौन है?"

बीमार, "मौत का फरिश्ता."

बहरा, "बढ़िया बात है. वह बहुत कारसाज़ डाक्टर है." जिसके घर भी जाता है उसे हमेशा के लिए ठीक कर देता है. कौन-सी दवा ले रहे हो आजकल?"

बीमार, "जहर!"

बहरा, "जरूर तुम्हें आराम पहुंचाएगी. बिल्कुल सही दवा है. इससे बेहतर दवा तुम्हारे लिए और हो ही नहीं सकती. □

प्रस्तुति : सुधांशु गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक और परिवेश

विपिन जैन

वर्षों बाद हम दोनों आमने-सामने थे. पहले कभी सोचा भी नहीं था कि कभी हम सालों के अंतर से मिलेंगे. इस बीच हम दोनों में से किसी ने भी एक-दूसरे से मिलने की कोशिश नहीं की. बहुत से प्रश्न अंदर समेटे हुए हम शब्दों को समझदारी से स्वर में बदलने दे रहे थे.

मैं दूसरे ही प्रतीक को सामने बैठा पा रहा था. कभी वह कहता था कि लिखना उसके लिए सांस लेने से अधिक जरूरी है. उन दिनों वह दमखमवाली कहानियां लिखा करता था. कहता था शब्दों में बड़ी शक्ति होती है. शब्द समाज के सोचने के ढंग को बदल सकते हैं. रचनात्मक साहित्य से क्रांतियां हो जाती हैं. उसकी कहानियां हम कुछ दोस्तों के बीच चर्चा का विषय भी रहती थीं. कुछ पत्रिकाओं में उसकी कहानियां पुरस्कृत होकर भी छपी थीं. हम दोनों ने साथ-साथ एम.ए. किया था. हम सब दोस्त रोजगार की तलाश में लग गये थे. पर वह कहता था कि मैं सिर्फ लिखना ही जीविका का साधन बनाऊंगा.

प्रतीक धीरे-धीरे नशे के प्रभाव में आ गया था. हल्की-सी बहकी आवाज में वह कहने लगा था, "तुम समझते हो मैंने यूं ही लिखना छोड़ दिया? मैंने लेखनजीवनी होने का कोई प्रयास नहीं किया. पहले-पहल मैंने एक लोकल अखबार की नौकरी पकड़ी. दिन-रात मेहनत करके अखबार के संपादकीय से फिल्मी पेज तक सब खुद लिखा. बरसों तक वह मामूली-से वेतन पर मुझसे अखबार निकलवाता रहा. उसके दूसरे कई धंधे थे. अखबार वह अपनी प्रशासन में धाक के लिए निकालता था. जब मैंने उससे मेहनत के हिसाब से पैसा मांगना शुरू किया तो उसने मेरे जैसा पत्रकारिता में आने का उत्सुक लड़का ढूंढ़ा और पैसे खाने का आरोप लगाकर मुझे बाहर कर दिया. एक राष्ट्रीय दैनिक में भी नौकरी की मगर वहां भी जितना खटना पड़ता था, उससे अपना लिखना-पढ़ना छूटता जा रहा था. एक दिन लेखक बनने की पिनक में वह नौकरी भी छोड़ दी.

जब मैं कोई और नौकरी तलाश नहीं कर सका तो पिताजी ने एक दिन कहा, "मैं तुझे एक जगह नौकरी पर लगवा रहा हूं. वहां ठीक तरह नौकरी करना. नौकरी में कई तरह की बातों को अनदेखा करना पड़ता है. वे लोग मेरी सिफारिश और सही आचरण की गारंटी पर नौकरी दे रहे हैं. वहां सही गलत के चक्कर में मत पड़ना."

मैं वहां नौकरी करने लगा. मगर कुछ ही दिनों में वहां घुटन महसूस होने लगी. वे लोग दो नंबरी धंधा करते-करते करोड़पति बन गये थे. मगर अपने कर्मचारियों को पूरा वेतन भी नहीं देते थे. नौकरी पक्की होने से पहले ब्रेक करवा देते थे. मन करता था उनके शोषण के विरुद्ध खड़ा हो जाऊं. आत्मा धिक्कारती थी. लेखक महोदय, अपने पात्रों से अन्याय और शोषण के खिलाफ लड़ाई कराते हैं और खुद रोजी के समझौते पर सब चुपचाप देख रहे हो. एक दिन मालिकों के विरुद्ध जा खड़ा हुआ तो उन्होंने वही किया जो हर समझदार मालिक करता है."

एक दिन मैं रात को देर से घर लौटा तो पाया मेरी किताबों का रैक खाली था और बहुत सारे लिखे-अनलिखे कागज फटे बिखरे पड़े थे. सारी रात मैं गुस्से और क्षोभ की आग में जलता रहा. सवेरे बिना कुछ खाये पीये ही घर से निकल गया था. फिर तीन दिन घर नहीं गया. यार-दोस्तों से उधार-मांग पेट भरा. प्लेटफार्म पर जाकर सोया. चौथे दिन एक दोस्त ने बतलाया कि तेरी मां-बहन तुझे ढूंढने आयी थीं. तेरे पिताजी अस्पताल में हैं. उन्हें दिल का दौरा पड़ा है.

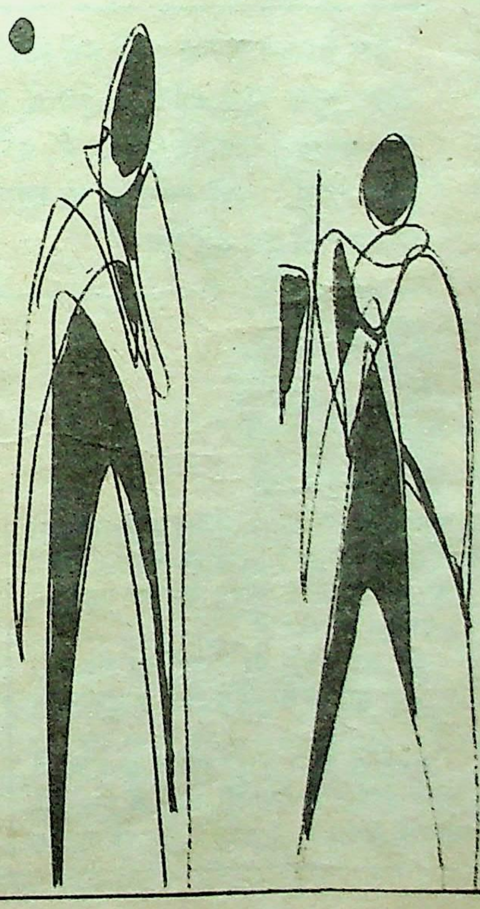

अस्पताल से पिताजी को घर लेकर आया तो मेरी आंखों के समर्पण ने उन्हें एक भरोसा दे दिया था. कई दिनों की लगातार खोज के बाद एक प्राइमरी स्कूल में बच्चों को पढ़ाने का काम मिला. उस प्राइवेट स्कूल में अधिकांश मुझ जैसे लड़के ही थे. उन्हें आठ सौ वेतन पर हस्ताक्षर करके चार सौ रुपये मिलते थे. मैंने भी सहर्ष वह नौकरी स्वीकार ली. उस दिन मुझे लगा था कि मेरा कथा नायक हार गया है. मेरी शादी में जो दहेज और रुपया मिला उसके सहारे बहन की शादी हुई. जिन बातों के लिए, जिन मूल्यों के लिए मैं अपनी कहानियों के जरिये लड़ता था मैंने उन सबको स्वीकारा. स्कूल में पढ़ाने के बाद एक दो ट्यूशन भी पढ़ाने लगा था क्योंकि शादी के बाद खर्च संभालना कठिन हो गया था. धीरे-धीरे सब छूटता गया. न मैं अपने कथापात्रों और स्थितियों के लिए रह गया था और न वह मेरे लिए. कभी कुछ लिखने की सोचता भी था तो मुझे लगता था जैसे मेरे पात्र मेरा उपहास कर रहे हैं. मुझसे पूछने लगते — लेखक महोदय अब हमें कितनी दूर तक ले जाओगे.

करते-करते एक दिन पी.जी.टी. ग्रेड में टीचर की नौकरी मिल गयी. एक छोटी-सी जगह नियुक्ति हुई. मैं खुशी-खुशी वहां चला गया. किसी बड़ी दुनिया में रहने की इच्छा भी नहीं रह गयी थी.

एक दिन वहां पिताजी आये. साथ में एक अटैची में भरकर मेरी किताबें लाये थे. एक सप्ताह वहां रहे. वे किताबों की एक रैक भी बनवाकर लाये. उसमें मेरी किताबें लगायीं. जितने दिन वहां रहे पढ़ते रहे. पत्रिकाओं से खोज-खोजकर मेरी रचनाएं पढ़ीं. जाने से पहले कहने लगे, "अब तो कुछ खाली समय भी मिल जाता होगा? लिखना फिर शुरू कर दे." इतना कहकर वह आंखें झुका बाहर की ओर चले गये थे. चलने के दिन बोले थे, "मेरे पास कुछ पैसा जमा है, मैं भेज दूंगा. तू अपनी कहानियों की एक किताब छपवा लेना."

उनके जाने के बाद मैं कई दिन विचलित रहा. उसी विचलित दशा में शराब का सहारा ढूंढा. शराब अधिक बढ़ी तो एक रात पत्नी भी पूछने लगी थी — "तुम्हें क्या दुख है? तुम्हारे पास गुजारे लायक नौकरी है, परिवार है. फिर क्यों खुश नहीं रहते. तुममें जीवन के प्रति कोई उमंग-उत्साह नहीं है. जीवन तो खुद एक सुंदर रचना है."

मैं व्यंग्य से विद्रूप हंसी हंसता केवल इतना कह पाया था, "सुंदर रचना!"

इतना कह वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और बोला, "चलता हूं दोस्त! आधे-अधूरे फसाने का क्या सुनना सुनाना." □

■ 236, मुकुंद नगर, गाजियाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्कीस वर्षीय विनय संप्रति ऋषि गालव महाविद्यालय, मुरैना में अध्ययन रत हैं. जीवाजी विश्वविद्यालय के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार, निबन्धकार और वक्ता. यह कहानी जीवाजी वि.वि. में अखिल भारतीय नवांकुर सांस्कृतिक समारोह के अंतर्गत सर्वश्रेष्ठ घोषित.
संपर्क : गांधी चिकित्सालय के सामने, जीवाजी गंज, मुरैना (म.प्र.).

विनय श्रीवास्तव

बिरादरी

बस-बस खबरदार, आंखें मिचमिचाते हुए जग्गू ने कहा और बिना रुके ही आगे बोला, "जरा देखभाल के सड़क पर पानी छिड़क. अगर एक भी छींटा इधर आया तो तेरी खैर नहीं...समझा!"

लेटे-लेटे ही जग्गू ने कहा और फिर पैर फैलाकर आंखें बंद कर लीं.

रामदीन नल में लगे हुए पाइप का मुख दूसरी ओर घुमाते हुए फुसफुसाया, "जैसे लाट साहब ही तो हैं..."

रामदीन के मुख से निकली यह फुसफुसाहट भी जैसे जग्गू के कानों में पड़ गयी. उसके होंठों से कुछ अस्फुट गाली के स्वर निकले, पर आंखों से कंमबख्त नींद नहीं जा रही थी. वह शब्द उसके होठों पर आकर ही रह गए और उसी के साथ एक हल्की मुस्कान आकर विलीन हो गयी.

सड़क के किनारे एक बहुत बड़ा और घना नीम का वृक्ष है. वे लोग उसी नीम के वृक्ष के नीचे सो रहे थे. पत्तों के झुरमुट से छन-छन कर आती धूप उन पर बिखरी हुई थी. जग्गू ने अपने चेहरे को धूप से बचाकर सोये हुए साथियों को देखा. उसके बाजू में सो रहा है राका. उसी के पास जुम्मन और सत्तू और एक चीनियों जैसी नाक वाला लड़का छैनू. सब के सब निद्रामग्न.

साले सब कुंभकरण हैं, पूरे कुंभकरण. सोच कर हंस पड़ा जग्गू. वह उठ खड़ा हुआ और सड़क के उस पार बने नल की ओर मुंह धोने चल पड़ा.

उधर से पंडितजी दूध लेकर लौट रहे थे. जब वे नीम के पास से गुजरे तो नाक-भौं सिकोड़कर दूर हट गये. इन अभागों के मारे तो भोर के समय इधर से गुजरना मुश्किल हो गया है. कैसे सो रहे हैं, राम, राम, और वह सड़क की इस पटरी से हटकर दूसरी पटरी पर पहुंच गये.

"पर इससे क्या?"

क्या दूसरी पटरी पर जाने से वह उनसे बच सकते हैं?

कभी-कभी तो शर्म हया ताक पर रखकर इस प्रकार से अश्लील गाना शुरू कर देते हैं कि उधर से निकलना मुश्किल हो जाता है. विशेषकर ऐसे उद्‌गार उस समय अश्लीलता की चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं जब छात्राएं स्कूल जाने के लिए उधर से निकलती हैं.

हां भई, कंठ तो जग्गू और राका के बहुत सुरीले हैं. पता नहीं इन अभागे अनाथों के मन में इतनी मिठास कहां सें आ गयी?

मगर कंठ सुरीले होने से क्या होता है? इशारा ही नितांत गंदा है. इसीलिए कुछ लोग कहते हैं, अभागे मरते भी तो नहीं हैं.

नहीं, उनकी मृत्यु नहीं होती. शरीर पर जमाने भर की गंदगी, महीनों न नहाया हुआ शरीर और मुंह में अत्यधिक अश्लील शब्दों का जहर होने के कारण यमराज उनसे सौ कदम दूर ही रहते हैं.

और वह दुनिया भर के पापों का बोझ सीने पर लादे हुए भी जी रहे हैं. बस, बेमतलब जी रहे हैं.

सुबह से लेकर आधी रात के बाद तक ये पांचों मूर्तियां आवारागर्दी करने के बाद वहीं नीम के नीचे आराम करती हैं. जब वह उस पेड़ के नीचे नहीं रहते तो वह नीम का वृक्ष ऐसा लगता है जैसे महाभारत का 'समी वृक्ष' जिस पर पांडवों ने विराट राजा के महल में अज्ञातवास को जाते समय अपने अस्त्र-शस्त्र टांग दिए थे. ठीक उसी प्रकार इन पांचों पांडवों की सारी संपत्ति उस नीम के घने वृक्ष की टहनियों से टंगी रहती है, जिसमें अधिकांश गाली-गलौज, मारपीट और दूसरों को तकलीफ देने के उपाय होते हैं.

उस रात! रिम-झिम, रिम-झिम, पानी बरस रहा था. आधी रात के बाद यथावत पांचों मूर्तियां वापस उसी पेड़ के नीचे लौट आयीं. मिजाज किसी का भी ठीक नहीं था. बैड लक! कोई भी नहीं जीता. सभी के हाथ खाली और मुंह लटके हुए, रुंआसे. जैसे रास्ते में किसी से झगड़ा हो गया हो.

नीम के नीचे पहुंचने पर उनके बिगड़े हुए मिजाज और भी बिगड़ गए. नीम के नीचे उन्होंने देखा कोई व्यक्ति उनके स्थान पर आराम से सो रहा है. उसे देखकर जग्गू भड़क उठा, "कौन है बे! स्साले, उठ भाग यहां से" इतने

"इस बेरहम दुनिया ने तो हमें मार डाला होता अगर कुछ भले लोगों ने जिन्हें यह समाज गुंडे-बदमाश कहकर बुलाता है, हमें सहारा न दिया होता. उन्हीं देवताओं के रहमोकरम पर पलकर तो हम बड़े हुए."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवांकुर

देश के तमाम महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के जरिये आज कैसी प्रतिभाएं सामने आ रही हैं, लेखन के प्रति उनमें कैसा लगाव है...और रचनात्मकता के संदर्भ में वे क्या सोच रहे हैं. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसी नयी प्रतिभाओं की तलाश करते हुए हर माह एक उभरते रचनाकार की कहानी प्रकाशित की जायेगी. रचना भेजते समय यह न भूलें कि अपने विभागाध्यक्ष अथवा संस्थान के प्रधान का इस आशय का प्रमाण पत्र भेजना अनिवार्य है रचनाकार संस्थान में अध्ययनरत है और 'सारिका कहानी मंच' का सदस्य है.

यदि आपकी संस्था में 'सारिका कहानी मंच' नहीं है और आप विधिवत इसका गठन करना चाहते हैं तो 'नवांकुर' स्तंभ के कूपन की कटिंग लिफाफे पर पते के साथ चिपका कर संपादक से पत्र व्यवहार करें? रचनाएं भेजते समय भी कूपन का प्रयोग अनिवार्य है.

में आकाश में बिजली चमक उठी. क्षणिक रोशनी में उन पांचों ने देखा कि एक स्त्री नीम के नीचे सो रही है.

जग्गू ने घुटनों के बल धरती पर बैठकर सोई हुई युवती के माथे पर हाथ रखा और चौंककर उठ खड़ा हुआ, ''अरे यह तो बर्फ-सी ठंडी है. शायद मरी पड़ी है.''

''क्याSSS!'' सबने एक साथ जग्गू से पूछा, ''लो बेटा अच्छे झंझट में फंसे!''

''अरे एक बच्चा भी है इसके साथ, ये देखो इसके सीने से चिपका हुआ है.'' जग्गू बोला. ''अरे खूनी हो!''

''बस कह दिया और खून हो गया. गला दबाने का निशान नहीं, छुरा भोंकने का निशान नहीं, कह देने से खून हो गया.'' राका चिल्लाया, ''तुझे कैसे मालूम हुआ. जुम्मन जरा चिराग तो जला.''

चिराग की रोशनी में उस युवती का चेहरा देखकर सत्तू जोर से चिल्लाया, ''अरे यह तो पहचानी हुई औरत है. मां कसम, बेचारी, चार दिन से अस्पताल में भरती होने के लिए घूम रही थी. पर अब क्या किया जाए!'' सत्तू ने कहा.

देख जल्दी क्या वह भी मर गया है?'' छैनू ने पूछा.

''नहीं शायद सो रहा है.'' जग्गू ने कहा.

''कैसे फेर में पड़ गए हम लोग. मरने के लिए इसे और कोई जगह नहीं मिली, जो हमारे अड्डे पर आ धमकी.'' सत्तू कहने लगा.

''ये सब फालतू बातें छोड़ और बता कि अब क्या ,किया जाए. थोड़ी ही देर में पौ फटेगी. पुलिस वालों ने देख लिया तो बेड़ा पार ही समझो. कहेंगे, ये खून तुम्हीं ने किया है, तुम

''जरा दिमाग पर जोर डालो तो कोई तरकीब जरूर निकलेगी.'' इससे पहले कि कोई तरकीब सोची जाए, युवती के सीने से लगा बच्चा जोर-जोर से रोने लगा.

जग्गू ने बिना कुछ कहे बच्चे को उठाकर अपने सीने से लगा लिया. गरमाहट पाकर बच्चा चुप होकर सो गया. उसकी नींद टूट जाने के डर से पांचों के मुख से कोई शब्द नहीं निकला कुछ समय तक.

खामोशी तोड़ते हुए जग्गू गंभीर स्वर में बोला, ''शायद हमारी मां भी इसी प्रकार फुटपाथ पर तड़फ-तड़फकर मरी होगी, कौन जाने?''

''हो सकता है!'' राका ने कहा.

''जुम्मन तुझे तेरी मां याद है?'' सत्तू ने पूछा.

''देखा ही नहीं तो याद कैसे? शायद इसी तरह मरी हो, और सत्तू तेरी मां!'' जुम्मन ने पूछा.

''मुझे भी मेरी मां याद नहीं.'' सत्तू ने कहा, ''होश संभाला तो ऊपर खुला आसमान था और नीचे जुआरियों, जेबकतरों और गुंडों की टोली थी. मां कैसी होती है? मां का प्यार क्या होता है? कभी जाना ही नहीं. लोगों की गालियां सुन-सुनकर और ठोकरें खा-खाकर ही तो पेट भरा. प्यार के दो बोल के लिए हम सारी जिंदगी तरसते रहे. कभी किसी ने हमें हमारा नाम लेकर नहीं पुकारा. इस बेरहम दुनिया ने तो हमें मार ही डाला होता अगर कुछ भले लोगों ने जिन्हें यह समाज गुंडे, बदमाश कहकर बुलाता है, हमें सहारा न दिया होता. उन्हीं देवताओं के रहमोकरम पर पलकर तो हम बड़े हुए.''

छैनू कुछ नहीं बोला. आंसुओं से भीगा चेहरा घुटनों के बीच छिपाए हुए मौन बैठा था. कुछ सोचकर वह बोला, ''इस बच्चे को हम पालेंगे. आज से यह हमारी बिरादरी में रहेगा. इसे हम 'नीमा' नाम से पुकारेंगे.''

कुछ वर्षों बाद....! वे पांचों बूढ़े हो चले थे. नीमा शहर का नामी गुंडा बन गया था. उनकी बिरादरी ने उसे क्या से क्या बना दिया था.

वे पांचों नीमा के ऊपर फख्र करते थे. बड़ी शान से वे उसे अपना बेटा कहते थे. उन्हें इस बात का संतोष था कि उन्होंने अपनी जिंदगी में एक नेक काम तो किया. एक बच्चे को पाल-पोसकर जवान किया. वरना आज की दुनिया में कौन किसी के बच्चे को पालता है. अपनी बदनाम बिरादरी पर भी उन्हें नाज था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फीस और क्यू

ईश्वर दत्त वर्मा

अपनी ग्रामीण प्रैक्टिस के तीस वर्षों में से मैंने शुरू के सत्रह साल-किसी भी उस मरीज से घर पर देखने की फीस न ली जो कि उस गांव का रहने वाला होता जिसमें कि मैं प्रैक्टिस करता था. जिस गांव में मैं रहता था, उस गांव के लोगों की आत्मीयता अर्जित करने के लिए उनके प्रति अपनी घर जैसी बात बनाए रखने की भावना में इस रूप में प्रदर्शित करता था. गांव छोटे ही होते हैं, चंद कदम चल कर एक असमर्थ रोगी को उसके घर पर देखना और फीस ले लेना मुझे कुछ अन्याय-सा जंचता. मैं कई बार सोचता जो मेरे अन्नदाता हैं उनमें से 75 प्रतिशत के तन पर ऐसा कपड़ा नहीं है जिसमें कोई टांकी न लगी हुई हो. खादी या मिल के सस्ते से वस्त्र भी बड़े मैले रहते और अक्सर फटे होते. ऐसे लोगों के बीच में रहकर उन्हीं के पैसे से मैं कैसा सूटिड बूटिड रहता हूं. यह विरोधाभास मुझे हमेशा खलता कि जिन्हें मैं अपना अन्नदाता समझता हूं उनकी हालत इतनी खस्ता है और मैं जो कि उन्हीं के पैसे से अपना उदर पालन करता हूं इस कदर सजा संवरा रहता हूं.

मेरे चार्ज हल्के थे फिर भी दाता और लेता का स्तर समान न था...कुछ इस किस्म के अहसास के तहत भी मैं अपने हैडक्वार्टर वाले गांव में किसी से फीस न लेता था.

कई बार जब मुझे रात को जगाकर लोग अपने घर ले जाते, मुझे उस समय कोई चुहल सूझती जब मरीज की जान को कोई खतरा न होता, "बूचे! इसी लिए मुझे घर बुला लाए हो बेटा, कि मेरी कोई फीस नहीं है."

बूचे ने तब उत्तर दिया, "क्या हुआ डाक्टर जी! तुम मुझे जब चाहे, आधी रात को जगाकर और चार घड़ी भार सिर पर लदवाकर बीस कोस भेज देना, भगवान कसम, कोई फीस न लूंगा!"

बात बूचे की ही ठीक थी फिर भी मुझे फीस लगानी पड़ी, न चाहते हुए भी क्योंकि मेरे लिए अपने प्राणों और अपने समय की रक्षा करना कठिन हो गया. एक-एक दिन में आठ दस बार दूसरों के घरों पर जाकर मरीज देखने की औसत ने मुझे थका दिया. रंज इस बात का न था कि मुझे लोगों के घर पर जाकर 'फ्री विजिट' देनी पड़ती थी, गम इस बात का था कि वे सब मरीज ऐसे न होते थे कि मेरे क्लीनिक में आ सकना उनके बस का ही न हो. परिणाम यह कि मुझे चिकित्सा संबंधी पुस्तकें तब देखने का अवकाश न मिलता, मनोरंजन के लिए समय निकालने का तो प्रश्न ही क्या था.

मैं अपने गांव में फीस न लेता था, इसका फायदा भी गरीब लोग कम ही उठा पाते थे. वह अपने मरीज को जैसे-तैसे लादकर या घसीटकर मेरे क्लीनिक में ही ले आते. ठीक मालूम होने पर भी कि मैं अपने गांव में फीस नहीं लेता जैसे उन्हें विश्वास न होता कि जो रिआयत गांव के संपन्न और बड़े आदमियों को प्राप्त है वह भी उसके हकदार हैं.

मैं अपने गांव में फीस न लेता था, इसका फायदा भी गरीब लोग कम ही उठा पाते थे. वह अपने मरीज को जस तस लादकर या घसीट कर मेरे क्लीनिक में ही ले आते. ठीक मालूम होने पर भी कि मैं अपने गांव में फीस नहीं लेता जैसे उन्हें विश्वास न होता कि जो रिआयत गांव के संपन्न और बड़े आदमियों को प्राप्त है वह भी उसके हकदार हैं. फीस न लेकर मैं कुलीन और संभ्रांत घरानों की कुरीतियों का भी अनजाने में, पोषक बन रहा था.बनियों-राजपूतों की औरतें काफी सख्त पर्दा करती थीं, उच्च मुस्लिम घरानों की औरतें भी बिना बुर्कें घर से बाहर न निकलती थीं. पर्दे वाले घरों के मामूली से मामूली मरीजों को भी मुझे उनके घर जाकर ही देखना पड़ता क्योंकि उन घरों की औरतें सारा बाजार गुजर कर मेरे क्लीनिक आने में शरमाती थीं और संकोच करती थीं.

फिर भी विजिट सबसे ज्यादा तब अखरती जब मेरी डिस्पेंसरी मरीजों से ऊपर तले हो रही हो और उनमें से कई मरीज सीरियस हों. मेरी डिस्पेंसरी में काफी मरीज थे जब लाला हरभजन लाल आये, कहने लगे, "डाक्टर साहब. तन घर चलिए, बहू की तबीयत खराब है."

मेरे पास कई रोगी सीरियस थे, मैंने नम्रतापूर्वक लालाजी से कहा, "मैं थोड़ी देर बाद आ जाऊंगा, इस समय बड़ा रश हो रहा है."

लालाजी की त्यौरियां चढ़ गयीं, मुंह को कड़वा-सा बना कर बोले, "मेरी बहू चाहे इतनी देर में मर जाए!"

मैंने कलम वहीं रख दी, लालाजी के साथ हो लिया. उनके घर पहुंचकर देखा बहू रोटियां बना रही है. आ तो मैं चुका ही था, मैंने कहा, "आइये बीबीजी. आप की नब्ज देख लूं." नम्रता से चिरौरी-सी करती हुई वह बोली, "जरा देर के लिए चारपाई पर बैठ जाइए डाक्टर साहब, दो ही रोटी का आटा रह रहा है."

दो रोटी बन लीं. बीबीजी ने हाथ धोए, मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी नब्ज देखी और पर्चा लिखा. हरभजन लाल मेरे साथ ही साथ चल दिए. मेरे क्लीनिक के सामने पहुंचकर वह आगे की तरफ बढ़ते हुए बोले, "दवाई मुन्ना ले जाएगा, मुझे जरा दिल्ली काम है."

मैंने बाजार से तभी एक प्लेट लिखवा कर क्लीनिक की दीवार पर टांग दी जिस पर लिखा था—

'रोगी को फर्रुखनगर में घर पर देखने की फीस : पांच रुपये.' दो एक दिन गांव में हलचल रही कि डाक्टर बदल गया है, लोभी हो गया है, फिर सब ठीक हो गया. लाला लोगों की और मुसलमान घरों की कुलीन महिलाएं क्लीनिक में आने लगीं. लाला चंद्रभान का अपने हर मरीज को दिन में दो बार, सवेरे और शाम घर पर दिखलाने का आग्रह भी समाप्त हो गया.

सवेरे जब मैं उनके घर फ्री-विजिट कर आता था और मरीज की हालत बहुत अच्छी होती थी तब भी शाम के समय वह मुझे दोबारा लेने आते थे कि घर चलकर उनके मरीज को फिर से देख लूं. मैं कहता, "क्या कोई नयी बात हो गयी है, चंद्रभान जी. सवेरे तो देखा ही था. सुरेंद्र का बुखार तो उतर गया है." कहा करते थे, "सुरेंद्र की हालत तो बिल्कुल ठीक है डाक्टर साहब. फिर भी, एक बार शाम को चलकर देख जरूर लीजिए, हमें तसल्ली हो जायेगी."

लाला चंद्रभान का सम्मिलित परिवार है. पचीसों सदस्य हैं, हारी दुखारी लगी ही रहती है, मेरी सुबह शाम उनके घर की परिक्रमा उसी रोज समाप्त हो गयी जिस दिन फीस की प्लेट मैंने क्लीनिक की दीवार पर टांगी. फिर उन्हें केवल तसल्ली के लिए, कभी भी अपने मरीज को दिखाने के लिए मुझे घर ले जाने की आवश्यकता न पड़ी. कभी कोई आने में बिल्कुल ही असमर्थ रोगी हुआ तो वह मुझे घर पर लिवा गये वर्ना छोटी मोटी तकलीफ में उनके घर के सभी सदस्य मेरे क्लीनिक आने लगे.

कुलीन और संभ्रांत घरों के सदस्य मेरे क्लीनिक में आने तो लगे पर इससे एक नयी समस्या पैदा हुई. रश में ऐसे लोग अपने आपको सदा प्रेफरेंस का हकदार तसव्वुर करते.

देहात के बड़े आदमी अपने आपको तभी सम्मानित समझते जब क्लीनिक में उनके घुसते ही, सबको छोड़ सबसे पहले उनका काम किया जाता. मेरे, "चौधरी साहब, तशरीफ रखिए!" कहते ही वह मेरे से चौधरियों जैसे उचित सम्मान और तदनुकूल प्रेफ्रेंस की अपेक्षा करते. छोटे बड़ों का एक ही क्यू उन्हें समझ न आता था. उन्हें अपनी, और अपने बच्चों की जान सबसे कीमती नजर आती. वह अपने रोगी को ही सदैव सीरियस समझते और चाहते कि सबसे पहले उसे देख लिया जाए.

उन्हें केवल अपने ही रोगी का दर्द, दर्द महसूस होता परंतु मुझे किसी खास व्यक्ति को तरजीह देना बड़ा अनुचित लगता. डाक्टर तो किसी कराहते और फेंट होते रोगी को ही तरजीह दे सकता है.

खेतिहर मजदूरों और फटेहाल किसानों की भीड़ में वैसे लोग सदा ही अपने लिए एक विशिष्ट व्यवहार की उम्मीद करते. लाला चंद्रभान जब मेरे हस्पताल में किसी बच्चे को लेकर आते मैं एक कुर्सी की तरफ इशारा करते हुए कहता, "तशरीफ रखिए लालाजी. बच्चे को अभी देखता हूं."

वह जबान से कुछ न कहते परंतु बच्चे को हाथों में लिए खड़े ही रहते. कुर्सी पर न बैठते. चेहरे की उलझन से साफ ही जाहिर होता कि

वह इस ख्याल में हैं कि उनका काम खड़ा-खड़ी में ही हो जाना चाहिए. मैं अपनी कुर्सी पर बैठा हुआ मरीज देख रहा होता, वह मेज के बिल्कुल सामने खड़े रहकर मेरी तबीअत पर वजन डाल रहे होते.

मेरे क्लीनिक में नियम यह है कि एक लिस्ट में, आने वाले रोगियों का क्रम लिखा जाता है और फिर उसी नंबर से मरीज देखे जाते हैं. फिर भी उनकी बेचैनी को मद्दे नजर रखते हुए और यह सोचकर कि उन्हें मेरे क्लीनिक में खड़े-खड़े काफी देर हो गयी है, और वह मेरे दो तीन बार आग्रह करने के बावजूद भी कुर्सी पर नहीं बैठे मैंने लाला चंद्रभान के लड़के को पहले ही देखकर प्रैस्क्रिप्शन दे दिया और वह दवाई लेकर चले गये तो भोमई गांव का एक जाट पीतमसिंह मेरे सामने आकर खड़ा हो गया. पूछने लगा, "लाला चंद्रभान नंबर से पहले दवाई कैसे ले गये डाक्टर साहब! हम तो घणी देर से आये बैठे हैं और चुप हैं कि नंबर पर नब्ज दिखाएंगे. लाला बिना नंबर दवाई क्यों ले गये?"

पीतम सिंह फिर बोले, "लाला लखपती आदमी हैं, मान लिया, थारा पीतम सिंह घणा गरीब सही पर थारे हस्पताल में तो दोनों बरब्बर ही होणें चाहिएं. जो तुम लाला चंद्रभान के पर्चे पर दो रुपए की दवाई लिख दोगे तो वह लखपती सही, दो के तीन नहीं देणें का और मैं घणा गरीब सही, पर जो मेरे पर्चे पर तुम दो की दवाई लिख दोगे तो दो के पौणें दो नहीं लेणें के. थारे हस्पताल में लाला चंद्रभान मेरे से बड़ा आदमी कैसे हो गया?"

पीतम सिंह की दी हुई शिक्षा मेरे लिए उस दिन के बाद बड़े काम की हो गई पर लाला चंद्रभान का भी एक पक्ष था. उनकी गेहूं, घी, दाल, मसाले की दूकान मिर्जापुर में सबसे ज्यादा चलती है. वह बड़ा खरा सामान बेचते हैं और माकूल पैसे लेते हैं. उनकी दूकान पर भी बड़ी भीड़ रहती है, मेरी पत्नी भी रसोई की जरूरत का सारा सामान लाला चंद्रभान की ही दुकान से खरीदती हैं. लाला चंद्रभान बोले, "मेरी दूकान पर चाहे पचास आदमियों की भीड़ हो. डाक्टरनी जी के दूकान पर आने की देर है. मैं सबका काम एक तरफ रखकर सबसे पहले उनका काम करता हूं. क्या मजाल है कि मेरी दूकान पर उन्हें एक मिनट भी इंतजार करनी पड़े. औरों को चाहे घंटा-घंटा खड़े-खड़े हो जाए पर डाक्टरनी जी को तो हम एक पल भी नहीं रुकने देते!"

मैंने उन्हें कह दिया कि आप मेरी पत्नी को नंबर से ही सामान दिया करें, मैं शिकवा न करूंगा, पर वह सदैव उन्हें प्रेफ्रेंस देते रहे. मैं पहले भी क्रम का कायल था और जाट पीतम सिंह के वचन सुनने के बाद तो और भी सख्ती से अपने बनाए नियम पर अमल करने लगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे-धीरे क्यू का नियम सध गया. पहले मैं लोगों का शिक्षक था और उनसे क्यू के नियम का पालन करवाता था बाद में हालत ऐसी हो गयी कि वही लोग मुझसे सख्तीपूर्वक क्यू का पालन करवाने लगे. शुरू में मैं उन्हें टस से मस न होने देने देता था, बाद में वह मुझे टस से मस न होने देने लगे. अमीर आदमी इससे पहले अपने आपको अपमानित महसूस करते जबकि मेरे बहुसंख्यक मरीजों को यह तरीका बड़ा पसंद था, इससे वह अपने आपको सम्मानित मानते थे.

अक्सर पुरुष और स्त्रियां मेरे घर पर मक्की की ककड़ियां, गन्ने का रस, फूटें, गुड़, गांडे, तोरियां, टमाटर और कितने ही खाद्य पदार्थ बतौर उपहार दे जाया करते थे. मेरे घर में हर किस्म के उन मौसमी खाद्य पदार्थों की भरमार रहा करती जो उस इलाके में उन दिनों पैदा होते. रायपुर में मेरे पास एक-एक दिन में कई-कई पेटी आम तोहफे में आ जाता जिन्हें निपटाना असंभव था. उन दिनों मैं अपने मित्र परिवारों को पत्र लिख-लिखकर आमंत्रित करता. आम और दूध ही उन दिनों हमारा मुख्य आहार बन जाते. लंगड़ा, मालदा, गोपाल भोग चौंसे और फजली आमों की पेटियों की पेटियां मैं उन दिनों अपने मित्रों के पास भिजवाता.

सामने की बेंचों पर कभी मजेदार हलचल होती. क्रम में बैठी हुई कोई स्त्री बड़ी बेचैनी महसूस करती. उसके चेहरे पर कई शिकन और कई तैवर उभरते. कभी उठती, कभी और कई तैवर उभरते. कभी उठती, कभी बैठती. तब मैं थोड़ा मजाक के मूड में आ जाता, कहता – "अम्मां! परसों ही तुम मेरे घर जो दो लौकियां दे गई थीं उनकी सब्जी बड़ी मजेदार थी. एकदम खिलती हुई-सी बोलती, "जभी तो एक घंटे से बात भी नहीं बूझ रहा."

"नहीं, अम्मां." मैं कहता, "यह जो तुम्हारे पड़ौस में जमनी बैठी है मेरे घर झोली भर के टमाटर दे गई थी." इशारा करते हुए कहता, "साथ में वह बैठे हैं सुनहरा सिंह जी, चार पांच दिन हुए उन्होंने टोकनी भर गन्ने का रस और एक ढय्या गरमा गरम गुड़ भेजा, और यह जो बैठा है भूरी पहलवान इसने तो बरसात के मौसम में जब मैं साइकल समेत एक दलदल में फंस गया तो पहले मुझे पिद्दी चढ़ा कर कीचड़ और गारे से बाहर निकाला फिर मेरी साइकल धो धा कर रास्ते पर धरी. अब क्या करूं अम्मां. तुझे सिरफ अपनी दी हुई लौकियां याद हैं और मैंने इनमें से हर एक का नमक खा रखा है."

कई मरीज जिन्हें कोई खास तकलीफ न होती और उन्हें ड्यूटी पर जाना होता या जिन्हें इतनी देर नंबर की प्रतीक्षा करना पसंद न होता उठ कर दूसरे डाक्टरों के पास चले जाते.

जो लोग मेरे क्लीनिक में से तंग होकर नाराज नजरों से खाली हाथ चले जाते थे, लगता था कभी मेरा कुछ अनिष्ट कर डालेंगे परंतु असलियत इससे बिल्कुल उलट निकलती.

एक रात मैं अपनी पत्नी को मोटर साइकल पर बिठाए और कैरियर पर लगभग पंद्रह किलो वजन लादे, दिल्ली से गांव को लौट रहा था, टीले के मोड़ पर पिछला पहिया पंक्चर हो गया. मेरी मंजिल वहां से दो मील दूर थी.

एक तो पहिया पंक्चर, फिर कैरियर पर पंद्रह किलो वजन. मैंने नयी-नयी मोटर साइकल ली थी. गलत या सही, मुझे अंदेशा था कि वजन लदे-लदे दो मील घसीटने से पिछला ट्यूब बिल्कुल ही बेकार हो जाएगा. मेरी पत्नी और मैं दोनों ही कुछ सताया-सा चेहरा लिए मोटर साइकल के पिछले पहिये में चुभा हुआ कील तलाश कर रहे थे.

पीछे देखा-सड़क पर दो व्यक्ति चले आ रहे हैं. पास आये तो पहचाना, दो तरुण हैं. 18-19 साल के. उनमें से एक लड़का ऐसा था जो पांच सात रोज पहले मेरे क्लीनिक में से कुछ खफा-सा हो कर बिना दवाई लिए उठ गया था. उसे जल्दी थी और मेरे क्लीनिक में वही नंबर का शिकंजा. मुझे याद था... वह कुछ उद्विग्न हो

देवता की हंसी

रमाकांत

उसे ईश्वर पर विश्वास नहीं था और बच्ची ईश्वर को जानती तक नहीं थी. सुबह-शाम बच्ची को लेकर टहलने निकलता तो एक मंदिर के सामने से गुजरना पड़ता.

मंदिर के विशाल कपाट खुले रहते. बाहर से ही शंख-चक्र, गदा, कमर में खोंसी बांसुरी सहित कृष्ण की कांतिवान तेजोमय प्रतिमा आकर्षित करती. बच्ची उसे देख कर मुदित भी होती, भयभीत भी, "मूर्ति के हाथ में क्या है, उससे वे क्या करते हैं..." वह पूछती, और वह संस्कार में मिले धर्म ज्ञान से उसके प्रश्नों का समाधान करता.

पुजारी की नजरों से यह छिपा न रहा.

एक दिन उसने कहा, "आप भीतर क्यों नहीं आते?"

वह पुजारी से धर्म, आस्तिकता आदि की निस्सारता पर बहस नहीं करना चाहता था, इसलिए भीतर चला गया. पुजारी ने बच्ची को पेड़े का प्रसाद दिया.

वह मुफ्त में कुछ नहीं चाहता, यह सोच जेब में हाथ डाला. कोई छोटा सिक्का नहीं मिला, अतः एक रुपया दे कर मन ही मन भुनभुनाता हुआ बाहर आ गया.

उस दिन उसे व्यापार में फायदे का समाचार मिला.

इसका मंदिर में चढ़ाये रुपये से क्या संबंध? वह मेहनत से काम करता है तो फायदा होना ही है...उसने अपने आप को विश्वास दिलाया.

उस दिन कोई त्योहार था और देवता की मूर्ति खूब सजायी गयी थी. उधर से गुजरते हुए बच्ची उसे देख कर मुग्ध हो उठी. उसने भीतर चलने की जिद की. पुजारी ने उसे फिर प्रसाद दिया. उसके पास आज भी छोटा सिक्का नहीं था अतः वह एक रुपया देकर उसी दिन की तरह भुनभुनाता वापस आ गया.

इसे संयोग ही कहा जायेगा कि उस दिन उसकी दो साल से रुकी हुई रकम मिल गयी. उसके मन में अब भी कोई भक्ति-भाव जागृत नहीं हुआ. वह अपने विश्वासों का पक्का था. किंतु बच्ची को बहलाने का क्रम जारी रहा. पुजारी के बुलाने या बच्ची के जिद पर कभी-कभी भीतर जाता और प्रसाद के बदले कुछ चढ़ावा देकर वापस आ जाता. पर अब चढ़ावे ने कोई चमत्कार नहीं दिखाया. उल्टे व्यापार में उसे कुछ घाटा होने लगा. इसका कारण वह समझता था. उसने कुछ ऊलजलूल धंधों में रुपये लगा दिये थे जिनका उसे कोई ज्ञान नहीं था. वह चिंतित रहने लगा. लेकिन बच्ची को इसका ज्ञान नहीं. उसे तो टहलाने ले ही जाना था. जाता तो मंदिर के सामने से गुजरना पड़ता. वह चाहे या नहीं, बच्ची तो वहां रुकना ही चाहेगी, यह सोचकर वह खुद बखुद रुक जाता. फिर भीतर जाता और प्रसाद के बदले कुछ चढ़ावा देकर बाहर आ जाता. एक दिन वह पूछ बैठा, महाराज, अगला श्रृंगार कब होगा?

पुजारी ने दिन बताया.

ठीक है, उसने पुजारी की ओर दस का नोट बढ़ाते हुए कहा, उस दिन मेरी ओर से विशेष प्रसाद चढ़ेगा. लेकिन यह गुप्त दान है. किसी को मालूम न हो.

समझता हूं श्रीमान! पुजारी ने कहा. आप जैसे दानवीर नाम के भूखे नहीं होते. आप बेफिक्र रहिये. वह आश्वस्त हो गया, पर तभी उसने महसूस किया, देवता उसकी ओर उपहास मुद्रा में देखता, हंस रहा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर निकला था, नाराजगी का प्रदर्शन करता हुआ.

पास आया, पूछने लगा, "क्या हुआ डाक्टर साहब?"

"मोटर साइकल पंक्चर हो गई है भाई." मैंने कुछ उपेक्षा से उत्तर दिया.

बोला, "तो चलो गांव ले चलते हैं. हम दो हैं, एक आगे से थामेगा, दूसरा पीछे से धकेलेगा, झट्ट पहुंचा देंगे."

"वजन भी तो है पीछे पंद्रह किलो."

"क्या हुआ फिर, हम में से एक वजन को सिर पर धर लेगा, दूसरा मोटर साइकल ले चलेगा."

एक ने सिर पर वजन रखा, दूसरे ने मोटर साइकल ली. दोनों जवान लड़के. हम लोग कुछ दूर तो साथ साथ चले, फिर पिछड़ने लगे. हमें उन दोनों का पीछा पकड़ना भारी हो गया.

घर पर पहुंचे तो दोनों युवक हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे. मैंने देखा दोनों पसीने से तर हो रहे हैं. मैंने मजीद और सलीमुद्दीन के प्रति अपना आभार प्रदर्शित किया. लापरवाही-सा दिखाते हुए बोले, "यह भी कोई काम है बेद जी! हम किस लायक हैं."

ट्रांजिस्टर खोला, 'हवा महल' शुरू होने में अभी देर थी. अगली सुबह साबिर के घर खबर भेजी, उसके पास भी मोटर साइकल है. उसने घर पर आकर मेरी मोटर साइकल का पिछला पहिया खोला और उसे अपनी मोटर साइकल पर रखकर दिल्ली ले गया. वापसी में वहां से पंक्चर लगवाकर मेरा पहिया उठा लाया. मेरे घर आकर मेरी मोटर साइकल में पहिया फिट कर दिया.

यह वही लोग थे—मेरे क्लीनिक में जिन्हें घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी और जाहिरा तौर पर मुझ से खीझे से रहते थे, बावजूद इसके मेरे साथ उनका व्यवहार अतिशय मधुर और सम्मान पूर्ण था.

एकाध बार इससे उलट तजर्बा हुआ. नंबर के कारण मुझे गालियां खानी पड़ीं और हालात बिगड़ते से दिखायी दिए.

लाला चंद्रभान जिनके परिवार की मैंने बरसों बिना फीस यात्राएं की थीं, मेरे फीस चार्ज करने को मानसिक स्तर पर स्वीकार न कर पाए थे और मुझसे क्षुब्ध थे. जिन मरीजों को वह अपने घर पर बिना फीस दिखलाने के अभ्यस्त थे उन्हें मेरे क्लीनिक में लाने तो लगे पर क्लीनिक में अपने नंबर की इंतजार करना उन्हें सख्त नागवार गुजरता. कहां तो पहले डाक्टर उनके घर पर मुफ्त हाजरी दिया करता था और कहां यह कि क्लीनिक में भी उनका नंबर और प्रतीक्षा.यह झटका बर्दाश्त होता भी कैसे.

नंबर तोड़कर उन्होंने अपने बच्चे को पहले देखने की जिद की. मैंने नंबर की प्रतीक्षा में बैठे मरीजों की भीड़ में वैसा करने में असमर्थता प्रगट की. उन्हें बड़ा गुस्सा आया. एकदम रोष में आ गए. उन्होंने पहले मेरे क्लीनिक में ऊंचा-ऊंचा बोलकर मुझे बुरा भला कहा, बाद में मेरी दूकान के सामने ही बाजार में खड़े होकर जोर-जोर से बोलने लगे. पूरा बाजार इकट्ठा कर लिया. शोर और गालियां सुनाई देने लगीं; "डाक्टर की आंख में सूअर का बाल है, आदमी को आदमी नहीं समझता. घंटों इसके हस्पताल में खड़े-खड़े हो गए, अपने को खुदा समझ रखा है."

दो-तीन दिन तक ऐसे लगा कि जैसे हवा मेरे विरुद्ध बह रही है परंतु तीसरे दिन की शाम लाला चंद्रभान के छोटे भाई लाला चोखेलाल मेरे प्रति अतिरिक्त आदर प्रदर्शित करते हुए एक बीमार बच्चे को दिखाने के लिए मुझे अपने घर लिवा ले गये. लाला चंद्रभान अपने घर में मेरे सामने न हुए. मैंने भी उनके घर में, दो दिन पूर्व घटी उस घटना का कोई जिक्र न किया. जैसे बात कोई हुई ही न थी.

उनके घर मेरा आना यथापूर्व हो गया.

गांव अकबरपुर के याकूब हुसैन से भी इस बार इसी तरह नाचाकी हुई वह बड़े स्वस्थ व्यक्ति थे और बड़े संपन्न थे. पैसे देने में एकदम खरे और मिजाज के तेज. मेरे क्लीनिक में एक दिन उनका गुस्सा सीमा पार कर गया, बोले, "मैं तुम्हारा सारा तामझाम उठा कर बाहर फेंक दूंगा." और एक घंटे के अंदर अंदर यह गांव छुड़ा दूंगा. मैंने कलम रख दी. रोष से मेरा भी मन उद्वेलित हो उठा, मैंने कहा, "मुझे भी ऐसे गांव में रहना नहीं जहां तुम्हारे जैसे आदमी की इस कदर हकूमत चलती हो. तुम मेरा सामान बाहर फेंक दो. मैं उसे उठाकर दोबारा अंदर न रखूंगा."

क्लीनिक में बैंचों, कुर्सियों पर बैठे लोग बाग खड़े हो गए, जैसे वह याकूब हुसैन से मार पीट कर डालेंगे. धकेल कर कुछ लोगों ने याकूब हुसैन को मेरे क्लीनिक से बाहर कर दिया. वह लगभग गुर्राते हुए और ऊंच-नीच सुनाते हुए चले गये. अकारण कलह से मैं उदास हो गया, जैसे मेरा कुछ कीमती सामान खो गया हो.

दो-तीन दिन मैं बड़ा उदास रहा, दिखाई देता था जैसे याकूब भाई फिर कभी मेरे क्लीनिक में न आयेंगे.चौथे ही दिन मैंने देखा — क्लीनिक में कोने की एक कुर्सी पर उनकी बीवी सलमा अपने बच्चे को गोदी में लिए चुपचाप बैठी हैं.

सलमा का चुपचाप बिना अपने आगमन की सूचना दिए निःशब्द, क्रम में बैठ जाना मुझे चुभ-सा गया. निरीहता मुझे खलने लगी. क्रम पर मैंने याकूब हुसैन के लड़के को देखा और दवा दी. दूसरे तीसरे दिन फिर उनके घर का कोई लड़का दवा ले गया. पहले जैसे उनके छोटे से छोटे बच्चे स्वयं आकर दवाई ले जाया करते थे, उसी तरह मेरे क्लीनिक में आने और दवाई ले जाने लगे. दो तीन महीने की अनुपस्थिति के बाद याकूब हुसैन को जब स्वयं कोई तकलीफ हुई तो आया और दवा ले गया.

घटना को ऊपरी तौर से देखें तो तबीअत एकदम उखड़ जाती है, शुरू में यह नतीजा निकलता है कि लोग इतने नाराज हैं कि मुझे सख्त नापसंद करते हैं, कुछ इतने क्रुद्ध भी होते हैं कि जैसे मेरा कुछ अनिष्ट कर डालेंगे. पर जरा गहराई में जाते ही वास्तविकता बिल्कुल विपरीत-सी महसूस होती.

क्या लाला चंद्रभान और याकूब हुसैन वास्तव में नाराज हो गए थे?

नहीं. जिस व्यक्ति को सरे बाजार गालियां दी हैं, अपमान किया है, जिस आदमी की अंतरात्मा तक को उन्होंने नाराज किया है, उसी के चरित्र पर उन्हें कितना भरोसा है! कितना वह उसे अपना समझते हैं. कहीं भी उन्हें शंका नहीं. खतरनाक हालत में, जिंदगी और मौत के बीच झूलता अपना बच्चा उसके हाथों में कैसी बेफिकरी से सौंप दिया है. विश्वास का यह स्पर्श मेरे मन में कोई कलुष टिकने न दे सकता था. इतना बड़ा सत्कार, अपने प्रति इतना बड़ा सम्मान मेरे मन को पुलक से भर देता.

मैं कभी याकूब हुसैन को चिताने न गया कि उसने मेरे साथ कभी दुर्व्यवहार किया था. याकूब और मेरे बीच संबंध फिर वैसे ही हो गए जिस तरह के इस घटना से पूर्व थे. उक्त घटना को अपने संबंधों की किताब में से हम दोनों ने चुपचाप एक क्षेपक की तरह निकाल बाहर किया. □

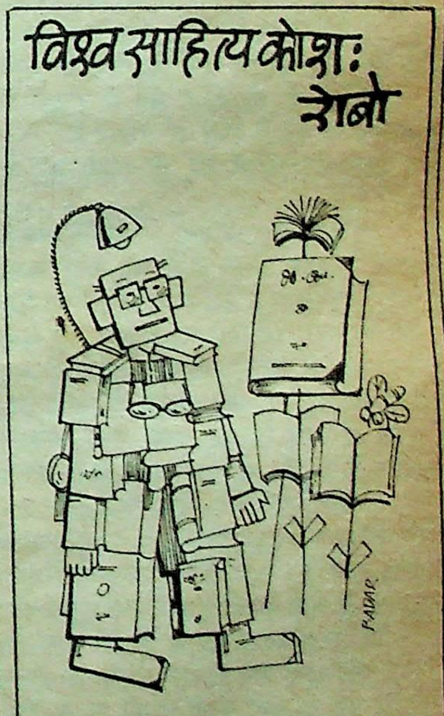

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

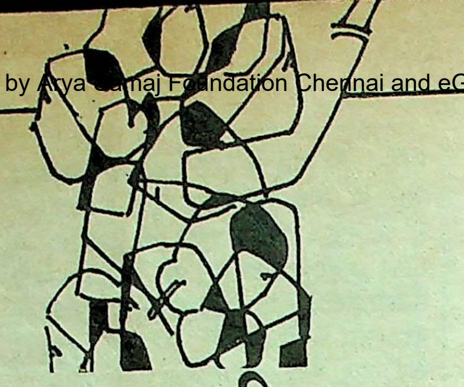

नन्दी

हिमानी शिवपुरी

मैं जल्दी-जल्दी चल रही थी कि अचानक एक बूढ़ी औरत मेरे सामने रुकी. उसने फटा-पुराना सलवार कमीज़ पहना हुआ था जिसका रंग पहले क्या रहा होगा यह पता करना मुश्किल था. इतनी बार धुल जो चुका था.

"अरे बेबी तू है!" उसने अपनी फटी चुन्नी से आंख पोछते हुए कहा.

"नंदी", मैं चिल्लायी, "मामचंद कैसा है?" बस मेरा ये पूछना था कि वह शुरू हो गयी.

"अरे बेबी मामचंद तो परके साल ही मर गया. चला तो उससे जावे न था, ओपरेशन के बाद आंख से भी दिक्खे न था. बस अब मैं ही बची हूं यहां. कौन राजकुमार? अरे उस हरामी की तो पूछ ही मत बेबी. बड़ा लड़ता तो था ही न्यारा, यो भी गया मेरे हाथ से. पर बेबी, हमें तो किसी की जरूरत ना है, सुरू से अपने इन हाथ्थों से कमाया खाया. अरे अपनी गुजर लायक तो कमा ही लूं. मुझे चाहिए ही क्या, दो रोट्टी, बस. बेबी, तुम तो चले गये यहां से छोड़के, तो बस अब दो तीन कोठियां हैं, वहां काम कर लूं जाके..

"हां, बेबी दर्शन, मूरा सबसे छोटा लड़का ही है, वो ड्टी पे गया हुआ है. मैंने कही थी उससे, तुझे साब से कह के इस स्कूल में लगा दूंगी, पर बोलुला, मां इन प्रेविट इसकूलों में धरा ही क्या है. अब सरकारी जमीदारी करे है. चलो ठीक है. बड़े को तो लगवा दिया मामचंद की जिगह पे जमादारे पे."

"हां, कितने बच्चे हैं उसके?"

"अरे सात है ससुरे के बेबी. मांच लड़कियां हैं दिके और दो छोरे. मैंने ही पैदा कराये. हरामी साले वैसे तो बात नी करे थे, पर बहू की दर्दें उठी तो भागे आये मेरे पास. तब आयी ससुरों को मेरी याद. और तो और वो राजकुमार बेबी उसकी बहू के भी बेट्टा मैंने ही करवाया, बोलुला मां तेरे ही हाथ का भरोसा है."

"क्या राजकुमार की भी शादी कर दी तूने?"

"हां बेबी, तू न थी यहां. सच्ची मैंने साब से भतेरा बोलुला. साब बेबी को जरूर खबर करियो. पर साब ने बताया था कि तबीयत ठीक नहीं थी तेरी, पैसे मिल गये थे थारे. अरे बेबी किसी तरह से कहीं से उधार लेके सादी की. बहू लायी हरिद्वार से, उसे हंसली दी चांदी की, पायल दी और टिक्का दिया. शर्मा साब ने मशीन दे दी थी. ओर टर्नर साब ने सूट दिया बहू को और कुछ रुपये. बेबी सादी होगी तब मैंने राजकुमार से कह दी देख ले, तू बहू के साथ चूल्हा अलग कर ले जो तेरी जी में आये तो. पर उस टैम तो बड़ी हेकड़ी दिखायी. मां तू मुझे बड़े भाई की तरह मत समझ मैं तो तेरे साथ ही रहूंगा. मैंने कहा भई जो तेरी खुशी. पर बेबी उसकी बहू तो बड़ी वाली से भी ज्यादा तेज निकली. मैं काम करके लौटूं तो चूल्हा ही नहीं बला हुआ. मैं तो सुबे ही चाय पीके निकल जाऊं थी काम पे. हैं बेबी, कितना कहूं थी मैं बेटे लायक हो जायेंगे तब न उठाऊंगी झाड़ू, पर किस्मत में लिक्खा था ये दिन में ससुरी रोट्टी पका के खुद खापी के पड़ जा खाट पे, कदी पेट में दरद तो कदी टांग में दरद. मैं आऊं थकी मारी और चूल्हे पर बैठ जाऊं. मैंने कुछ कह दी जरा सी तो बोलना-चालना बंद. तब तो मैंने कह दी राज कुमार से भैया अपना हिसाब किताब अलग कर लो. मैंने भतेरा कहा, तब हुआ अलग. बेबी आज तक इन्हीं हाथों से कमाई रोट्टी. बस, अपने गुज़र लायक तो हो ही जा. पर बेबी आजकल कोठियों में पहले जैसी बात नी रही. एक आप की कोठी थी और एक टर्नर साब की, दोनों छूटी तो बहोत बुरा लगा. दो ही घर तो थे मेरे बिलकुल अपने जैसे.

"अरे बेबी मैंने सुना है बाबा बड़े अफसर बन गये हैं?

"हां-हां."

"परके साल आये थे यहां बेबी. मुझे तो देखते ही पिछाण गये. रामरती बोली अरे तुझे कैसे पिछाण गये, अरे मैंने कही, क्यों नी पिछानेंगे इत्ते इत्तों सो को पाला हुआ. गू पोतड़े तो मैंने ही धो रक्खे. बेबी 50 रु. रख दिये मेरे हाथ में." नंदी ने अपनी आंखें पोंछी.

"तेरी बड़ी लड़की कैसी नंदी?"

"केला. अरे बेबी उसे गुजरे तो तीन साल हो गये."

"अर्रे उसे क्या हो गया था?"

"भूत लग गया था उसे बतावें. हमें तो उसके ससुराल वालों से बाद में खबर मिली. मामचंद गांव गया तो उसका किरया करम हो चुका था."

"तुम लोग! भूत-वूत क्या होता है?"

"पता नहीं बेबी, हमें तो कुछ ना पता चला. उसकी सास ही बता री थी कि भतेरा झड़वाया, पर केला ठीक ही नहीं हुई."

"और अब तो सुशीला भी बड़ी हो गयी होगी?"

"ले बेबी सुसीला के तो एक लड़का भी है. उसका आदमी तो गुजर गया. सा अब वो अपने देवर कने बैठगी. आप सुनाओ बेबी कितने बच्चे हैं?"

"एक ही लड़का है. बस अब और हिम्मत नहीं है नंदी."

"अरे बेबी तुम आजकल की लड़कियां, हमारे जमाने में हर एक के बारह-बारह, तेरह-तेरह से तो कम ही नहीं होवे थे."

"अच्छा अभी तो अपने बच्चों का रोना रो रही थी और मुझे और करने की सलाह कर रही है." मैं हंसते हुए उसे छेड़ रही थी कि कार के हार्न ने हमारी बातचीत का तार तोड़ा. मेरे पति देव!

कहां चली गयी थी डार्लिंग. घर पर कुछ भी नहीं बताया. उनके डार्लिंग के नोट से मैं समझ गयी कि वह अपने गुस्से को बड़ी मुश्किल से काबू में किये हुए हैं. मेरे पति का हर काम टाईम टेबल के अनुसार चलता है. इतने बजे यह उतने बजे वह. अव्यवस्था के कट्टर विरोधी. मेरी यह गैर हाजिरी प्लैन के अनुसार नहीं थी, सो उनका गुस्सा लाज़मी था.

"नमस्ते साब," नंदी बोल उठी. वह मेरे पति का अच्छी तरह से मुआयना कर चुकी थी. उसकी आंखों में प्रशंसा थी.

"ये नंदी है. हमारे यहां काम करती थी." क्या इतना-सा परिचय था उसका?

"साब, मैंने बेबी को अपने हाथों से पाला. बेबी तो स्विमिंग टैंक से निकलती ही न थी, मेमसाब मुझे भेज्जे थी इन्हें लाने...." नंदी जी शुरू हो गयी.

"गिव हर सम टिप एंड हरिअप प्लीज." मेरे पति ने कार के आगे का दरवाजा खोला.

मैंने पर्स से पचास का नोट निकाला और नंदी के हाथ में थमा दिया. "अच्छा नंदी."

"और बेबी, आपके बेटे के नाम की साड़ी भी लूंगी मैं."

"हां-हां शाम को घर आ जाना." मैंने कार में बैठते हुए कहा.

"हवाट इज़ दिस अबाउट शाम को? शाम को कुछ लोग आ रहे हैं. तुम अच्छी तरह जानती हो. यह समय विक्की की शॉपिंग के लिए था. मैंने सुबह ही बता दिया था तुम्हें, और तुम यहां इस औरत के साथ टाईम वेस्ट कर रही हो. यू आर होपलेस." गाड़ी स्टार्ट करते हुए मेरे पतिदेव बरस पड़े.

मेरे मन में आया कि कह दूं कि मेरा समय आपकी तरह कीमती नहीं, और मैं 'उस औरत' के साथ टाईम वेस्ट नहीं कर रही थी, वो मेरे बचपन का एक अभिन्न अंग है. पर मैं कुछ नहीं बोली. बस कार की खिड़की से नंदी को हाथ हिलाती रही...नंदी जो वहीं खड़ी थी नमस्कार की मुद्रा में, उसके हाथ अपने फटे दुपट्टे से आंखों को पोंछ रहे थे, अपनी चिर परिचित मुद्रा में... □

■ **369-एच, पाकेट 11, मयूर विहार, दिल्ली-92**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

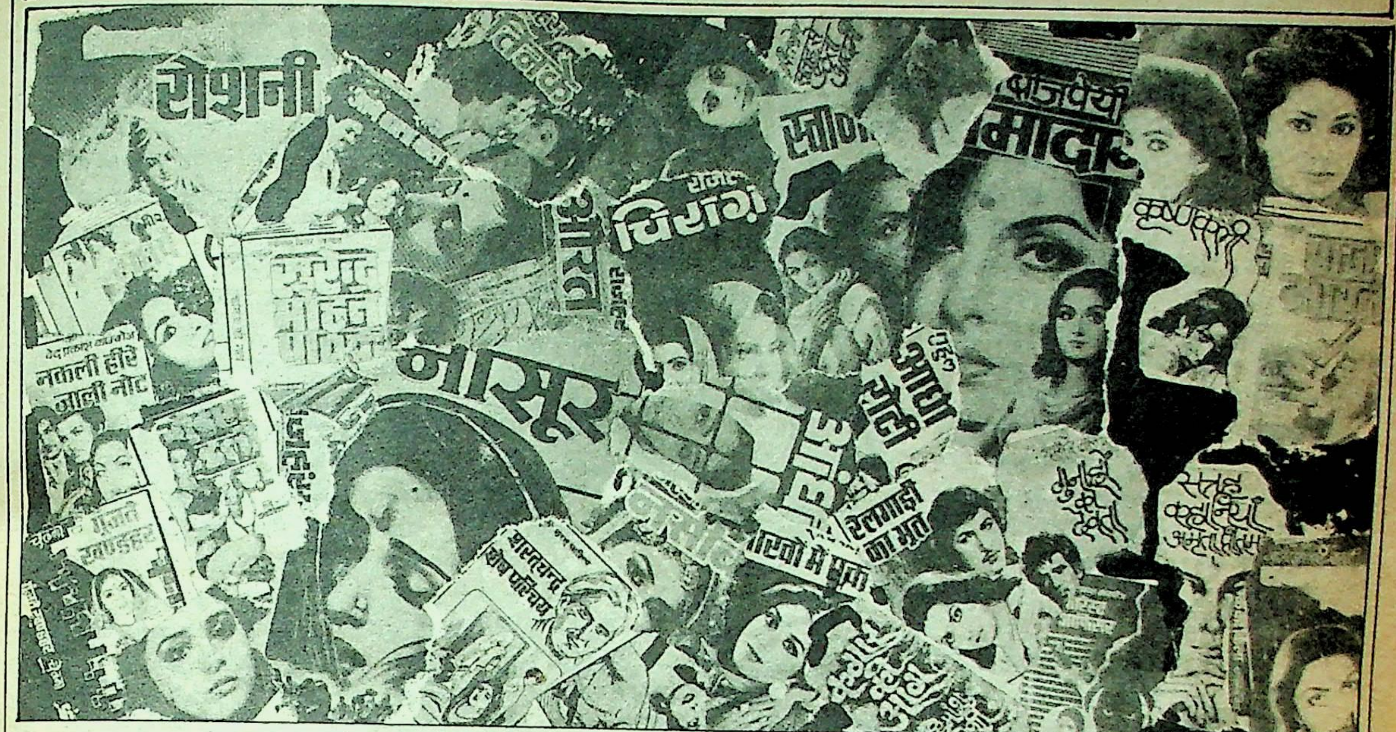

रचनात्मक लेखन और लोकप्रिय लेखन का अंतर इस बीसवीं सदी की ही देन है. वरना एक जमाना था जब चार्ल्स डिकंस, अलेक्जैंडर ड्यूमा जैसे लेखकों की पुस्तकें बहुत लोकप्रिय थीं. चद्रकांता संतति रचनात्मक स्तर पर कहां उन्नीस ठहरती है और लोकप्रियता की सीमा तो यह है कि उसे पढ़ सकने के लिए लोगों ने हिंदी सीखी थी. लोकप्रिय साहित्य की लंबी परंपरा का विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं हिंदी के कथाकार और पत्रकार मनमोहन चड्ढा

पेशेवर लेखकों के कारण ही आज साहित्य जिंदा है!

फ्रांस की नयी लहर के फिल्मकार क्लाड शबरोल ने फिल्मी फार्मूले की परिभाषा इस प्रकार दी थी, "मान लीजिये मैं फ्रांस का एक छोटा-सा गांव लेता हूं. गांव की आबादी बहुत कम है. वहां एक पैंतीस साल की औरत है, जिसके पास खूब पैसा, जमीन-जायदाद है. गांव का ही एक चालीस-पैंतालिस साल का धनी जमींदार उससे विवाह करना चाहता है, जिसे यह महिला खास पसंद नहीं करती, तभी एक और पुरुष गांव में आ जाता है और यह स्त्री उसकी ओर आकर्षित हो जाती है. दोनों पुरुषों में लड़ाई वगैरह होती है और एक उसे प्राप्त करने में सफल हो जाता है. यह एक मामूली कहानी है. भला इसमें किसी की क्या रुचि होगी? अब मैं इस कथा को हल्का-सा मोड़ दे देता हूं. तृतीय विश्वयुद्ध हो चुका है और दुनिया में केवल तीन प्राणी बच गये हैं. एक स्त्री और दो पुरुष. हर बार जब कैमरा युद्ध से क्षतविक्षत लैंडस्केप को चित्रित करता है, दर्शक का दिल दहल उठता है. अब प्रश्न है सृष्टि को बचाने का, पुनर्सजन का, मानवता की रक्षा का है. जब भी ये दो पुरुष लड़ते हैं, एक दूसरे को मारने की कोशिश करते हैं, पूरी मानवजाति का भविष्य खतरे में पड़ जाता है. यही एक हिट फिल्म का विषय है."

वृहदाकार कैनवस – यह आधुनिक बैस्ट सैलर की पहली पहचान है. इयान फ्लेमिंग द्वारा लिखे गये सभी उपन्यासों में हर बार या तो दुनिया नष्ट होने के करीब है या उस पर एक निर्दयी तानाशाह का स्वामित्व होने ही वाला है तभी जैम्स बांड इस निरीह दुनिया को बचा लेता है. सबसे ज्यादा बिकनेवाली किताबों की सूची में इन उपन्यासों का स्थान बहुत ऊपर है और 1987 में ही जेम्स बांड नाम के पात्र के फिल्मी जीवन का पच्चीसवां वर्ष धूमधाम से मनाया गया है.

हैरोल्ड रॉबिंस के उपन्यास **'बेट्सी'** में एक फोर्ड के स्तर का उद्योगपति अपनी बेटी के अठारहवें जन्म दिन पर उसे नये मॉडल की कार भेंट करना चाहता है. यानी इस समय बाजार में जो कार उपलब्ध है उससे कहीं आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की और आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित.कार का नया मॉडल उसी के कारखाने में नवीनतम, आविष्कारों की सहायता से तैयार किया जायेगा. इस नये मॉडल की कार को विकसित करने में दस वर्ष का समय लगता है. इसके बाद पहली कार एसेंबली लाइन से बाहर आती है. सात सौ पृष्ठों के इस उपन्यास में विपुल संपत्ति का मालिक होने के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं का विस्तृत वर्णन है. इस वर्ग को परिभाषित करने के लिए एक नया शब्द ईजाद किया गया है– 'स्टिंकिंग रिच'. हमारे देश में रानी जी ने अपने राजकुमार को इसी प्रकार कार का नया मॉडल और कारखाना भेंट किया था पर इस वृहद कैनवस पर यहां कोई बैस्ट सैलर नहीं लिखा गया. हैरोल्ड रॉबिन्स के एक अन्य उपन्यास में नायक 'शो बिजनेस' में है. अमेरिकन टेलीविजन के तीनों नेट वर्क उसे अपना अध्यक्ष बनाना चाहते हैं. बत्तीस वर्ष की आयु में वह अमेरिका का सबसे धनी पुरुष है और सबसे सुंदर स्त्रियों के साथ सो चुका है. उसकी हर ख्वाहिश पूरी हो चुकी है लेकिन वह बेहद दुखी और असंतुष्ट है.

रॉबर्ट लुडलम ने अपने उपन्यासों में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बच गये नाजियों को अपना विषय बनाया है, जिनके पास अकूत संपत्ति है. वे एक बार फिर एक नया हिटलर लाकर आर्यो का साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं. जब भी पाठक लुडलम का उपन्यास उठाता है, उसकी नजरों में हर बार पूरी दुनिया खतरे में पड़ जाती है और नायक अंतिम समय में उसे बचा लेता है. लुडलम के उपन्यास पांच से छह सौ पृष्ठों के होते हैं जिनका दावा है कि एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद आप उन्हें समाप्त होने से पहले नहीं छोड़ सकते.

ढाई सौ साल पहले

परंतु वृहद कैनवस की इस अवधारणा से ढाई सौ वर्ष पूर्व 'बैस्ट सैलर्स' ने अपनी पहचान बनाना शुरू कर दिया था. सन् 1709 से ही इंग्लैंड और फ्रांस में यह महसूस किया जाने लगा था कि पुस्तकें पढ़ने में रुचि रखने वाले लोगों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है. इसी समय डेनियल डिफो (1660-1731) का उपन्यास '**राबिन्सन क्रूसो**' प्रकाशित हुआ. जिसे पहला उपन्यास भी कहा जा सकता है.

सन् 1704 से 1709 तक एक नाविक अलेक्जेंडर सेल्किर्क ने एक द्वीप पर पांच वर्ष बिताये. उसी नाविक के संस्मरणों को आधार बनाकर डिफो ने '**राबिन्सन क्रूसो**' लिखा. डिफो का दूसरा उपन्यास '**मौल फलांडर्स**' सन् 1722 में प्रकाशित हुआ, उसके बाद '**द फार्चुनेट मिस्ट्रैस**' 1724 में छपा. इन उपन्यासों में ही अतिनाटकीयता के तत्व देखे जा सकते हैं. '**मौल फलांडर्स**' की नायिका बारह

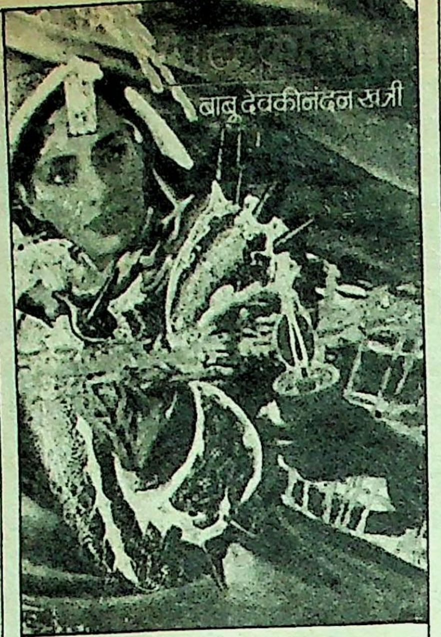

चंद्रकांता संतति का आवरण पृष्ठ

वर्ष तक वेश्या जीवन बिताती है, पांच विवाह करती है और खूब पैसा इकट्ठा करने के बाद भी गरीबी की हालत में मरती है.

डिफो के उपन्यासों के बावजूद सन् 1709 से 1830 तक इस विधा का विकास अवरुद्ध ही रहा. इन वर्षों में, जो पुस्तकें बड़ी संख्या में बिकीं उनमें अदालती कार्रवाइयों के विस्तृत वर्णन होते थे. हमारे 'रंगा-बिल्ला' या 'चार्ल्स सोभराज' की तरह उस समय 'जेम्स मैक्लिन' का मुकद्दमा बहुत चर्चा में था. इस का कारण यह था कि मैक्लिन एक संभ्रांत परिवार से था और लुटेरों के दल में शामिल हो गया था. सन् 1750 में मैक्लिन को फांसी की सजा दी गयी. तुरंत मैक्लिन के मुकद्दमे को विषय बनाकर लिखी गयी पांच पुस्तकें बाजार में आ गयीं और खूब बिकीं.

अठारहवीं शताब्दी का सर्वाधिक बिकने वाना उपन्यास सन् 1765 में प्रकाशित होरेस वालपोल द्वारा लिखित '**द कैसल ऑफ ओटरैंटो**' था इसे हम अपने '**चंद्रकांता संतति**' के समतुल्य मान सकते हैं. गोथक शैली में लिखे गये इस उपन्यास में एक क्रूर राजा, धीरोदात्त नायक और मुसीबत में फंसी नायिका है. अभेद्य किला, दुर्गम बन बौर अतिप्राकृतिक बाधाएं हैं.

धारावाहिकों की परंपरा

सन् 1830 के बाद बालजाक, अलेक्जेंडर ड्युमा और चार्ल्स डिकेंस के लेखन ने सही मायने में नये उपन्यास की विधा को जन्म दिया और संस्कारित किया. 1830 से ही मध्यवर्ग का उदय और उसकी ताकत का असर दिखाई देने लगा था और कामगार वर्ग की अलग पहचान बनने लगी थी. वर्ग चेतना का युग आरंभ हो चुका था. बालजाक के मेलोड्रामा सामाजिक यथार्थ और समाज के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की छानबीन करने लगे थे. मध्यवर्ग के लिए ये उपन्यास प्रेरणादायी थे. ये राजनीति और साहित्य के जुड़ाव के वर्ष थे. पत्रकारिता के पेशे से जुड़े लोग. राजनीति और गंभीर साहित्य से भी जुड़े थे और एक पत्रकार की आय संतोषजनक थी. सन् 1836 में दुजाक नाम के व्यवसायी ने पेरिस से 'ल प्रैस' नाम का अखबार प्रचलित अखबारों से आधी कीमत पर बेचना शुरू किया और इस घाटे को विज्ञापन छापकर पूरा किया गया. सन् 1837 से 1847 तक बालजाक निरंतर इस अखबार के लिए उपन्यास देते रहे. दूसरे प्रतिस्पर्धी अखबार '**सीसेल**' ने अलेक्जेंडर ड्यूमा का '**थ्री मस्केटियर्स**' छापना शुरू किया. तीसरे अखबार में युगेन सू का '**मिस्ट्री डी पेरिस**' नाम का धारावाहिक छपता था. युगेन सू को सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक माना जाना था.

जब '**कान्स्टीच्यूशनल**' नामक समाचार पत्र ने युगेन सू को उसके अगले उपन्यास '**जैफ एवेंट**' के लिए एक लाख फ्रेंक दिये तो यह एक मानक राशि बन गयी. परंतु एलेक्जेंडर ड्यूमा की दो लाख फ्रेंक प्रतिवर्ष की आय उच्चतम मानी जाती थी. इसके अलावा ड्यूमा के नाम से प्रकाशित दो लाख बीस हजार पंक्तियों के प्रतिवर्ष 63,000 फ्रेंक दो अन्य अखबारों से मिलते थे. यानी ड्यूमा के नाम से लिखे गये अलग-अलग उपन्यास तीन अखबारों में धारावाहिक छपते थे. जल्दी ही यह सिद्ध हो गया कि इतना अधिक लिखना किसी भी लेखक के लिए संभव नहीं था. यह बात अदालत में स्वीकारी गयी कि ड्यूमा अगर दिन-रात अनवरत लिखता रहे तब भी इतना लिख पाना संभव नहीं है, जितना कि उसके नाम से छपता है. पता लगा कि एक नये व्यवसाय 'घोस्ट राइटिंग' का जन्म हो चुका था. और एक समय में ड्यूमा के लिए तिहत्तर लेखक अपना योगदान दे रहे थे. बल्कि एक लेखक 'अगस्त माकेट' तो स्वतंत्र रूप से लिखते थे और उनका उपन्यास ड्यूमा के नाम से छपता था. यानी साहित्यिक कर्म का रूपातरण व्यवसाय से हो चुका था जहां एक कारखाने में उत्पादन होता था और माल की निर्धारित कीमत मिलती थी.

चपलता और अतिनाटकीयता, बनते-बिगड़ते प्रेम संबंध, विवाहोत्तर प्रेम प्रसंग, हिंसा और क्रूरता के हरमों का दिल दहलाने वाला वर्णन, कहीं भी किसी पात्र का गायब हो जाना और कभी भी नये पात्रों का आ टपकना, घटनाओं का अंतहीन सिलसिला और कहानी के अप्रत्याशित मोड़ इन सबकी शुरुआत इन उपन्यासों में हो चुकी थी. ड्यूमा ने धारावाहिक की इस कला में सिद्धहस्तता प्राप्त कर ली थी. प्रत्येक किस्त के अंत में पाठक को एक ऐसी खूंटी पर टांग देने की प्रक्रिया भी आरंभ हो गयी थी जहां वह अगले अंक के आने तक लटका रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सके. फलतः दुजाक के अखबार **'सीसेल'** के ग्राहकों की संख्या दस वर्षों में सत्तर हजार से बढ़कर सन् 1846 में दो लाख तक पहुंच गयी थी. धारावाहिक उपन्यास ने साहित्य के जनतंत्रीकरण द्वारा, जैसे समाज के सभी वर्गों को एक ही स्तर पर उतार दिया. कभी भी किसी कला ने पूरे समाज को सांस्कृतिक स्तर पर इस तरह एक साथ अपनी गिरफ्त में नहीं लिया था.

साहित्यिक उपभोक्तावाद

इसी धारावाहिक उपन्यास के प्रकाशन के माध्यम से इंग्लैंड में चार्ल्स डिकेंस, इसी समयावधि में उच्चकोटि के लेखन द्वारा अपनी धाक जमा रहे थे. डिकेंस को सही मायने में इस साहित्यिक उपभोक्तावाद से होनेवाले हानि-लाभ का प्रतिनिधि लेखक माना जा सकता है. दिन-प्रतिदिन अपने पाठकों से प्रत्यक्षीकरण के कारण वे लोकप्रियता की कला की गहराई को समझ गये थे. लोगों से सहानुभूति, असीम सुरक्षा का भाव और बहुत बड़े फलक पर अपने उपन्यास को आधारित कारने का कौशल और शब्दों के सहज प्रवाह ने डिकेंस को अपने युग का अत्यंत लोकप्रिय और महानतम लेखक बना दिया था. लोकप्रिय तो एलेक्जेंडर ड्यूमा और यूगेन सू भी थे परंतु डिकेंस की महानता की तुलना शेक्सपियर से की जाती है. डिकेंस की लोकप्रियता, पात्रों की गहराई तक छूने, सहज हास्य और भावों पर उसकी पकड़ के कारण भी. पहली बार, अच्छे-खासे बुद्धिजीवी माने जानेवाले पाठक यह स्वीकार करने लगे थे कि डिकेंस के उपन्यासों को पढ़ते समय आंखों में आंसू भर आना स्वाभाविक है.

डिकेंस की सफलता **'पिकविक पेपर्स'** से शुरू हुई, जिसकी पंद्रहवीं किस्त के बाद चालीस हजार अतिरिक्त प्रतियां छपने लगीं. **'ग्रेट एक्सपेक्टेशंस'**, **'अवर म्युचुअल फ्रैंड'** और **'डेविड कापरफील्ड'** जैसे उपन्यासों से यह भी आभास मिलता था कि डिकेंस केवल सफल उपन्यासकार कहलाकर ही संतुष्ट नहीं हैं, वे समाज सुधारक का दर्जा हासिल करना चाहते हैं. इसी समय डिकेंस ने अपनी दो पत्रिकाएं आरंभ कर दीं. साप्ताहिक **'हाउस होल्ड वर्ड्स'** का प्रकाशन 1849 में शुरू हुआ. और उसके दस साल बाद **'ऑल द इयर राउंड'** निकलने लगा.

इन सामाजिक उपन्यासों के समानांतर एक दूसरी औपन्यासिक विधा भी जन्म ले रही थी. इसे विकसित रूप देने में डिकेंस का भी योगदान रहा. सन् 1860 में उन्होंने धारावाहिक के रूप में **'हाउस होल्ड वर्ड्स'** पत्रिका में विल्की कॉलिन्स का उपन्यास **'द वोमेन इन व्हाइट'** छापा. इससे पहले कॉलिन्स का **'मून स्टोन'** उपन्यास छप चुका था. **'मून स्टोन'** को टी.एस. इलिएट ने पहला, सबसे लंबा और सर्वोत्तम अंग्रेजी डिटेक्टिव उपन्यास कहा है. भावनात्मक दूरी बनाये रखकर, कर्तव्यभाव से अपराधी की खोज में लगा डिटेक्टिव इन उपन्यासों के पाठकों को सामाजिक उपन्यासों के किसी भी नाटकीय नायक से अधिक आकर्षक लगता है. उस समय डिटेक्टिव थ्रिलर की इस विधा में केवल दो लेखक सिद्धहस्त थे. एडगर एलन पो और विल्की कॉलिन्स. सन् 1845 से 1875 तक इन्हीं दोनों के लिखे उपन्यास छपते रहे. 1875 में शरलॉक होम्स के **'ए स्टडी इन स्कारलेट'** ने इस विधा को नया आभास दिया. सामाजिक उपन्यासों की असावधान भाषा और बहुत अधिक लिख मारने की प्रवृत्ति के विपरीत इन उपन्यासों की भाषा एक खास किस्म का तीखापन लिये थी. सन् 1850 में लिखी गयी पो की कहानी **'पिट एंड द पेंडुलम'** का नमूना देखिये -- **''मैंने काले चोगे में घिरे उन जजों के होंठों को देखा. वे मुझे उस कागज से भी ज्यादा सफेद लगे, जिस पर मैं लिख रहा हूं. हद दर्जे के पतले, भिंचे हुए, मानवीय पीड़ा से पूर्णतया निर्लिप्त. उन्होंने चबाते हुए मेरे नाम का एक-एक अक्षर उच्चारित किया. मैं कांप गया. उस आवाज का विरोध असंभव था.''** बीसवीं सदी में इस विधा में लिखने वालों में प्रमुख डैशहिल हैमिट और रेमेंड शैंडलर की भाषा का तीखापन बेमिसाल है.

फ्रांस और इंग्लैंड के इकहरे समाज से अलग अमेरिका में बहुजातीय और विविध स्तरीय समाज विकसित हो रहा था. इस समाज की मान्यताएं आकांक्षाएं और आदर्श इंग्लैंड के समाज से बिल्कुल भिन्न थे. सन् 1885 से लेकर 1987 तक वे बैस्ट सैलर्स, अमेरिकी ही हैं. सन् 1914 के बाद तो अमेरिकी संस्कृति के विस्तार ने जैसे पूरे संसार को अपना उपनिवेश बना लिया. सन 1854 में **'मारिया कमिंग्स'** नाम की लेखिका का उपन्यास **'लैंप लाइटर'** छपा जिसकी पहले आठ सप्ताहों में ही चालीस हजार प्रतियां बिक गयीं. **'द चिल्ड्रन ऑफ एब्बी'** नामक उपन्यास की छपते ही पिचहत्तर हजार प्रतियां बिकीं. 1852 में ही हैरियट बीचर स्टोव का लिखा **'अंकल टाम्स कैबिन'** (टाम काका की कुटिया) प्रकाशित हुआ. इसे अमेरिका के निग्रो जीवन का चित्रण करने वाला पहला उपन्यास माना जाता है. इस उपन्यास की लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि प्रकाशक के छापाखाने में छह महीने तक दिन-रात यही उपन्यास छपता रहा.

डिकन्स की पुस्तक निकोलस निकलबी

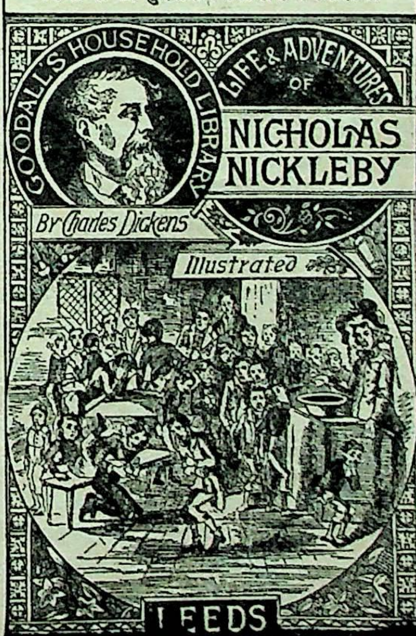

अमेरिका के इस वातावरण में जहां अभिजात्य विक्टोरियन मूल्यों को लादने का सशक्त अभियान चल रहा था, टी.एस. आर्थर जैसा नैतिकतावादी उपन्यासकार सफल हो सकता था. आर्थर का जन्म सन् 1809 में न्यूयार्क में हुआ था. सन् 1852 में उस ने आर्थर होम मैगजीन की स्थापना की और इस 'घरेलू विषयों पर लिखनेवाले' अमेरिकी, सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार के उपन्यास इस पत्रिका में छपने लगे. आर्थर का स्वयं को विज्ञापित करने का तरीका भी नया था. पाठकों को बताया जाता था कि **''यह संसार हमेशा टी.एस. आर्थर जैसे लेखकों का ऋणी रहेगा. उन्हें सच्चे मायनों में दुनिया का पहला समाज सुधारक कहा जा सकता है, क्योंकि उन्होंने केवल लोगों का भला करने के लिए ही कलम उठायी है, उनकी कृतियां पाठक को सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक स्तर पर सुधारती हैं.''** आर्थर के एक उपन्यास **'भटकी हुई न्यूयार्क की कहानी'** की नायिका समाज के सबसे निचले तबके से है परंतु अपने सच्चे और अच्छे व्यवहार के कारण, वह इस पाप से भरी दुनिया में भी उच्चतम सामाजिक स्तर प्राप्त करती है. **'शराब घर में दस रातें'** और **'मां तथा पत्नी'** आर्थर के सबसे प्रसिद्ध उपन्यास हैं.

सन् 1885 तक लोकप्रिय उपन्यासों के संस्करण डेढ़ लाख से साढ़े चार लाख प्रतियों के छपने लगे थे. ज्यादातर पत्रिकाएं, जो प्रत्येक अंक में पूरा उपन्यास छापती थीं, एक पैनी में बिकती थीं. **'फैमिली हैरल्ड सप्लीमैंट'** का प्रत्येक अंक दो लाख बत्तीस हजार का, **'पैनी इलस्ट्रेटेड पेपर'** दो लाख और **'वीकली बजट'** का अंक साढे तीन लाख प्रतियों का होता था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सदी का सर्वाधिक बिकने वाला उपन्यास **'गॉन विद द विंड'** है. सन् 1936 में प्रकाशित होने के बाद इसकी पक्की जिल्द में दो करोड़ प्रतियां बिक चुकी हैं और हर वर्ष दस लाख प्रतियां छपती आ रही हैं. पेपर बैक संस्करणों में छपनेवाली प्रतियों की संख्या कहीं अधिक है. इसकी लेखिका मार्गरेट मिचेल (1900-1949) ने इस उपन्यास से पहले या बाद में कुछ खास नहीं लिखा. उपन्यास अमेरिका के गृहयुद्ध की पृष्ठभूमि पर है और लेखिका के अनुसार यह सन् 1852 में प्रकाशित डेरियट बीचर स्टोव के उपन्यास **'अंकल टाम्स केबिन'** का जवाब है. इन दोनों उपन्यासों का इतिहास इस बात की गवाही भी देता है कि इस तरह पढ़ने में रूचि रखनेवाले समाज में पुस्तकें आंदोलनों का रूप ले लेती हैं. सन् 1852 में प्रकाशित **'अंकल टाम्स केबिन'** के काले लोगों की दासता के उन्मूलन के लिए चलने वाले आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी. सन् 1760 से 1890 तक काले स्वतंत्रता के लिए जी जान से लड़े थे. **'गॉन विद द विंड'** विरोधी प्रवृत्तियों कु कलक्स क्लान की मनोवृति को उजागर करती है. यह संस्था 1871 में उभरी थी और इसका काम काले विद्रोहियों का सफाया करना और उन्हें गुलाम बनाये रखने वाली ताकतों का समर्थन करना था. यह सन् 1880 ले लेकर प्रथम विश्व युद्ध तक गोरों द्वारा उठाये गये कष्टों की शौर्यगाथा है.

दस प्रतिशत सच के उपन्यास

अमेरिका के इतिहास में गोरों ने दो जातियों को कुचलने का काम किया है-एक तो अमेरिका के मूल निवासी 'रैड इंडियन्स' को और दूसरा अफ्रीकी कालों को. रैड इंडियन जाति का तो उन्होंने सर्वनाश ही कर दिया और कालों को वर्षों तक गुलाम बनाये रखा. रैड इंडियन्स से युद्ध की शौर्य गाथाओं के उपन्यास भी करोड़ों की संख्या में बिकते रहे हैं. जिन्हें 'वेस्टर्न' जेनर के उपन्यास कहा जाता है. इसमें लोकप्रिय लेखक हैं जेन ग्रे, अर्नेस्ट हेकाक्स, मैक्स ब्रेंड, लुई ल' अमोर, और जे.टी. एडसन आदि. इन उपन्यासों पर आधारित 'वेस्टर्न' फिल्में बनाकर ही हालीवुड दुनिया का सबसे बड़ा फिल्मोद्योग बना है. लेकिन यह बात भी स्वीकारी जाती है कि इन उपन्यासों में दस प्रतिशत सच और नब्बे प्रतिशत कल्पना है.

हिंदी में जो लोकप्रिय उपन्यास लिखे जाते हैं उनमें भारत के स्वतंत्रता संग्राम और सशस्त्र क्रांतिकारियों पर वेदप्रकाश, ओमप्रकाश, परशुराम आदि शर्माओं ने दर्जनों, मोटे-मोटे काल्पनिक उपन्यास लिख

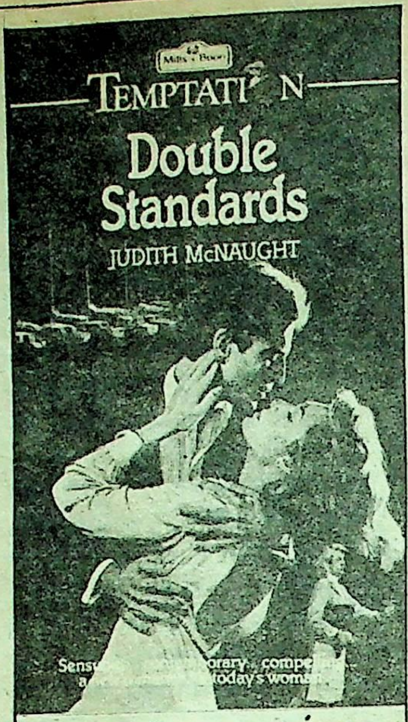

मिल्स एंड बून के एक उपन्यास का आवरण

डाले हैं. वेद प्रकाश शर्मा ने अपने तीन धारावाहिक उपन्यासों **'वतन की कसम'**, **'खून दो आजादी लो'** और **'बिच्छू'** में स्वतंत्रता संग्राम की ऐसी-तैसी की है और एक घटिया से गैंग का संबंध सीधे नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने जोड़ दिया है. वेदप्रकाश शर्मा की भाषा खासी लचर है. परंतु ये उपन्यास कई सवाल जरूर उठाते हैं—जैसे कि इन उपन्यासों का तिरस्कार करके क्या हम सही काम कर रहे हैं? एक बहुत बड़े वर्ग की छपे हुए शब्द के प्रति इस जबरदस्त भूख का अनादर करना कहां उचित है? साफ जाहिर है कि लोग स्वतंत्रता संग्राम के बारे में पढ़ना चाहते हैं और उन्हें लगातार गलत सूचनाएं दी जा रही हैं **'बिच्छू'** को जब मैंने किराये पर लिया तो उससे पहले अठ्ठाइस बार वह किताब जा चुकी थी. दिल्ली की एक छोटी सी बस्ती के एक मामूली दूकानदार के पास से यदि इस एक उपन्यास को पचास लोग किराया देकर पढ़ते हैं तो आसानी से हिसाब लगाया जा सकता है कि इन उपन्यासों के पाठक लाखों में हैं और ये लाखों लोग किताबें पढ़ना चाहते हैं और हम उन्हें रोचक तथा कम दाम की पुस्तकें उपलब्ध नहीं करा पा रहे हैं. उस दूकानदार को आप साहित्य-संस्कृति का पाठ नहीं पढ़ा सकते जो चार रुपये की किताबें खरीदकर पच्चीस रुपये कमाता है.

हमारे यहां रोमांटिक कहे जाने वाले लोकप्रिय उपन्यासों की भी परंपरा रही है. कुशवाहा कांत, प्यारेलाल आवारा और आदिल रशीद के उपन्यासों को प्रेम प्रधान उपन्यास कहा जा सकता है. अवसर पाकर ये यौन प्रसंगों के विवरण देना भी नहीं भूलते थे. इनके बाद की पीढ़ी के लेखक प्रेम वाजपेयी, साधना प्रतापी, गोविंद सिह और रानू इनसे काफी कमजोर थे. सन् सत्तर के बाद इस क्षेत्र में ट्रेड मार्का लेखकों और अपने नाम से लिखने वालों की संख्या में काफी वृद्धि हुई. परंतु इस पूरी भीड़ में गुलशन नंदा के नाम को कभी भी दर किनार नहीं किया जा सकेगा. गुलशन नंदा की विशेषता यह रही है कि फिल्मवालों ने उनके उपन्यासों का अनुसरण किया. जब कि इस कौम के बाकी उपन्यासकार फिल्मों के प्रचलित कथानकों से हमेशा दो कदम पीछे ही चलते रहे. फिल्मी दुनिया के 'सलीम-जावेद' की नकल पर इन उपन्यासों में भी 'राकेश-धरम' जैसी जोड़ियां चल निकली हैं. यह जोड़ी भी बीस उपन्यास लिख चुकी है.

इस तरह के एक लेखक 'राजहंस' ने बहुत कोशिश की कि एक आध फिल्म उनके उपन्यास पर भी बन जायें. पूरी कोशिशों के बावजूद फिल्म पूरी नहीं हो सकी. यह श्रेय तो केवल गुलशन नंदा को ही मिला है कि बंबइया फिल्मी दुनिया के यश चोपड़ा और शक्ति सामंत जैसे बड़े निर्देशकों ने उनके उपन्यासों को आधार बनाया और उनके लिखे चरित्रों को उस समय के चोटी के अभिनेताओं ने पर्दे पर सजीव किया. गुलशन नंदा की ही एक पुस्तक **'झील के उस पार'** को अब तक की सर्वाधिक पांच लाख प्रतियों के पहले संस्करण का गौरव प्राप्त है. 1949 में पहली बार छपा धर्मवीर भारती का उपन्यास **'गुनाहों का देवता'** भी अत्यंत लोकप्रिय रहा. उसके अब तक बीस संस्करण निकल चुके हैं. प्रेम कथाओं की लोकप्रिय लेखिकाओं में शिवानी और अमृता-प्रीतम को भी बहुत ऊंची जगह मिली है.

पाठिकाओं की सहेली लेखिकाएं

परंतु पश्चिम की कथा लेखिकाओं का किस्सा अजीबोगरीब है. रोमांटिक उपन्यासों के केवल एक प्रकाशक 'मिल्स एंड बून' के उपन्यासों की पच्चीस करोड़ प्रतियां प्रतिवर्ष बिकती हैं. 'मिल्स एंड बून' द्वारा प्रकाशित उपन्यासों में सांचे में ढली एक प्रेम कथा होती है. नायिका, कुंवारी और उन्नीस-बीस वर्ष की आयु की होती है और कई तरह की समस्याओं से घिरी हुई. मां-बाप मर चुके हैं या सुदूर कहीं हैं. दोस्त बहुत कम या बिल्कुल नहीं. वह कहीं भी टाइपिस्ट, क्लर्की आदि की छोटी-मोटी नौकरी करती है. इस पूरे वातावरण का विस्तृत ब्यौरा नहीं दिया जाता सिर्फ उल्लेख होता है. इस कारण जब नायक से भेंट होती है तो ज्यादा बाधाएं खड़ी नहीं होतीं, समाज एक ओर हो जाता है. नायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्सर नायिका से उम्र में आठ-दस साल बड़ा होता है. समाज में और अपने व्यवसाय में बेहद सफल परंतु अपने व्यक्तिगत जीवन में टूटा हुआ और निराश. उसे एक सहारा चाहिए. नायिका उसे स्वीकार करती है और शारीरिक संबंधों को उस सीमा तक जाने देती है, जहां तक हिंदी फिल्मों में स्वीकृत है. उपन्यास का बड़ा भाग एक दूसरे की प्रशंसा आलोचना, आरोप-प्रत्यारोप से भरा होता है. एक दिन परेशान होकर नायिका उड़न छू हो जाती है. और नायक बहुत प्रयत्न के बाद उसे खोज निकालता है. अंतिम वाक्य अक्सर यही होता है, **"आओ प्रिये तुम्हारी मां को सूचित कर दें."** या **"धीरज रखो प्रियतम, मैं इस निधि का समपर्ण उसी रात को करना चाहती हूं."** इस कथा में कुछ भी नया नहीं है परंतु 'मिल्स एंड बून' की पुस्तकें फ्रांस से जापान तक और अमेरिका से आस्ट्रेलिया तक अपनी पठिकाओं के पास एक साथ पहुंचती हैं. इनके भारतीय संस्करण भी प्रकाशित होते हैं.

क्योंकि ये उपन्यास पाठिकाओं के लिए ही हैं, पुरुष इन्हें बहुत कम पढ़ते हैं. 'मिल्स एंड बून' के अधिकांश उपन्यास महिला लेखिकाओं के ही हैं. प्रत्येक उपन्यास में लेखिका का परिचय भी छापा जाता है. जैसे -- **"डेनियली ने 'सुपर गर्ल' लिखना तब शुरू किया जब मंदी के कारण वह कंपनी बंद हो गयी, जहां वह काम करती थी. डेनियली, कैलिफोर्निया चली गयी, जहां मौसम खुशगवार है, लोग भले हैं और लिखने के लिए वह उपयुक्त स्थान है."**

'पैन मैरिक' उपन्यास की लेखिका सूसन हौवच का परिचय है. – **"वह अपने माता-पिता की अकेली संतान थी, उसके पिता द्वितीय विश्वयुद्ध में मारे गये. बरसों एक वकील के दफ्तर में नोटिंग का काम करके वह उब गयी और उसने उपन्यास लिखने का निर्णय लिया."**

'फैमिली अफेयर्स' की लेखिका कैथविन गास्किन ने, **"एक अमेरिकी से विवाह कर लिया और दस वर्ष तक न्यूयार्क में रही...."**

पाप बढ़ गया है!

ईश्वर को धन्यवाद कि स्वतंत्र स्कूल और छापेखाने नहीं हैं... क्योंकि पुस्तकें पढ़ने से आज्ञापालन के अभाव की स्थिति उत्पन्न हुई है. और पाप बहुत बढ़ गया है और छापाखाना इस प्रवृत्ति में तेजी से वृद्धि कर रहा है. प्रभु हमें इन दोनों से बचाओ.

सर विलियम बर्कले, वर्जीनिया का गवर्नर

मृत्यु-सन् 1677

गॉन विद द विंड पर बनी फिल्म की प्रमुख भूमिका में विवियन ले

यानी लेखिकाएं भी अपनी पाठिकाओं से भिन्न नहीं हैं. वे एक सहेली की तरह हैं, जो जीवन जी चुकी हैं और पाठिका को इस जीवन में आने वाली कठिनाइयों (फर्म का डूब जाना, पिता की मृत्यु, काम से भयंकर बोरियत) और खुशियों (अच्छा पति, सुस्थिर जीवन) के प्रति अपने लेखन के द्वारा परिचित करा देना चाहती हैं.

भारतीय सुपरमैन

सन् 1965 से 1975 तक हिंदी में गुरुदत्त नाम के एक लेखक ने लोकप्रिय साहित्य में अपना भयंकर दबदबा बना लिया था. गुरुदत्त ने अपना पहला उपन्यास 43 वर्ष की आयु में लिखा था, उसके बाद उन्होंने सौ से अधिक उपन्यास लिखे. दुर्घटनाएं यहां तक घटी कि कॉलेजों के प्राध्यापकों ने गुरुदत्त की प्रशंसा में पुस्तकें लिखी और उनके उपन्यास पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़ाये जाने लगे. गुरुदत्त के उपन्यास **'जमाना बदल गया'** (दस भाग) का नायक कहीं भी घट रही घटनाओं को देख सकता है. उपन्यास आधुनिक युग की कथा कह रहा है. कोई पौराणिक आख्यान नहीं. परंतु नायक किसी की भी सोच को पढ़ सकता है, उसके भीतर घुसकर उसके सोचने की प्रक्रिया बदल देता है, बल्कि एक बार तो मुर्दे में घुसकर उसे जिंदा कर देता है. इसी प्रकार रघुवीर शरण मित्र का उपन्यास **'आग और पानी'** मेरठ विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्वीकृत हो गया था, जिसमें चाणक्य मंत्र बल से हंडिया में पड़े गोबर को, पूरी सेना के लिए भोजन में बदल देता है. इन पुस्तकों का पाठ्यक्रम में स्वीकृत होना यही दर्शाता है कि दोहरे मूल्य और पाखंड हर जगह हावी हैं. कोई भी पुस्तक जो कुछ खास प्रकाशकों द्वारा बहुत मंहगे दामों पर छापी जाती है, श्रेष्ठ मान ली जाती है. मजा यह है कि गुरुदत्त भी पैसा कमाने के लिए नहीं लिखते, हिंदु पुनरुत्थान के लिए शाशवत साहित्य की रचना करते हैं.

दरअसल हमारे यहां छपे हुए शब्द को पढ़कर ज्ञान अर्जित करने वाले लोग या मनोरंजन पाने वाले लोग इतनी सीमित संख्या में हैं कि लेखक नाम का जीव 'हिंदी का सेवक' ही कहला सकता है. एक लेखक को भी पैसा चाहिए यह सोचना ही इतना घृणित कर्म है, जैसे कहें कि एक सन्यासी ने धन संग्रह हेतु ईश्वर सेवा का व्रत लिया है, इस व्रती, सन्यासी, तापस्वी, साधक की छवि को बनाये रखने का काम बड़े स्तर पर जारी है. इस छवि को पोसने में ही पुस्तक प्रकाशकों और अखबारों के मालिकों के स्वार्थ निहित हैं.

इस स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए क्या किया जा सकता है? साक्षरता में वृद्धि, पुस्तकालयों का जाल, सस्ती किताबें उपलब्ध कराना आदि सभी प्रस्ताव बहुत घिस गये हैं. छपे हुए शब्द को यानी छपे हुए उपन्यासों, कहानियों और वैज्ञानिक-सामाजिक जानकारियों को प्रसार देने के लिए और बिरादरी बाहर कर दी गयी अस्सी प्रतिशत जनसंख्या को भी इस अनुभव में शामिल कर लेने के लिए एक ऐसी तकनीक का सहारा लिया जा सकता है जिसे छपे हुए शब्द का शत्रु समझा जा रहा है. ऑडियो टेप तथा वीडियो टेप, दोनों ही छपे शब्द को विस्तार देने के माध्यम हैं. ऑडियो टेप (ध्वनि-चुंबकीय टेप) पर यदि हम प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों तथा अन्य लेखकों की उत्तम कृतियों को हूबहू उतारें तो वे उन लोगों तक पहुंच सकेंगी जिन्हें हम निरक्षर कहकर अपमानित करते हैं.

हमें एक खास तरह की किताबों में सिकुड़ते जाने की बजाय, विस्तार देने और हर तरह के ज्ञान के द्वार खोलने का रास्ता अपनाना होगा. जो समाज विविध प्रकार की कथाओं से उत्साह और उर्जा नहीं पाता उसका जड़ और निष्क्रिय हो जाना स्वाभाविक ही है. □

यदि सब पढ़ सकें

"मेरे पिता को मानव मस्तिष्क की तर्कशक्ति पर अदम्य विश्वास था. उनका कहना था कि सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, यदि पूरी जनसंख्या को पढ़ना सिखा दिया जाये. यदि विविध प्रकार के विचार उन तक शब्दों और लेखन द्वारा पहुंच सकें और इस प्रकार वे अपने विचारों के अनुसार अपने प्रतिनिधियों को चुन सकें.

—आत्मकथा, जॉन स्टुअर्ट मिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंदे आदमियों को भी भूख लगती है.

लिलियन हैलमेन

केवल पांच उपन्यास लिखकर महान जासूसी उपन्यासकारों में अपना नाम लिखवाने वाले डेशिल हैमेट की अपनी जिंदगी भी संघर्ष से भरी रही है. उनकी सैंतीस साला जिंदगी का काफी हिस्सा अमरीकी जेलों में बीता. उनकी पत्नी लिलियन हैलमेन, स्वयं भी जानी मानी नाटककार हैं. प्रस्तुत हैं उन्हीं के संस्मरण.

सैमुअल डैशिल हैमेट का जन्म 27 मई 1894 को मेरीलैंड में हुआ था उसने मुझे एक घटना बतायी थी. तब वह चौदह साल का था और बाल्टीमोर की रेल कंपनी में नौकरी पर लगा था.सप्ताह भर तक वह प्रत्येक दिन देर से नौकरी पर पहुंचता रहा. आठवें दिन मालिक ने कहा कि उसे निकाल दिया गया है. हैमेट ने यह सुनकर स्वीकृति में सिर हिलाया और बाहर की ओर चल पड़ा. उस आदमी ने असमंजस में उसे आवाज दी और कहा, "अगर तुम मुझे वचन दो कि आगे से ऐसा नहीं होगा तो तुम नौकरी कर सकते हो." हैमेट ने कहा, "धन्यवाद, पर मैं वचन नहीं दे सकता."

थोड़ी देर चुप रहने के बाद उस आदमी ने कहा, "ठीक है, फिर भी नौकरी तो करते रहो." डैश का कहना था कि उसे नहीं पता कि उसके किस गुण के कारण उसे रख लिया गया था. पर उसे यह पता था कि वह इसी तरह से बात कर सकता है.

अपनी पहली भेंट के कुछ दिन बाद हम ब्राउन डर्बी में खाना खा रहे थे. तभी एक रैड इंडियन हमारे पास आकर बैठ गया. उसने कहा, "मेरे दादा को पुलिस ने मार दिया है..."

"तुम्हें कितने पैसे चाहिए?" हैमेट ने पूछा.

"मैं तुमसे दान नहीं चाहता. मुझे मालूम है कि तुमने हत्या के अपराध में एक रैड इंडियन को गिरफ्तार किया था." हैमेट ने अपना बटुआ मेज पर रख दिया, "इसे ले जाओ, पर मुझे यह मत बताओ कि तुम मेरे बारे में क्या सोचते हो." रैड इंडियन ने बटुआ खोला और बीस-बीस डालर के पांच नोट निकाल लिये, "मैं इन्हें दान नहीं, कर्ज के रूप में ले रहा हूं. तुम बहुतों से भले हो, पर तुमने...."

"...हत्या के अपराध में एक रैड इंडियन को पकड़ा था. ठीक." हैमेट ने तंग आकर कहा.

रैड इंडियन ने कहा, "इसलिए मेरे लिए असंभव है कि..."

"ठीक है भई—" हैमेट ने कहा, "किसी दिन मुझे डाक से भेज देना."

रैड इंडियन उठा. उसने झुककर मेरा हाथ चूमा और चला गया.

मुझे वह स्वाभिमानी आदमी लगा. मैंने कहा, "कितना गर्व है इसे अपनी कौम पर."

हैमेट ने बताया, "नहीं, ये एक नीग्रो हैं, जो रैड इंडियन का भेस बनाकर घूमता है. यह एक घटिया और गंदा आदमी है.

मैंने पूछा, "फिर तुमने इसे पैसे क्यों दिये?"

"क्योंकि घटिया और गंदे आदमियों को भी भूख लगती है." डैश ने जवाब दिया.

सन् 1942 में रूस से युद्ध की जो खबरें आ रही थीं, वे बहुत बुरी थीं. परंतु पूरा अमेरिका रूसियों के साहस पर हैरान था क्योंकि उनके सामने पिछले तीस वर्षों से रूसी लोगों की छवि 'एक सोच-समझ न सकने वाली गुलाम जाति' के रूप में प्रस्तुत की गयी थी. इस युद्ध में रूस और अमेरिका एक ओर थे. पर जब रूसियों ने हिटलर की जर्मन फौजों को हराया और 1944 में रूसी, जर्मनी की ओर बढ़ने लगे तो अमेरिका घबरा गया. जो रूस जर्मनी तक आ सकता था, वह इच्छा होने पर और आगे आकर पूरे यूरोप पर अधिकार कर सकता था. इसके बाद जब चीन में क्रांति हुई, तब एक और देश के कम्युनिज्म की गिरफ्त में आ जाने से, पूंजीवादी समाजों के लोग बहुत चिंतित थे, बल्कि उन्हें लग रहा था कि कहीं वे भी इस सबके लिए जिम्मेदार हैं. उन्हें लगा कि वाकई अगर हम कुछ कर सकते तो इस दुर्घटना को रोका जा सकता था. लेकिन यह 'अगर कुछ' क्या था, इसे कभी समझा नहीं जा सका.

लोगों में फैले इस व्यापक भय का फायदा कुछ घटिया राजनीतिज्ञों ने उठाया. और मैकार्थी गुट (सांसदों, नौकरशाहों और सी.आई.ए. की संयुक्त मुहिम) बहुत ताकतवर हो गया.

इस समय हर उस व्यक्ति को संदेह से देखा जाने लगा, जो कभी भी समाजवादी सिद्धांतों से

डेशिल हैमेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावित रहा था या कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य रहा था. मुझे नहीं लगता कि हैमेट कभी पार्टी का नियमित सदस्य था. परंतु हम दोनों पर सन् 1952 में मैकार्थी कमेटी ने रूस के साथ सद्भावना रखने का आरोप लगाया. उनके तरीके में यह शामिल था कि वे आपसे उन लोगों के नाम पूछते थे जो सन् तीस से पचास तक आपकी मित्र मंडली में थे या जिन्हें आप समाजवादी विचारधारा से प्रभावित मानते हैं. तभी एक दुखद घटना घटी कि क्लिफोर्ड औडेट्स ('अवेक एंड सिंग' और 'गोल्डन बॉय' जैसे नाटकों का लेखक, जिसे पक्का मार्क्सवादी माना जाता था.) ने मैकार्थी कमेटी के समक्ष माफी मांग ली और कई नाम बताये, जिन पर उसे समाजवादी होने का संदेह था. जब डैशिल हैमेट को बुलाया गया तो उसने कुछ भी बताने से इंकार कर दिया और उसे एक वर्ष की जेल की सजा हो गयी. मुझे ब्लैक लिस्टेड कर दिया गया और काम मिलना बिल्कुल बंद हो गया.

एक वर्ष बाद जिस दिन हैमेट जेल से बाहर आया. वह दुबला-पतला आदमी बेहद कमजोर लग रहा था. उसके बाद उसकी तबीयत संभली नहीं. वह अंतिम समय तक बहुत अकेला और बीमार रहा.

जब भी मैंने उसे कहा कि तुम अपने जेल के दिनों के बारे में कुछ बताना चाहते हो तो उसने गुस्से में इतना ही कहा, "मेरे जिंदा बचे रहने के लिए जरूरी है कि मैं उस समय के बारे में बात न करूं."

और उसने कभी बात नहीं की. अंतिम दिनों में वह धैर्य, साहस और अभिमान की प्रतिमूर्ति बन गया था. दुख सहना एक निजी समस्या थी, जिसमें वह किसी का दखल नहीं चाहता था.

वर्ष की अंतिम रात्रि को मैंने उसे मार्टिनी का एक ग्लास लेने के लिए कहा, "इससे तुम्हें राहत मिलेगी."

"नहीं." वह बोला, "मुझे नहीं चाहिए."

मैंने कहा, "तुमने कभी सोचा भी नहीं होगा कि मैं तुमसे शराब पीने का अनुरोध करूंगी."

वह पहली बार उस दिन खुलकर हंसा, "नहीं, और मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं शराब के लिए मना करूंगा."

जब मैं पहली बार उससे मिली थी तो मेरी उम्र चौबीस की थी और उसकी छत्तीस की, और वह पांच दिन से शराब पर था. हम दोनों में टी.एस. इलियट पर बहस शुरू हो गयी थी. मुझे याद नहीं कि उसने या मैंने क्या कहा था. बस इतना याद है कि रात एक बजे शुरू हुई बहस सुबह तक चलती रही थी.

मुझे इस संस्मरणों को लिखते समय भी लग रहा है कि ये दर्द जब-तब उठते ही रहेंगे. मैं अभी इतनी बूढ़ी नहीं हुई हूं कि अतीत के बारे में सोचती रहूं. मैं हमेशा 'सच क्या है' और 'समझ क्या है' इन्हीं दो चीजों में उलझी रही और आज भी मुझे इनके बारे में कुछ पता नहीं है. □

लेखक की पत्नी होने से कठिन काम कोई नहीं है!

शीला हेली

लोकप्रिय लेखक आर्थर हेली की पत्नी शीला हेली ने 1978 में अपने संस्मरणों पर आधारित पुस्तक 'आई मैरिड ए बैस्ट सैलर' लिखी. इसी पुस्तक से लिये गये एक लेखक की पत्नी के जीवन के कुछ कड़वे-मीठे प्रसंग.

जब 1976 में आर्थर हेली और मैंने, अपने विवाहित जीवन की पच्चीसवीं वर्षगांठ मनायी तो हमने चार अलग-अलग भोज दिये. अपने घर बहामा में एक सौ साठ लोगों के लिए रात्रि-भोज तथा सामूहिक नृत्य. नापा घाटी में जहां हम बहामा से पहले रहते थे सौ लोगों का भोजन. कनाड़ा में पचास लोगों के लिए रात्रि भोज और नृत्य और न्यूजीलैंड में दस परिवारों के भोजन का लघु आयोजन, ठीक विवाह के दिन. तब एक मित्र ने कहा था, "शीला, कुछ ज्यादा ही उत्सव हो रहे हैं."

मुझे यह सुनकर खुशी हुई थी. आजकल जोड़े ही बहुत कम मिलते हैं जिन्होंने 25 वर्ष साथ बिताये हों और फिर एक लेखक के साथ पच्चीस वर्ष विवाहित जीवन बिताना केवल दुष्कर नहीं असंभव काम है.

हमारा विवाह जुलाई 1951 में हुआ था. हम तो दोनों समिति द्वारा प्रकाशित की जाने वाली पत्रिका 'बस एंड ट्रक ट्रांसपोर्ट' में काम करते थे. हम दोनों का वेतन कुल मिलाकर हमारे गुजारे के लिए काफी था. मुझे घर को सजाने-संवारने का बहुत शौक था और हमने कई चीजें किस्तों पर खरीद कर जमा कर ली थीं. मुझे याद है कि एक शाम हम फिल्म देखना चाहते थे और हमारे पास पैसे नहीं थे. हमने पूरा घर छान मारा पर इतने सिक्के नहीं मिले कि फिल्म के टिकट खरीदे जा सकते. तब हमने दूध की खाली बोतलें, अखबार की रद्दी एकत्रित की और उन्हें रास्ते में बेचा. जब हम फिल्म देखने हॉल में बैठे तो हम दोनों ही प्रसन्नता से चहक रहे थे.

सन् 1955 में एक बार आर्थर वैंकूवर से टोरंटो आ रहा था. उसने सोचा कि यदि अचानक दोनों चालकों की तबीयत खराब हो जाये तो क्या होगा? यह कैसे संभव है? उसी समय जहाज में भोजन दिया जा रहा था और उसे प्रश्न का उत्तर मिल गया. बासी भोजन के कारण ऐसा संभव है. लेकि डॉक्टर तो होगा ही हवाई जहाज पर?

सवालों और जवाबों से उलझते हुए उसने पूरी कहानी तैयार कर ली.

जब वह घर पहुंचा तो उत्साह से उछल रहा था. उसने मुझे कहानी विस्तार से सुनायी और मुझे भी अपने उत्साह में शामिल कर लिया.

एक वर्ष बाद अप्रैल 1956 में पहली बार आर्थर हेली द्वारा लिखित नाटक '**फ्लाइट इन टु डेंजर**' कनाड़ा के टेलीविजन केंद्र से प्रकाशित हुआ. नाटक इतना पसंद किया गया कि दो माह बाद ही अमेरिकी कंपनी एन.बी.सी. ने इसे प्रसारित किया. अमेरिकी शो बिजनिस की सबसे बड़ी पत्रिका '**वेरायटी**' ने नाटक की समीक्षा का शीर्षक दिया था '**हेलीस कॉमेट**'. कुछ ही माह बाद बी.बी.सी. ने इसे प्रसारित किया. बी.बी.सी पर आधारित होने के बाद एक प्रकाशक ने लिखा कि वह इस नाटक पर आधारित उपन्यास प्रकाशित करना चाहता है. परंतु इस बीच आर्थर कई नाटक लिख चुका था जो टेलीविजन पर आ रहे थे इसलिए उसने मना कर दिया. प्रकाशक ने फिर पत्र लिखा और प्रस्ताव किया कि एक लेखक भी इस रूपांतरण में सहायता करेगा. इस तरह पहला उपन्यास '**द पास वर्ड इज़ करेज**' प्रकाशित हुआ. आर्थर का दूसरा उपन्यास '**द फाइनल डायग्नोसिस**' भी उसके पहले लिखे टेलीविजन नाटक '**नो डैडली मैडिसिन**' पर आधारित था. '**इन हाई प्लेसेस**' उपन्यास 1962 में प्रकाशित हुआ और इसका अनुवाद बारह भाषाओं में छापा. तदुपरांत हर तीसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष आर्थर का एक उपन्यास आने लगा. **'होटल'** 1965 में, **'एयरपोर्ट'** 1968 **'ह्वील्स'** 1971 और **'द मनी चेंजेर्स'** 1975 में छपा. उसका नया उपन्यास **'ओवर लोड'** 1979 में छपेगा.

मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकती हूं कि लेखक की पत्नी होने से अधिक कठिन काम कोई नहीं है. आर्थर को हमेशा यही लगता रहा कि उसका गृहस्थ जीवन सफल नहीं हो सकेगा. मुझसे मिलने से पहले उसका एक तलाक हो चुका था. इसलिए जब हमारी पहली बच्ची हुई तो मैं इस बात पर खयाल रखती थी कि बच्ची कम से कम सामने आ पाये. जब दूसरा बच्चा हुआ तो आर्थर अपने उपन्यास के लिए सूचनाएं जुटाने की यात्रा का था, परंतु तीसरे बच्चे के समय वह डिलीवरी रूम में था. चेहरे को आधा ढके, रबर के दस्ताने और सफेद गाउन पहने. संसार में प्रवेश करते उस बच्चे का सिर उसने खुद अपने हाथों से थामा था. बाद में उसने मुझे कहा, "शीला, बच्चे का जन्म लेना तो कविता की तरह है..."

मैंने गुस्सा दबाते हुए कहा था, "मैं जानती हूं.... तुम्हें शायद याद हो मैंने तीन बच्चों को जन्म दिया है."

'फाइनल डायग्नोसिस' में उसने एक पिता के सशक्त पात्र की रचना की थी. एक सात माह में जन्मा, साढ़े तीन पौंड का कम विकसित बच्चा. इन्क्यवेटर में लेटा है. उपन्यास का अंश इस प्रकार है, **"पहली बार इस विचार ने उसे घेर लिया कि यह मेरा पुत्र है, मेरा अपना, मेरे जीवन का एक अंश. उसके मन में उस कमजोर से, जीवन और मृत्यु के संघर्ष में उलझे निरीह जीव के प्रति प्रेम उमड आया. वह चिल्लाकर कहना चाहता था, "बेटे, तुम अकेले नहीं हो, मैं यहां हूं.ये मेरे हाथ हैं. इन्हें तुम ले लो. मैं अपने फेफड़े तुम्हें देना चाहता हूं ताकि तुम सांस ले सको. लेकिन अपना संघर्ष जारी रखो, हारना नहीं पुत्र, इससे आगे जीवन में जीने के लिए बहुत कुछ है जिसे हम साथ-साथ जियेंगे. मुझे सुनो और महसूस करो. मैं तुम्हारा पिता हूं जो तुम्हें बहुत चाहता हूं."**

इन पंक्तियों को पढ़ने के बाद मैंने आर्थर से कहा था, "तुम स्वयं अपने जीवन में ऐसे क्यों नहीं हो." और आर्थर ने बात मजाक में टालते हुए कहा था, "क्या तुम चाहती हो कि अपनी श्रेष्ठ पंक्तियां मैं रोजमर्रा की घरेलू बातचीत में नष्ट कर दूं?

इस तरह के जीवन में चार साल से कम उसके तीन बच्चों को शांत रखना कठिन काम था. सुबह आठ बजे आर्थर लिखने बैठ जाता था. उसका कहना था कि साढ़े दस बजे उसके कमरे में कॉफी पहुंचा दी जाये. एक दिन जब मैं कॉफी तैयार कर रही थी, बच्चों को स्नानघर में एक नया आइडिया सूझ गया. दो वर्ष के स्टीफन ने जब नल खोलने के बाद अपनी कमीज उतारकर फेंकी तो वह पानी पर तैरती और चक्कर काटती हुई, पानी बाहर ले जाने वाली नाली में फंस गयी. तीनों बच्चे उत्साह से अपने कपड़े पानी में तैराने लगे नाली बंद हो गयी और जल्दी ही पानी रसोई तक पहुंच गया. जब तक मैं पहुंचती, तीन कमीजें और दो जांघिये नाली में फंस चुके थे. मैंने बच्चों को बाहर भगाया और नाली में से कपड़े बाहर निकालने की कोशिश करने लगी. ठीक दस चालीस पर आर्थर प्रकट हुआ, "मैं सोच रहा था कि मेरे लिए कॉफी आज आयेगी या नहीं," मेरा मन हुआ कि इस आदमी को भी नाली की ओर बहा दियाजाये और तीन-चार बाल्टी पानी डाल दिया जाये.

जब भी उपन्यास की प्रचार यात्राओं पर हम विदेश जाते हैं. आर्थर से एक सवाल अवश्य पूछा जाता है, "हमें यह बताइये कि इतने लोकप्रिय उपन्यास लिखे कैसे जाते हैं." मेरे खयाल से इसका जवाब होना चाहिए, "मेरे जैसी स्त्री से विवाह कर के." कई बार लोगों ने मुझे गुस्से में बुदबुदाते सुना है, "यहां सब कुछ तो मैं करती हूं, बच्चों को स्कूल में दाखिल कराने से, टेलीफोन के बिल जमा कराने तक. वह तो केवल उपन्यास लिखता रहता है."

परंतु इस 'केवल' में ही सब कुछ छुपा है. आर्थर को एक उपन्यास लिखने में तीन वर्ष लगते हैं और वह नियम से प्रतिदिन छह घंटे जमकर लिखता है. मेरे विचार से, आर्थर हेली को सर्वाधिक बिकने वाले उपन्यास लेखक का गौरव तीन गुणों के कारण मिला है. पहला, आर्थर कहानी को अत्यंत रोचक रूप देकर प्रस्तुत कर सकता है. आज भी अधिकांश पाठक एक ऐसी कहानी पढ़ना चाहते हैं, जो उत्सुकता बनाये रखें और आगे होने वाली घटनाओं के प्रति तीव्र जिज्ञासा के कारण पाठक उपन्यास पढ़ना बंद न कर सके. दूसरा, वह लिखने से पहले, उस विषय से संबंधित पूरी सामग्री जुटाता है, शोध करता है, लोगों से मिलता है और इस जानकारी का इस्तेमाल उपन्यास में करता है. वह पाठकों को आधुनिक दुनिया की सुविधाओं से जुड़ी समस्याओं और आधुनिक तकनीक का गहन और विराट परिचय देता है. तीसरा, उसके पास युग के मिजाज को परखने की असाधारण प्रतिभा है. वह जानता है कि आज से दो-तीन चार वर्ष बाद यह समस्या विकराल रूप ले लेगी और वह उस पर चार वर्ष पहले से ही काम करना शुरू कर देता है.

उदाहरणार्थ, जब **'मनी चेंजर्स'**, 1975 में बाजार में आया तो आर्थर उस पर 1972 से ही काम कर रहा था. इसमें बैंक नाम की संस्था के बहुत तेजी से ऊपर जाने और फिर नीचे गिरने की कथा है. उसे यह तो पता था कि बैंक जो

हैली का हल्ला

अमेरिका में सर्वाधिक बिकनेवाली दस पुस्तकों की सूची हर सप्ताह 'न्यूयार्क टाइम्स' में प्रकाशित होती है. यह सूची सही सूचना नहीं दे पाती. इस सूची में 'एयरपोर्ट' का नाम चौंसठ सप्ताह तक और 'होटल' का नाम बावन सप्ताह तक छपता रहा. 'होटल' की इस अवधि में बयासी हजार प्रतियां बिकीं जब कि 'एयरपोर्ट' की दो लाख बासठ हजार प्रतियां. इस प्रकार 'ह्वील्स' केवल तेंतीस सप्ताह तक सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों की सूची में रहा जब कि इस पुस्तक की इस अवधि में दो लाख सात हजार प्रतियां बिकीं और 'मनी चेंजर्स', चवालिस सप्ताह तक सूची में और चौदह सप्ताहों तक पहले स्थान पर रहा जबकि इसकी इस अवधि में केवल एक लाख इकहत्तर हजार प्रतियां बिकीं.

अमेरिका में प्रतिवर्ष लगभग आठ सौ उपन्यास प्रकाशित होते हैं. इनमें से कई उपन्यासों की प्रकाशन वर्ष में पचास हजार से एक लाख तक प्रतियां तुरंत बिक जाती हैं. परंतु वे पुस्तकें कभी भी इन सर्वाधिक बिकने वाली दस पुस्तकों की सूची में नहीं आ पातीं.

कुछ भी जो पढ़ने के लिए हो

कुछ भी पढ़ने की धुन थी उन्हें. रेलवे स्टेशनों से बहुत दूर की बस्तियों के लिए. छपे हुए पृष्ठ का कोई भी टुकड़ा. बसंत की हवा के झोंके के साथ बह आये पत्ते की तरह था. फाड़ा हुआ समाचार पत्र जिस में शहर से आया फेरीवाला साप्ताहिक बाजार में सामान बांधकर देता था, तेल लगा और मुचड़ा हुआ कागज, यूं ही जला नहीं दिया जाता. एक आधा पैराग्राफ, कोई रोचक सूचना, इन टुकड़ों को जोड़कर पढ़ ली जाती. हलवाहा उस अखबारी कागज को पढ़ता था जिसमें उसके लिए दोपहर का भोजन आता था. मर्द अखबार के उस टुकड़े को पढ़ते थे जिसमें तंबाकू लिपटा होता था. इस तरह एक पंक्ति यहां से, एक वहां से का जोड़ उनके लिये पुस्तक का काम करता था.

—द लाइफ ऑफ द फील्ड्स
रिचर्ड जैफरीस, प्रकाशन सन् 1884

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कर रहे हैं, उनसे उनका अधोपतन निश्चित है. परंतु यह तो उसे भी नहीं पता था कि जब 1975 में किताब छपकर दुकानों पर आयेगी तो सारे बैंक ताश के पत्तों की तरह एक के बाद एक ढह रहे होंगे.

इसी प्रकार जब **'एयरपोर्ट'** उपन्यास 1968 में आया तो हवाई अड्डे खतरनाक जगहें बन चुके थे. लाखों लोगों की भीड़ और लंबी कतारें सैकड़ों हवाई जहाज कतार लगाये हवाई पट्टी खाली मिलने की प्रतीक्षा में ही खड़े रहते थे. उतरने से पहले हवाई जहाज घंटों आसमान में ही चक्कर लगाते रहते थे तब जाकर उन्हें हवाई पट्टी खाली होने का संदेश मिलता था.

'एयरपोर्ट' के बाद **'ह्वील्स'** आया, जिसमें मोटर उद्योग की समस्याएं थीं. इसमें छोटी कार को भविष्य की कार बताया गया था. यह पुस्तक 1972-73 की सबसे ज्यादा बिकने वाली पुस्तक थी क्योंकि पैट्रोल की भयंकर कमी के कारण लोग छोटी कारें ही खरीद रहे थे जो बाजार में बहुत ही कम मात्रा में उपलब्ध थीं.

इन उपन्यासों को लिखने का काम इनके प्रकाशित होने से चार वर्ष पूर्व आरंभ हो चुका था.

इन उपन्यासों की सफलता के साथ-साथ हमारे घरेलू जीवन में भी तेजी से परिवर्तन आता जा रहा था. आर्थर को एक के बाद एक मकान बदलने का शौक था.

हमारा पहला मकान टोरंटो में था. आर्थर ने इसे 1947 में आठ हजार डालर में खरीदा था. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इस तरह के मकान लंबी कतारों में कुकुरमुत्तों की तरह उग आये थे. इसे हमने किस्तों पर फर्नीचर खरीद कर बहुत मेहनत से, एक-एक पैसा बचाकर सजाया था.

एक रविवार को हम यूं ही सैर-सपाटे पर थे. झील के किनारे बना एक खाली मकान हमें अच्छा लगा. कीमत थी सोलह हजार सात सौ डालर (लगभग दो लाख रुपये) अब तक हम अपने पहले मकान पर इतना पैसा खर्च कर चुके थे कि वह हीरे की तरह चमकने लगा था. वह मकान तेरह हजार डालर में बिका. तीन बच्चों और सात वर्षों के विवाहित जीवन के बाद, यह नया घर, आरामदेह और सुंदर था.

सन् 1960 में एक पुराने मित्र दंपति हमसे मिलने आये. उन्होंने एक मकान पसंद किया था. पति ने मकान देख लिया था और अब पूरा परिवार उसे देखने जा रहा था. उन्होंने अनुरोध किया कि हम भी रविवार को साथ चलें. दोनों परिवार कारों के लदकर निकल पड़े.

आर्थर ने जब घूम-फिरकर मकान देखा तो उसे बहुत पसंद आया. उसने मित्र से कहा, "बिल, अगर तुम इस मकान को नहीं खरीद रहे हो तो मैं खरीद लूंगा." मैं असहाय सी खड़ी आर्थर को रोकना चाहती थी. परंतु यह भी जानती थी कि अब बात हाथ से निकल चुकी है.

बिल ने उत्तर दिया, "इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है. हमें तुम्हारा मकान बेहद पसंद है. तुम इसे ले लो, हम उसे ले लेंगे." छह घंटे बाद एक एस्टेट मैनेजर नये मकान की साफ-सफाई शुरू कर चुका था. मेरे लिए नया सिरदर्द था. हफ्तों तक चीजों को बांधना और फिर खोलना, हजारों किताबों को पेटियों में बंद करना और दुबारा से रैक बनवाकर लगाना.

उसके एक वर्ष बाद ही जब **'इन हाई प्लेसेस'** छप चुका था और वह **'होटल'** पर शोध कर रहा था. अप्रैल के महीने में हम एक फिल्म देख कर लौट रहे थे, तभी बर्फ गिरने लगी. आर्थर को लगा कि जब हम कहीं भी रह सकते हैं तो ऐसी जगह क्यों रहें, जहां वर्ष में दस माह बर्फ ही गिरती रहती है. मैंने कहा कि हम बरसों से यहां रह रहे हैं और अब तो आदत पड़ चुकी है.

"कोशिश तो करो. एजेंट से पूछना, हमें इस मकान के कितने मिल सकते हैं." परंतु मैंने कोई कोशिश नहीं की.

मामला टल गया. लेकिन अभी असली झटका आना बाकी था. 1965 में **'एयरपोर्ट'** की शोध के सिलसिले में आर्थर लॉस एंजलीस गया. तब उसका परिचय एक रिटायर्ड पायलेट एलेक्सी कोल्ट से हुआ. एलेक्सी नापा घाटी में, सेन फ्रांसिस्को शहर से साठ मील दूर रहता था. एक दिन आर्थर ने कह ही दिया, "मैं यहां कुछ अच्छे मकान देखना चाहता हूं."

उसे कई मकान दिखाये गये. जिनमें से एक उसे पसंद आ गया, "कितना?" उसने पूछा. जवाब मिला, "ग्यारह हजार पांच सौ."

"अच्छा, वाकई. मैं इसे खरीदूंगा."

छह माह बाद हम टोरंटो से उड़कर (लगभग दो हजार मील दूर) सैन फ्रांसिस्को में सामान सहित उतर रहे थे. टोरंटो और नापा घाटी में जलवायु का बहुत अंतर था, लोग भी बहुत अच्छे और मिलनसार थे. आर्थर ने मीडोहुड क्लब में एक कमरा ले लिया था और नये उपन्यास **'एयरपोर्ट'** का जन्म हो चुका था.

बिकाऊ लेखक : तिरस्कार का पात्र

सभी पुस्तकीय लोग स्नॉब होते हैं, खासतौर पर ज्यादा पढ़े-लिखे लोग. वे समझते हैं कि यदि किसी लेखक की पुस्तक बहुत बड़ी संख्या में छपती है और सीधा-सादा आदमी भी उस पुस्तक को पढ़कर आनंद उठा सकता है तो निश्चय ही वह पुस्तवक पढ़े जाने लायक नहीं है. उसे उदासीनता और तिरस्कार से देखा जाना चाहिए.

— आर्नोल्ड बैनेट, जुलाई 19, 1928, इवनिंग स्टैंडर्ड

इस समय हमें उन समस्याओं का सामना भी करना था जो अल्प अवधि में अधिक धन आ जाने से उत्पन्न होती हैं. 'एयरपोर्ट' हमारी आशाओं से अधिक सफल रहा था. आर्थर पर फिल्में बन रही थीं. इसलिए उसका अधिक समय आयकर की उलझनों और कानूनी सलाहकारों के साथ बीत रहा था. एक दिन मैं गुस्से से फूट पड़ी, "तुम लेखक हो या आयकर विशेषज्ञ? जो समय तुम्हें टाइप राइटर के साथ बिताना चाहिए उसे तुम कैलकुलेटर के साथ उलझकर नष्ट कर रहे हो."

हमने समस्या पर काफी समय तक बातचीत की. गर्मियों में नापा घाटी बहुत अनुकूल थी परंतु बाकी के छह माह वहां लगातार वर्षा होती रहती थी. हमारे कनाड़ा के कानूनी सलाहकार ने हमें बहामा (सैन फ्रांसिस्को से लगभग तीन हजार मील दूर, अमेरिका और वेस्ट इंडीज के बीच, स्वतंत्र द्वीप समूह) जाने की सलाह दी थी. वहां आयकर कानून सरल थे. यह कठिन निर्णय था क्योंकि बच्चों की शिक्षा कैलीफोर्निया में ही ठीक तरह हो सकती थी. बहामा में दो माह रहने के बाद मैं उस वर्ष के लिए कैलीफोर्निया आ गयी ताकि बच्चों की पढ़ाई पूरी हो सके. आर्थर नये उपन्यास **'ह्वील्स'** के लेखन में जुट गया था.

बहामा में रहते हुए हमें आठ साल हो गये हैं. **परंतु अब भी एक बुरा सपना देखकर मेरी नींद** उड़ जाती है — आर्थर प्रसन्नता से उछलता हुआ मेरी ओर से आ रहा है और कह रहा है, "प्रिये, किसी दूसरे देश के एक शहर में मैंने खूबसूरत जगह देखी है....."

मैं अपने जीवन से बहुत संतुष्ट और प्रसन्न हूं. मैं यह भी जानती हूं कि यदि आर्थर एक लेखक के रूप में असफल हो गया होता तो हमारा जीवन कितना कठिन होता. परंतु सफलता की कीमत भी कई तरह से देनी पड़ती है. अक्सर पार्टियों या समारोहों में मेरा परिचय दिया जाता है, "श्रीमती आर्थर हेली, इनके पति बहुत प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं."

इस तरह के एक परिचय के बाद एक महिला ने मुझसे पूछा था, **"यह सुनकर तुम्हें बुरा नहीं** लगता."

"नहीं," मैंने जवाब दिया था, "मुझे इसकी आदत हो गयी है, मेरा अहम् अब आहत नहीं होता."

"पर आपको नहीं लगता कि प्रत्येक स्त्री की एक स्वतंत्र पहचान होनी चाहिए."

मैं मुस्करा देती हूं. हमारे मित्र और परिचित जो हमें लंबे अरसे से जानते हैं. उन्हें पता है कि इस जीवन में मेरा क्या योगदान रहा है. लेकिन स्त्री स्वतंत्रता आंदोलन ने इन वर्षों में इस तरह के कई सवालों को उठाया है. मैं तो इतना ही जानती हूं कि मैंने अपने भविष्य की जो कल्पना की थी, मेरी जिंदगी उससे कहीं अधिक बेहतर है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किताबें दीवारें नहीं पढ़तीं उर्फ लेखक प्रकाशक और पाठकों के अंतर्संबंध

पाठक लेखक और प्रकाशक के अंतर्संबंधों और पुस्तक जगत पर यह परिचर्चा इस रूप में महत्वपूर्ण है कि जहां निजी संस्थाएं बढ़ती जा रही महंगाई और सरकार के उदासीन रवैये से परेशान हैं वहीं सरकारी और स्वायत्तशासी संस्थाओं का कहना है कि वे बराबर इस दिशा में बेहतर प्रयास कर रही हैं...वह उन्हें सफलता भी मिल रही है. आइए देखें, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, प्रभात प्रकाशन, डायमंड पॉकेट बुक्स, राजपाल एंड संज, सचिन प्रकाशन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस हिंद पॉकेट बुक्स, आर्य बुक डिपो, वाणी प्रकाशन, प्रवीण प्रकाशन और किताबघर की ओर से जो विचार प्रस्तुत किये गये हैं उनके आधार पर इस विषय को सुलझाने की दिशा में क्या कुछ किया जा सकता है...और वस्तुस्थिति क्या है...?

नेशनल बुक ट्रस्ट का कार्य क्षेत्र

नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया का गठन अगस्त 1957 में शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्त शासी संस्था के रूप में किया गया था. सदसाहित्य का उत्पादन ही नहीं उसके उत्पादन को प्रोत्साहित करते हुए कम कीमत पर जनता के लिए उपलब्ध कराना.....संविधान में मान्यता प्राप्त सभी भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद एक भारतीय भाषा से दूसरी भारतीय भाषाओं में करवाना....अधुनातन ज्ञान की लोकोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित करते हुए जनता में पढ़ने की आदत डालने के लिए भरसक प्रयत्न करना....आदि नेशनल बुक ट्रस्ट के प्रमुख उद्धेश्य और कार्यकलाप हैं. नव्यतम पुस्तक मेले के संदर्भ में नेशनल बुक ट्रस्ट के एक प्रवक्ता ने जानकारी देते हुए कहा कि निजी प्रकाशकों के लेखकों की मोनोपोली को तोड़ते हुए एन.बी.टी. का सदैव यह प्रयास रहता है कि वह किताबें प्रकाशित करते हुए स्तर का विशेष ध्यान दे. प्रायः ऐसे विषय और नये व महत्वपूर्ण लेखकों को एन.बी.टी. की पुस्तकों के माध्यम से सामने आने का अवसर मिलता है जिन्हें अन्य प्रकाशक प्रकाशित करने में रुचि नहीं लेते. बच्चों की पुस्तकों की स्थिति यह है कि प्रायः उनके चार-पांच संस्करण तो होते ही हैं. यों 75% से 80% तक यहां की सभी किताबें रिप्रिंट होती हैं.

....इस पुस्तक मेले में लगभग छः सौ प्रकाशक भाग ले रहे हैं. इनमें से लगभग 60 विदेशी प्रकाशक हैं. लेखक संघों की सहयोगी प्रकाशन-संस्थाएं भी भाग ले रही हैं. इस बार लेखकों और प्रकाशकों के लिए सबसे आकर्षक बात यह है कि उन्हें प्रवेश निशुल्क तो मिलेगा ही साथ ही काफी-हाउसनुमा वातावरण दिये जाने की व्यवस्था भी की जा रही है. इसके पीछे हमारा उद्धेश्य यह है कि विविध भाषाओं के लेखक तो परस्पर विचार-विमर्श करें ही साथ ही विविध भाषाओं के प्रकाशक भी लेखकों से रू-ब-रू हो कें अपने आप में यह विश्व पुस्तक मेला न केवल सुनियोजित है बल्कि एशिया का सबसे बड़ा और सफलतम आयोजन भी रहेगा. पुस्तक व्यवसाय में यह मेला न केवल प्रकाशकों बल्कि लेखकों के लिए भी समान रूप से उपयोगी साबित होगा. ....यों नेशनल बुक ट्रस्ट की दृष्टि से यहां पैसा कमाना प्रमुख नहीं है इसके निश्चित उद्देश्यों के लिए हम गंभीरता से न केवल विचार कर रहे हैं बल्कि उन्हें पूरा करने के लिए अवसर भी जुटा रहे हैं...

प्रकाशन-विभाग की भूमिका

प्रकाशन की दृष्टि से प्रकाशन-विभाग देश का महत्वपूर्ण और सबसे बड़ा प्रकाशन संस्थान है. अब तक इसने 6200 पुस्तकें प्रकाशित की हैं. यहां से प्रकाशित होने वाली पुस्तकें न केवल हिंदी और अंग्रेजी में बल्कि सभी भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होती हैं. और इनका उद्धेश्य है देश के नागरिकों को इतिहास, भूगोल, सामाजिक ढांचे, संस्कृति और भाषाई दृष्टि से संपन्न करना. राष्ट्रीय सक्रियता के लिहाज से नागरिकों में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराना...... राष्ट्रीय एकता और जागरूकता की समझ पैदा करना तथा आस्था और विश्वास पैदा करना, देश के जीवन और संस्कृति के प्रति गहरी आत्मीयता जगाते हुए उसकी समूची जानकारी देना. इस संस्थान के प्रमुख उद्धेश्यों में से है. कला, संस्कृति, पर्यटन, यात्राएं, भाषण, राष्ट्रीय नेता, जीवनियां, गांधी-साहित्य, स्वतंत्रता आंदोलन, विज्ञान की लोकप्रिय पुस्तकें, शिक्षा, इतिहास, तथा बच्चों के लिए संदर्भ ग्रंथों के रूप में विशेष किताबें कम से कम कीमत पर प्रामाणिक जानकारी के साथ यह संस्था सुरूचिपूर्ण तरीके से छापती है. इस बात का बराबर ध्यान रखा जाता है कि कथ्य और प्रस्तुति में स्तरीयता बनी रहे. यह संस्था न केवल अपनी स्तरीय पुस्तकों वरन अपने यहां से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं के लिए भी जनता में अपना विश्वास बना चुकी है. आर्थिक दृष्टि से भी यह संस्था दिनोंदिन प्रगति के रास्ते पर बढ़ रही है. बंगलौर, कलकत्ता, त्रिवेंद्रम और नयी दिल्ली की प्रदर्शनियां इस लिहाज से खास ही बड़ी उपलब्धियां हैं. आजादी के चार दशकों में देश के विकास और उपलब्धियों के संदर्भ को लेकर संदर्भ ग्रंथ प्रकाशित करने और आधुनिक भारत के निर्माता सीरीज के अंतर्गत पं. गोविंद बल्लभ पंत और मैडम भीकाजी कामा रिलीज की जा चुकी हैं. पं. गोविंद बल्लभ पंत का लोकार्पण उपराष्ट्रपति डा. शंकर दयाल शर्मा द्वारा पंत जी के जन्म शताब्दी वर्ष पर किया गया. प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के चुने हुए भाषणों और लेखों का (प्रकाशन नं.-1) भी इस वर्ष प्रकाशित किया गया. इंपलायमेंट न्यूज नाम से तीन भाषाओं में प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक अखबार की तीन लाख से अधिक प्रतियां प्रति सप्ताह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिकती हैं. दरअसल यह संस्था अपने आप में देश के नागरिकों में पाठकीय जागरूकता और उत्साह को बढ़ावा देने के लिहाज से बराबर सराहनीय प्रयास करती रहती है...

पुस्तकें गंभीर चिंतन का आधार हैं

दीनानाथ मल्होत्रा

आपने लेखक-पाठक और प्रकाशक के संदर्भ में महत्वपूर्ण सवाल उठाये हैं. तीनों ही अच्छी चीज चाहते हैं. व्यावहारिक रूप से इस संदर्भ में आने वाली दिक्कतों का सामना हम हर रोज करते हैं... तीस वर्ष पहले जब हमने पॉकेट बुक्स की शुरूआत की थी, तब किसी को यह विश्वास स्वप्न में भी नहीं था;.. पर हमें यह विश्वास था कि सस्ती और अच्छी पुस्तकों की मांग पाठकों में है. हिंदी ही नहीं भारतीय भाषाओं और विदेशी साहित्य के भी उत्कृष्ठ प्रकाशन हमने में हिन्दी में किये. तब अप्रत्याशित सफलता भी मिली. पर पिछले दस - बारह वर्षों में स्थिति बदल गयी है. यह ठीक है, कि पुस्तकें लिखने, पढ़ने और प्रकाशित करने के क्षेत्र में खासा विस्तार हुआ है... आज हमारी साक्षरता 35% है. और हिंदी देश के 40% लोगों की मातृ भाषा है. अहिंदी भाषी पाठक भी हिंदी पढ़ते हैं. पर जिस रूप में पुस्तकें बेच पाने के मामले में हमने अपने प्रारंभिक दौर में अप्रत्याशित सफलता हासिल की थी वह स्थिति अब नहीं रही. पॉकेट बुक्स के नाम पर बहुत सी हल्की-फुल्की मनोरंजन की किताबें छपने लगीं हैं. मुझे उनसे कोई ऐतराज़ नहीं है जो लोग पढ़ते हैं, जरूर पढ़ें, मनोरंजन करें. पर यह तो मानना ही होगा, कि स्तर-हीन लेखकों द्वारा तैयार वो किताबें और उनके प्रकाशकों की कार्यपद्धति और अर्थशास्त्र में आधार यह है, कि सब अच्छी पुस्तकों को बाजार से बाहर धकेल दिया जाए. जितने भी प्राइवेट स्टाल हैं, या बस स्टैंड या रेलवे स्टेशन पर किताबें बिकने की जगह हैं, वहां वे लोग वही चीज रखना चाहते हैं, जो तेजी से बिके और उन्हें अधिक मुनाफा दे. दरअसल वे रोजी कमाने वाले पेशेवर लोग हैं. उनके मन में प्रायः आदर्शवाद के लिए कोई जगह नहीं है. यूं अपवाद तो हर जगह होते ही हैं. आज विक्रेता यह फैसला करता है, कि क्या छपे - क्या बिके! पुस्तकें पाठकों तक पहुंचाने का प्राथमिक जरिया ये स्टाल्स ही हैं. अब ए.एच. व्हीलर के रेलवे स्टाल्स को ही लीजिए. इसे चलाने वाले कंपनी के डायरेक्टर न केवल हमारी किताबों की सराहना करते हैं, बल्कि वे हमारी इज्जत भी करते हैं. उनके निर्देशों के बावजूद इन स्टालों में हमारे यहां से प्रकाशित रवींद्रनाथ टैगोर की पुस्तकें उस रूप में नहीं बिकीं. क्योंकि स्टालों पर बैठा हुआ आदमी ही महास्वामी है. वही तय करता है कि कौन-सी पुस्तकें किस तरह से डिस्प्ले की जायें. आज आप देखिये, कि बुद्धिजीवी तो बहुत बड़ा शब्द है, स्तरीय पाठक भी इन स्टालों की तरफ झांकता तक नहीं. जबकि मेरा मत यह है, कि स्तरीय पुस्तक पढ़ने वाले पाठक भी बढ़े हैं, पर उनकी सुरूचियों का गला घोंट दिया गया है. डाक द्वारा पुस्तकें मंगवाने का एक साधन और था, पर आज डाक दरें इतनी ज्यादा हो गयी हैं, कि वे इस सुरूचि संपन्न साहित्य पर बहुत भारी पड़ती हैं. दस रुपये की पुस्तक डाक द्वारा मंगवाने पर पंद्रह रुपये की पड़ती है. हमारी घरेलू लायब्रेरी योजना के 1962 से अब तक कुल मिलाकर लगभग सवा पांच लाख सदस्य बन चुके हैं. पर इस समय सदस्यों की संख्या नगण्य ही है. लगता है, कि पाठक चाह कर भी पुस्तक नहीं खरीद पाता. लायब्रेरी के माध्यम से बिकने वाली पुस्तकों का एक अलग संसार है. हमारे यहां लायब्रेरी की जो ग्रांट मौजूदा हालात में दी जाती है, वह दरअसल बढ़ती हुई महंगाई के अनुपात में बहुत कम है. आज हमारे यहां वीडियो लायब्रेरीज तो बहुत खुल रही हैं. पर किताबों के लिये पुस्तकालयों की संख्या में न तो पर्याप्त विस्तार हुआ है. न सुविधाएं बढ़ायी गयी हैं. जबकि गहन गंभीर चिंतन का आधार पुस्तकें हैं. टी.वी. नहीं.......

आदर्शों व सिद्धांतों का खामियाजा

ईश्वरचंद्र

इस क्षेत्र में जो स्थिति आयी है, उसकी मूल वजह महंगाई ही है. हालत यह है कि हमारी स्तरीय पुस्तकों के बाउंड एडीशन व्यक्तिगत रूप से खरीदने वाले अधिकाधिक 5% पाठक होंगे. ज्यादातर लोग पुस्तकालयों में जाकर पढ़ना पसंद करने लगे हैं. इस क्षेत्र में कमीशन की होड़ इतनी बढ़ गयी है, कि यहां कोई नियम काम नहीं करता. जो लोग 60% तक कमीशन देने की स्थिति में होते हैं, आप पाएंगे कि उनकी पुस्तकों की कीमत अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा है. अखिल भारतीय हिंदी प्रकाशक संघ के सदस्य भी इस मामले में बिखरे हुए हैं. और सही हल तक पहुंचने की कोशिश नहीं करते. आखिर कहीं तो आपको अंतर करना होगा न! अमृतलाल नागर, डा. राधाकृष्णन्... जैसे रचनाकारों की पुस्तकें और सामान्य लेखकों की पुस्तकें खरीदते वक्त क्या एक ही व्यवहार अनुचित नहीं है? खरीदते वक्त कमीशन की होड़ हर तरह की किताब को एक ही तराजू में तोलती है. कागज के मूल्य पर सरकार का होल्ड होना चाहिए. कई बार इसके लिए सरकार से बात भी की गयी किंतु कोई रास्ता अभी तक नहीं निकल पाया. सरकार छपी हुई पुस्तकें तो आयात कर सकती है लेकिन कागज आयात करने में रुचि नही लेती. आप जानते ही हैं, कि हिंदी के पाठक की क्रय शक्ति अंग्रेजी पाठकों के मुकाबले कहीं कम है. ऐसे में लगातार बढ़ता हुआ कागज का मूल्य किताबों को और महंगा बना देता है. पढ़ने की आदत डालने का काम नेशनल बुक ट्रस्ट और साहित्य अकादमी जैसी संस्थाओं को करना चाहिए, पर इस दिशा में कोई खास प्रयास दिखाई नहीं देते. जो प्रकाशक एथिक्स नहीं जानते, वे घटिया पुस्तकें भी अधिक लेते हैं...... आश्चर्य की बात यह है, कि नेहरू जी किताबों की बिक्री के इस सिलसिले के सख्त खिलाफ थे. उनका कहना था, कि वे कोई साग सब्जी हैं, कि इस पर टैंडर इनवाईट की जाएं. इसी व्यवस्था से भ्रष्टाचार पनपता है. पाठकों को बढ़ावा देने के लिहाज से कृष्णचंद बेरी की हाल ही में प्रारंभ की गयी सीरीज अनुकरणीय है. जिसके तहत वे बड़े रचनाकारों के संपूर्ण साहित्य को बहुत कम कीमत पर देने की शुरूआत कर चुके हैं. हमारी घरेलू लाएब्रेरी योजना की भी शुरूआत से जन-जन तक पहुंचने की कोशिश रही है. हमें अपने आदर्शों और सिद्धांतों की वजह से काफी खामियाजा उठाना पड़ता है, क्योंकि अब किताब - किताब न होकर प्रोडक्ट बन गयी है. पर यह एक मिशन है और हम इसे मिशनरी उत्साह से लेकर चल रहे हैं. ....

परचेंजिंग कैपिसिटी नहीं है

के.एल. मलिक

नेशनल पब्लिशिग हाउस के संचालक और भारतीय हिंदी प्रकाशक संघ के अध्यक्ष के.एन. मलिक का विचार है कि बंगाल में पुस्तकों के प्रति वहां के लोगों में मोह होता है. वहां पढ़ने लिखने की संस्कृति बहुत विकसित है. जिस कारण वहां किताबों के एडिशन अधिक छपते हैं. जिस वजह से वहां पुस्तकों की कीमत भी कम हो जाती है. मगर हिंदी में ऐसा नहीं है और आप देखिये कि कीमतें केवल पुस्तकों की ही तो नहीं बढ़ रही हैं, हर वस्तु के दाम आसमान छू रहे हैं. कागजों के दाम क्या हैं, और छपाई पर कितना खर्चा होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे आप वाकिफ होंगे. कई बार तो [illegible] किताब पर लगी लागत भी वसूल नहीं हो पाती. सरकार भी इस मामले में गौर नहीं करती. हार कर हमें पुस्तकों की कीमतें अधिक करने के लिए विवश होना पड़ता है. मगर कुछ प्रकाशकों ने पेपर बैक संस्करण शुरू किये हैं जो कि एक अच्छा कदम है. मगर हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि हिंदी के पाठकों में कैपेसीटी बहुत कम है.

मेरे विचार में इन पुस्तक मेलों का आयोजन बेमतलब है. इनकी किसी भी दृष्टि से कोई उपयोगिता नहीं है.

हमारा ध्येय बिक्री नहीं पाठक से जुड़ना है

अरुण कुमार

वाणी प्रकाशन के सह संचालक अरुण कुमार का मानना है कि किताब और पाठक की दूरी बढ़ती ही जा रही है. इस बारे में कुछ प्रकाशकों ने गंभीरता से विचार करके कुछ कदम भी उठाये हैं जिनमें सबसे उल्लेखनीय कदम है – किताबों के पेपर बैक संस्करण. इस बारे में गंभीरता से सोचा जा रहा है कि आखिर क्या कारण है कि हिंदी की बनिस्पन बंगला साहित्य सस्ता उपलब्ध हो जाता है. इसी कारण उस भाषा के पाठक हिंदी की तुलना में अधिक हैं.

इसमें कोई शक नहीं कि इस दिशा में बनारस के हिंदी प्रचारक संघ ने क्रांतिकारी कदम उठाये हैं मगर इसमें अहम बात है कि उन्होंने जिन लेखकों को अपनी उस योजना में शामिल किया है, उनमें वही हैं जो अपना लेखन संपूर्ण कर चुके हैं जबकि हमारा प्रकाशन उन लोगों को छापता है जो अभी लिख रहे हैं.

सच्चाई यही है कि हिंदी के पाठकों की गिनती बहुत कम है. आप बताइये पत्र-पत्रिकाओं में छपी पुस्तक-समीक्षाओं को पढ़कर कितने लोग पुस्तकें खरीदते हैं!

मैं स्वीकार करता हूं कि व्यावसायिक दृष्टि से पुस्तक मेलों का हम साहित्यिक-प्रकाशकों के लिए कोई विशेष महत्व नहीं मगर यह बात मैं आपको स्पष्ट कर दूं कि हमारे प्रकाशन-संस्थान का इन मेलों में शामिल होने का ध्येय केवल पुस्तकों की बिक्री नहीं है, पाठक से जुड़ना है. आप देखिये कि अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला 1988 का अधिकांशतः अंग्रेजी प्रकाशकों ने ही विरोध किया था मगर उनमें भी ज्यादातर वे थे जो प्रकाशक न होकर वितरक हैं.

चूंकि हमारी नीयत में खोट नहीं है इसलिए [illegible] हैं और आखिर हम लेखकों से संबंध कैसे **बिगाड़ सकते हैं**, वे ही तो हमारी रोजी-रोटी का जरिया हैं. वैसे हमारी यह पूरी कोशिश रहती है कि हर लेखक हमसे इतना संतुष्ट हो कि वह अपनी पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए अन्य प्रकाशन संस्थान में न जाये मगर यदि वह फिर भी जाता है तो हमें कोई आपत्ति नहीं है.

पाठक, लेखक और प्रकाशक

श्याम सुंदर

हिंदी प्रकाशन की समस्याएं अंग्रेजी अथवा देश की अन्य भाषाओं से पर्याप्त भिन्न हैं. मुख्यतः पठन रुचि के विषय में. अंग्रेजी तथा बंगला, मलयालम, गुजराती व मराठी आदि भारतीय भाषाओं में पुस्तकें सामान्य पाठक के लिए लिखी व छापी जाती हैं. जबकि हिंदी में स्थिति ठीक दूसरी है. यहां एक तो पाठक हैं ही कम...और खरीद कर पढ़ने वाले तो और भी कम हैं. यही वजह है, कि हिंदी की सजिल्द साहित्यिक पुस्तकों का समूचा प्रकाशन व्यवसाय प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सरकारी पैसे से चलने वाले पुस्तकालयों की खरीद पर आश्रित है. दूर-दराज के देहाती इलाकों और कम पढ़े लिखे तबके में धार्मिक और लोक-साहित्य अब भी खरीद कर पढ़ा जाता है. पर इस प्रकार की पुस्तकें आजादी के बाद नए पनपे सजिल्द साहित्यिक पुस्तकों के क्षेत्र में नहीं आतीं. इसीलिए यहां हुए पुस्तक मेलों में यह पुस्तकें नजर नहीं आतीं. परंतु धार्मिक व सांस्कृतिक पर्वों और समारोहों में धड़ल्ले से बिकती हैं. रामचरित मानस के बीसियों प्रकाशक आज भी ऐसे हैं जो हजार पृष्ठ के इस ग्रंथ के वर्ष में अनेकों संस्करण प्रकाशित कर लेते हैं. जाहिर है, वे पुस्तकालयों की ओर झांकते तक नहीं. इधर वर्षों से चिंता के साथ यह विचार हो रहा है, कि हिंदी की पुस्तकों को पाठक या खरीदार नहीं मिलता. आमतौर पर पुस्तकालय संस्करण में छपे अच्छे सजिल्द उपन्यास का एक संस्करण चार-पांच वर्षों में बिक पाता है जबकि ठीक ऐसे माहौल में प्रेमचंद और शरत जैसे लेखकों की पुस्तकों की हिंदी में ऐसी स्थिति बिल्कुल नहीं है. इनकी पुस्तकें अपेक्षाकृत अधिक चाव से खरीदी और पढ़ी जाती हैं. ऐसे में लगता है कि सहजता, सरलता

हिंदी में पाठक

साहित्य और लोकप्रिय साहित्य का अंतर पश्चिम में पुराना है, कम से कम सौ साल पुराना, लेकिन हिंदुस्तान में ही नहीं-- यह फर्क पिछले बीस पच्चीस सालों में ही ज्यादा उभरा है.

दिनमान के प्रतिनिधि को कुछ लोगों के बातचीत करने पर प्रश्नों के जो उत्तर मिले, वे यकीनन दिलचस्प थे, जो आश्चर्यजनक नहीं, उत्तर देने वाले थे छह शिक्षक (विश्व विद्यालय से लेकर प्राथमिक कक्षाओं तक के) सात छात्र-छात्राएं, एक किरानी, एक दूकानदार, एक मिस्त्री, एक पुस्तक विक्रेता, एक सार्वजनिक पुस्तकालय के अधिकारी, एक पत्रकार और एक ऐसे दूकानदार जो दस बारह पैसे प्रतिदिन किराये पर पुस्तकें देते हैं. इन में अठारह व्यक्ति ऐसे थे जो साल में चार पांच से लेकर चालीस-पचास तक पुस्तकें पढ़ते हैं............

इन उत्तरों से प्रकट होने वाले तथ्य हैं.---

हिंदी की पुस्तकों के अधिकतर पाठक सत्तरह-अठारह से लेकर चौबीस पच्चीस वर्ष तक की आयु के लोग होते हैं-- युवक और युवतियां दोनों ही.

इनमें से अधिकतर अविवाहित होते हैं. युवतियां अधिकतर छात्राएं या अध्यापिकाएं. युवकों में छात्रों के अतिरिक्त दफ्तरों के बाबू और छोटे-छोटे दूकानदार भी.

अधिकतर पाठक पुस्तकें खरीदते बहुत कम हैं. पुस्तकालयों से, दूकानों से किराये पर लेकर या मांगकर पढ़ते हैं.

अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ने के साथ वय और सामाजिक प्रतिष्ठा दोनों जुड़े हैं. कुछ लोगों ने कहा कि अब उन्होंने हिंदी की पुस्तकें पढ़ना बंद कर दिया है. क्योंकि हिंदी के जासूसी उपन्यास अविश्वासनीय होते हैं, और सामाजिक सतही और बचकाने.

युवतियां सामाजिक उपन्यास पढ़ती हैं, जासूसी उपन्यास बहुत कम. सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक हैं गुलशन नंदा, (पुस्तकें हैं-- सिसकते साज, नीलकंठ, माधवी, लरजते आंसू...) उसके बाद काफी पिछड़े हुए, आदिल रशीद.

अधिकतर युवक जासूसी उपन्यास पढ़ना पसंद करते हैं. लोकप्रिय लेखक हैं, अकरम इलाहाबादी (उर्दू से अनुदित होकर), ओम प्रकाश शर्मा, और वेद प्रकाश कंबोज, कोई खास पुस्तक नहीं......

दिनमान 7, जनवरी, 1966

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रोचकता के कारण ही वे अधिक लोकप्रिय हैं. बहुत ऊंची (क्षमा करें) या दुर्बोध शैली और भाषा के कारण भी आम पाठकों में हमारी पुस्तकें लोकप्रिय नहीं हो पा रही हैं. यह बात काफी जोर से सुनायी पड़ रही है, कि पुस्तकों के मूल्य अधिक होने के कारण खरीदार नहीं मिलते. दरअसल, अधिक मूल्य होने का एक बड़ा कारण छोटा प्रिंट आर्डर होना है. कुछ प्रकाशकों ने साहस करके लगभग एक तिहाई मूल्य में पुस्तकों के अल्प मोली संस्करण निकाले भी किंतु जैसी अपेक्षा थी वैसी सफलता इस दिशा में नहीं मिली. उदाहरण के तौर पर लगभग ढाई तीन गुने मूल्य की सजिल्द पुस्तक की दो हजार प्रतियां जितने समय में बिकीं, उसी पुस्तक की एक तिहाई मूल्य की अल्पमोली संस्करण की महज पांच हजार प्रतियां ही बिकीं. कभी-कभी तो उससे भी कम.

जहां तक लेखक-प्रकाशक संबंधों की बात है, कठिनाई फिर वही है....पुस्तकों की कम बिक्री. पुस्तकें इतनी मंथर गति से बिकती हैं, कि लेखक को जो रॉयल्टी मिलती है वह उसे संतोषजनक नहीं लगती. यदि पुस्तकों की बिक्री अच्छी हो तो लेखकों की रॉयल्टी स्वतः बढ़ जाएगी. और साथ ही प्रकाशकों का लाभांश भी. कई बार लेखक-प्रकाशक संबंधों के मधुर न होने की बात सामने आती है. कुछ प्रकाशक निश्चित रूप से रॉयल्टी के मामले में गड़बड़ करते होंगे. किंतु उनकी संख्या अधिक नहीं होगी. मैं ऐसे बहुत से प्रकाशकों को जानता हूं, जिनके लेखकों को उनसे कोई शिकायत नहीं है. कुछ लेखक भी ऐसे हैं, जिनसे प्रकाशकों को कई तरह की शिकायतें रहती हैं. पर उनकी संख्या भी अधिक नहीं है. दरअसल यह व्यक्ति की अपनी ईमानदारी और निष्ठा पर निर्भर करता है. अनुभव की बात तो यह है कि जिन प्रकाशकों के अपने लेखकों से मधुर संबंध हैं, उनका व्यवसाय अधिक सुचारू रूप से चलता है.

पाठक हैं, मगर जरूरत उन्हें खोजने की है

नरेंद्र वर्मा

डायमंड पॉकेट बुक्स हिंदी का सम्भवतः अकेला प्रकाशन संस्थान है जिसके यहां से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों के पाठकों की संख्या बहुत अधिक है. यह प्रकाशन पाठकों की नब्ज को पहचानता है. ऐसा लगता है कि यही वजह है कि यह राहुल, समीर कुमार कश्यप, सुरेंद्र मोहन पाठक आदि बिकने वाले लेखकों को छापकर धनार्जन करता है. और साथ ही साथ कुछ अच्छी साहित्यिक पुस्तकें भी छापता है. इससे प्रेमचंद और शरत चंद की संपूर्ण रचनाओं को पाठकों तक बहुत कम कीमत में पहुंचाया है. अब इसकी योजना जयशंकर प्रसाद की संपूर्ण ग्रंथावली को चार खंडों में केवल 160 रुपये में उपलब्ध कराने की है. इस प्रकाशन के संचालक नरेंद्र वर्मा संभवतः अकेले प्रकाशक होंगे जिनका यह मानना है कि हिंदी में पाठक हैं. मगर जरूरत उनको खोजने की है और हमने उन्हें खोजा है और उन तक अपनी पुस्तकों को पहुंचाया है. मगर श्री वर्मा पुस्तकों और पाठकों की दूरी के लिए केवल सरकार की नीति को जिम्मेदार ठहराते हैं. उनका यह मत है कि सरकार की यह कोशिश है कि जनता शिक्षित न हो ताकि वह वोट की राजनीति को समझ न सके. यही वजह है कि इस बार सरकार ने सूखे का हौवा दिखाकर प्रकाशकों को मिलने वाली ग्रांट को देने से इंकार कर दिया है. और बहुत हील-हुज्जत के बाद ग्रांट दी है तो केवल दो करोड़ रुपये जबकि इससे पूर्व यह ग्रांट लगभग छह करोड़ रुपये मिलती थी. असलियत यह है कि सरकार नहीं चाहती कि हमारे देश के लोग पुस्तकों में दिलचस्पी लें. नहीं तो क्या कारण है कि हर कस्बे और क्षेत्र में पुस्तकालय होना क्यों नहीं अनिवार्य कर दिया गया है.

प्रकाशक खूब कहते हैं कि हिंदी के पाठक नहीं हैं मगर मैं पूछता हूं क्या उन्होंने गंभीरता से इस दिशा में कोई कदम उठाया है! लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूं कि एक लेखक के पुस्तकों के एडिशन जितने पहले छपते थे, उतने अब नहीं छपते हैं. इसका मूल कारण है कि हम लोगों में किराये की खरीददारी पनप रही है. यह सोचना गलत है कि गुलशन नंदा के बाद अन्य कोई बिकने वाला लेखक हिंदी में नहीं आया है. प्रेम वाजपेयी, रानू, राजहंस आदि कम नाम तो नहीं हैं.

मेरा मानना है कि यह पुस्तक मेला बहुत बेढंगे वक्त पर लगाया गया है. इस दिनों विद्यार्थियों के सिर पर अपनी परीक्षाओं का भूत मंडरा रहा होता है तो वह पुस्तक मेले में कैसे आएंगे?

कारण अनेक हैं..

श्रीकृष्ण गुप्त

'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' के बाजार में उपलब्ध संस्करणों की दुर्दशा देखकर प्रवीण प्रकाशन के संचालक श्रीकृष्ण गुप्ता ने उन्हें नयनाभिराम साज-सज्जा के साथ प्रकाशित करने का निश्चय किया और उनकी देखादेखी फिर तो बाजार में इन पुस्तकों की बाढ़-सी आ गयी. हालांकि उनके यहां से प्रकाशित पुस्तकें पूरी भीड़ में सर्वश्रेष्ठ हैं, मगर एक शुभ उद्देश्य से शुरू किए काम की यह परिणति देख वे आज भी क्षुब्ध हैं. श्री गुप्ता का मानना है, कि पुस्तकों की बिक्री कम होने के पीछे कोई एक कारण नहीं, अनेक हैं. पुस्तकों की कीमतें ज्यादा होना, प्रकाशकों का प्रचार-प्रसार पर अधिक व्यय न कर पाना, पुस्तकों की साज-सज्जा आकर्षक न होने जैसे छोटे-मोटे कारणों के अलावा सरकार द्वारा इस उद्योग को किसी भी तरह की कोई रियायत या छूट न देना इसका मुख्य कारण हैं.

मेलों-ठेलों में श्री कृष्ण जी को कोई औचित्य नजर नहीं आता. अपनी बात स्पष्ट करते हुए उन्होंने इसी मेले का उदाहरण देते हुए बताया कि अब इस मेले के लिए सरकार ने जो ग्रांट जारी की है. वह बहुत कम है.

सरकार को चाहिए कि वह ऐसे आदेश जारी करे कि किसी भी एक स्टाल से एक निश्चित रकम से ज्यादा की पस्तकें नहीं खरीदी जाएं. तभी प्रकाशकों को मेले में सम्मिलित होने का लाभ मिल सकता है.

पाठक-प्रकाशक संबंधों के संदर्भ में उनका दो टूक जवाब था, कि यह हमारी विडंबना ही है, कि हमारे प्रकाशक भाई दूकान पर आये पाठक खरीददार से कहीं ज्यादा तरजीह विक्रेता खरीददारों को देते हैं. अगर वे जो छूट विक्रेता या बिचौलिए को देते हैं, वही सीधे पाठक को दें तो वह बार-बार उनका दरवाजा खटखटायेगा इसमें कोई संदेह नहीं.

मेलों में शामिल होना बस परम्परा है

विजय कुमार

सुबोध पॉकेट बुक्स प्रकाशन दो नावों में पांव रख कर चल रहा है. एक तरफ वह साहित्यिक लेखकों को छापकर अपनी गरिमा बनाये हुए है और दूसरी तरफ व्यावसायिक दृष्टि से वह सुरेंद्र मोहन पाठक, चिरंजीत आदि को भी प्रकाशित कर रहा है. अपने व्यावसायिक दृष्टिकोण के कारण ही उसने अभी हाल ही में चंद्रकांता को पेपर बैक में प्रकाशित किया. इस प्रकाशन के संचालक विजय कुमार का कहना है कि दिक्कत यह है कि हिंदी के अधिकाश साहित्यिक लेखक केवल बुद्धिजीवी वर्ग के लिए ही लेखन करते हैं. आम पाठक को दृष्टि के लेकर नहीं लिखते. यही वजह है कि उनकी किताबें बहुत कम बिकती हैं. इसलिए इनके संस्करण बहुत कम होते हैं. इस वजह से प्रकाशक को किताब की कीमत बढ़ाने के लिए विवश होना पड़ता है. हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावसायिक दृष्टि से भी सोचना पड़ता है, इसीलिए हम सुरेंद्र मोहन पाठक, चिरंजीत आदि को भी छापते हैं.

हम पिछले सात अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेलों में शामिल हुए हैं, इस पुस्तक मेले में भी अवश्य शामिल होंगे. मगर मेरा यह व्यक्तिगत मत है कि पुस्तक मेलों में प्रकाशकों का शामिल होना एक परंपरा बन गयी है. अगर देखा जाये तो इन मेलों का कोई महत्व नहीं है.

बात आदत की है

सत्यव्रत

अपनी सरलता और मृदुता के लिए प्रकाशक और लेखक संसार में जाने जानेवाले किताब घर के संचालक श्री सत्यव्रत जी का मानना है कि हिंदी में पुस्तकों की पाठकों से दूरी कीमतों की वजह से नहीं आदत की वजह से है. अपनी बात स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि जैसे बंगाल में पारिवारिक समारोहों तक में भेंट में कोई कीमती वस्तु की बजाए पुस्तकें देने का चलन है इसी के चलते वहां किताबें ज्यादा छपती हैं, ज्यादा बिकती हैं और ज्यादा पढ़ी भी जाती हैं. सत्यव्रतजी की मान्यता है कि हमारे उद्योग में निश्चित रूप से कई पेंच ऐसे हैं कि जिन पर हमें समय रहते विचार करना होगा. जैसे पुस्तकों के अंधाधुंध मूल्य. एक पुस्तक एक जगह से पचास रुपये में, दूसरी जगह से अस्सी में...ऐसा नहीं होना चाहिए. कोई रोकथाम, अंकुश निजी अवश्य होना चाहिए. इसी तरह कमीशन का सवाल है. कमीशन क्यों हो? जब आप रेलवे में टिकिट रियायत के साथ नहीं पाते, घर की जरूरतों की चीजें, सरकारी-अर्द्धसरकारी या निजीसंस्थाओं से खरीदते हैं तो मुद्रित मूल्य देते हैं, फिर किताब मुद्रित मूल्य से कम पर खरीदने या बेचने को बाध्य क्यों? पाठक-लेखक-प्रकाशक की दूरी कम करने के लिए न केवल प्रकाशकों को बल्कि पत्र-पत्रिकाओं को भी विज्ञापन दरों में लचीलापन रखना चाहिए सत्यव्रत जी का मानना है कि उपन्यास, कहानी ज्यादा बिकते हैं. मगर आश्चर्य कि किताब घर से कई वरिष्ठ लेखकों की इन्हीं विधाओं की किताबें छपी हैं मगर उन्होंने अपनी सर्वाधिक बिक्री वाली जिन तीन किताबों के नाम गिनाये उन तीनों में से एक भी इस विधा की नहीं थी. वे थीं—भारत की श्रेष्ठ लोककथाएं, ओलिम्पिक और कालिदास के नाटक. अब कहानी उपन्यास के अलावा अन्य विधाओं की पुस्तकों के प्रति पाठकों की रुचि के बढ़ने से सत्यव्रतजी काफी प्रसन्न हैं, उन्हें आशा है कि इससे हिंदी में विविध विषयों पर पुस्तकें लिखने की परंपरा में श्रीवृद्धि होगी. मेलों की उपयोगिता को स्वीकारने वाले सत्यव्रतजी का मानना है कि इससे एक माहौल बनता है. लेखकों, पाठकों के अलावा प्रकाशकों को भी अपने समुदाय से मिलने, कुछ सीखने, कुछ जानने और कुछ अद्वितीय कर दिखाने की प्रेरणा मिलती है.

पुस्तकें सस्ती होंगी तो भी लाभ होगा.

अनिल पालीवाल

सचिन प्रकाशन को शुरू हुए केवल तीन साल ही हुए हैं अभी इसने केवल लगभग 70 पुस्तकें छापी हैं. मगर अल्पकाल में ही इस नये प्रकाशन ने बहुत प्रतिष्ठा हासिल कर ली है. इसके निदेशक अनिल पालीवाल का कहना है कि असलियत यह है कि लोगों में पुस्तकें खरीदकर पढ़ने की आदत नहीं है. पुस्तक चाहे हॉर्ड-बाउंड में निकलें या पेपर बैक में, व्यावसायिक दृष्टि से कोई अंतर नहीं है. पुस्तकों की मात्रा में कोई विशेष फर्क नहीं आता. व्यावसायिक रूप से कोई खास असर नहीं पड़ता. लेकिन अभी हम चूंकि नये हैं. इसलिए पेपर बैक योजना को लागू करने में असमर्थ हैं. लेकिन मैं इस बात को तहेदिल से स्वीकार करता हूं कि पुस्तकें सस्ती होनी चाहिए. और अगर ऐसा होगा तो लाभ प्रकाशक को भी मिलेगा.

जहां तक लेखक-प्रकाशक संबंधों का सवाल है, हमारे यहां से लेखक नहीं या तो मित्र जुड़े हैं या हमारे शुभ चिंतक. मैं तो लेखक को इन्हीं दो रूपों में देखता हूं. हमारे यहां से प्रकाशित हर लेखक मेरा परोक्ष रूप से मार्गदर्शक भी है ऐसा मेरा मानना है. हालांकि इस क्षेत्र में रहते हम सभी तरह की पुस्तकें छापेंगे ही मगर मेरा ध्येय उन पुस्तकों और योजनाओं को मूर्त रूप देना है जिन्हें दूसरे प्रकाशक आसानी से अपने हाथ में नहीं लेना चाहते. मिसाल के तौर पर इधर हाल में हमने वीरेंद्र जैन का उपन्यास 'शब्द-बध' प्रकाशित किया है जिसका विषय ही लेखक-प्रकाशक संबंध है. इसी तरह 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी कोश', 'हिंदी लघु कथा कोश', जैसी महत्वाकांक्षी योजनाएं भी इसी ध्येय के उदाहरण हैं.

हिंदी के पाठक कम हुए हैं

सुखपाल गुप्त

आर्य बुक डिपो के संचालक सुखपाल गुप्त का मत है कि अगर हम पिछले लगभग चार दशकों का विश्लेषण करें तो हमें निष्कर्ष मिलेगा कि हिंदी के पाठकों, वितरकों की संख्या बहुत कम हुई है. आज एक भी दूकानदार ऐसा नहीं है जो बाखुशी किसी अच्छी किताब को अपनी दुकान में रखता हो. इस बारे में हो-हल्ला खूब होता है कि पुस्तकों की कीमतें अधिक हैं, इसलिये हिंदी के पाठक नहीं हैं. मगर मैं सोचता हूं कि असल में लोग 'रीडिंग कोंशस' नहीं हैं. अंग्रेजी की किताबें खूब बिकती हैं जबकि उनकी कीमतें हिंदी की किताबों से अधिक होती हैं. बंगला और मलयालम का पाठक हिंदी के पाठक से अधिक है. जबकि हमारा क्षेत्र उनसे 10-20 गुणा अधिक बड़ा है.

पुस्तक मेलों का अपना महत्व तो होता ही है. इन मेलों में किताबों का और पाठकों का आमना-सामना होता है. लोग किताबों को भले ही खरीदने के लिए नहीं, देखने तो जाते ही हैं. असल में इन मेलों का प्रकाशकों को कोई तुरंत परिणाम नहीं मिलता हां, एक लंबे समय बाद नतीजा सामने आ जाता है.

यह कितनी अजीब बात है कि अगर चार दशक पूर्व से हम आज की तुलना करते हैं तो हम पाते हैं कि पहले की बनिस्पत प्रकाशकों की संख्या बहुत बढ़ी है, किताबों की तादाद बहुत बढ़ी है मगर पाठक कम हुए हैं.

प्रकाशकों को पुस्तकालयों पर निर्भर रहना पड़ता है

सुनील वर्मा

हिंदी बुक-सैंटर भले ही पॉकिट बुक्स के रूप में कुछ पुस्तकें छापता है मगर यह प्रकाशन की दुनिया में एक वितरक के रूप में चर्चित है. यह अनुमानित 500 प्रकाशकों की पुस्तकें वितरित करता है. इसके सह-संचालक सुनील वर्मा का विचार है कि प्रकाशक का पूरा ध्यान पुस्तकालयों की तरफ क्यों न हो, हिंदी में इंडिविजुअल रीडर कहां हैं. इसलिए प्रकाशकों को पुस्तकालयों पर निर्भर होना पड़ता है. □

● आयोजक : सुशील वर्मा, वीरेंद्र, महेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतियां

मन के बियाबां में एक घुटी हुई चीख

वरिष्ठ कथाकार प्रभाकर द्विवेदी के पिछले दिनों प्रकाशित उपन्यास '**वही आदिम आंच**' को पढ़कर लगता है कि इस नवें दशक के उत्तरार्द्ध में अभी भी हिंदी उपन्यास जगत मानवमन और उसकी अतलातल गहराइयों के सच को जानने में जुटा हुआ है. समकालीन कथा जगत की अप्रासंगिकता या उक्त विषय पर आरोप न समझकर इसे मनोवैज्ञानिक तथा शाश्वत सच के रूप में ही लिया जाना चाहिए. जीवन के इन शाश्वत सत्यों को चुनना और अपनी रचना का हिस्सा बनाना, रचनाकार की परिपक्वता और विस्तार का संकेत होता है. कथा साहित्य का यही वास्तविक मूल भी होता है जिसमें आगे चलकर लेखक की दृष्टि, उसकी वैचारिक समझ, अनुभव तथा विभिन्न जानकारियां शाखाओं के रूप में प्रस्फुटित होकर फलती-फूलती हैं. यह अलग बात है कि आज हिंदी कथा-साहित्य में कहीं केवल मूल है तो कहीं केवल शाखाएं या प्रशाखाएं. यही कारण है कि बड़ी संख्या में छपनेवाली कथा कृतियों के रूप में हमें या तो केवल ठूंठ मिल पाता है या मात्र नंगी शाखाओं का सूखा! स्वस्थ, मजबूत, नीरोग, हरे-भरे, फलदार और संपूर्ण 'कथा-वृक्षों' का यह अकाल इसीलिए है क्योंकि मूल को रोपते वक्त हम वांछित ईमानदारी का खाद नहीं डाल पाते. नये-नये उपशीर्षकों के तहत हम ठप्पेदार रचनाकार होना पसंद करते हैं और इसी अनावश्यक 'डिप्लोमा' के चक्कर में हम प्रायः विकसित होना तक अस्वीकार कर देते हैं. प्रसंगतः समीक्षित उपन्यास को पढ़कर यह अवश्य लगता है कि लेखक ने एक दमदार विषय लिया और अपनी संपूर्ण क्षमताओं का इस्तेमाल करते हुए पूरे मन से खुद को उसमें उतारा भी.

'वही आदिम आंच' धीरेन, मंदा, मुन्नी, गौरीमोहन, देबू और भैरों के जरिये इस समाज के तंग-नजरिये के बरक्स उपस्थित की गयी एक असमंजसपूर्ण संबंध-कथा है. धीरेन को एक प्रेम करनेवाली 'दीदी' चाहिए जिसे वह मंदा में तलाश करना चाहता है. इस अपेक्षा से उपन्यास की कथा आरंभ होती है और दूसरे चरित्रों को साथ मिलाकर आगे बढ़ती है. किस प्रकार से धीरेन मंदा को 'सोचता' है उसका लगभग रोजनामचा जैसा चित्रण यहां किया गया है. मंदा के पति गौरीमोहन का कथा में प्रवेश उस लय को तोड़ने के लिए किया जाता है जो एक-दो बार ही मंदा और धीरेन के बीच संतुलित होती दिखायी पड़ती है. यह सच है कि धीरेन मंदा को दीदी के ही रूप में अपनाना चाहता है मगर उसके मन का उभरन कई बार और प्रायः ऐसा पलटा खाता है कि धीरेन 'पुरुष' में तबदील हो जाता है और मंदा को 'मादा' मात्र में देखने की विवशता से उबरने के लिए उसे बहुत मानसिक जतन करने पड़ते हैं. वस्तुतः धीरेन लगातार मंदा की ताक में रहता है कि कब उसका मानस ऐसा बने कि दोनों ओर का प्रेम-देय और प्राप्य — बराबर हो जाये. धीरेन प्रायः जिस स्तर पर परेशान रहता है, उसकी एक झलक दृष्टव्य है : "वह नहीं चाहता — कतई नहीं चाहता, फिर भी क्यों उसे तकलीफ होती है? क्या चीज है, जो उसे यों नचा रही है? भीतर-ही-भीतर क्या खाए डालता है? पल-भर को भी प्यार नहीं, स्नेह नहीं.जीजी स्वीट ड्रीम्स की अभिलाषा कर सकती हैं, किंतु हृदय में से वह झरना क्यों नहीं फूट बहता, जो उनके वक्ष के नीचे रहकर उन्हें मां की संज्ञा प्रदान करता है?" शायद वह मां मर चुकी है. शायद वहां मात्र नारी ही बची है.जभी तो अपने यौवन के प्रतीक पयोधरों से उसे अपने बच्चे को दूध पिलाना भी स्वीकार नहीं है. बच्चे के लिए डिब्बे का दूध-पाउडर ही काफी है. चिरयौवना कहलाये जाने की साध ने जीत लिया है उस आदिम वासना को कि दो नन्हें-नन्हें हाथों का स्पर्श अनबोले शब्दों में कहे — मुझे जीवन दो मां, मुझे प्यार दो."

प्रभाकर द्विवेदी

परस्पर संबंधों के तिलिस्म से निकलने के लिए धीरेन अपनी मूल प्रकृति को कई बार तिलांजली भी देता है जिसमें खूब खाना, एक उच्चस्तरीय होटल में जाकर डांस देखना तथा मुन्नी को साथ ले जाकर सिनेमा दिखाना तथा उससे रोमांस-तुल्य लाड़ जताना आदि घटनाएं शामिल हैं, और इसके बाद जब धीरेन को लगता है कि अब मंदा उसकी लगभग दीदी हो गयी हैं तो मंदा के साथ सैक्स को लेकर हुई छोटी-सी बहस धीरेन के विचारों में फिर से हड़बड़ी पैदा कर देती है. मंदा का मानना था कि धीरेन ने सूखने के लिए अपनी धोती ऐसे फैलाई कि बालिश्त भर धोती उसकी सूख रही साड़ी को ढके रही. "यह क्या था? सिर्फ सैक्स-फीलिंग जो साड़ी के कारण आप में अव्यक्त रूप से थी, आपकी क्रियाओं में प्रकट हो गयी."

इन दोनों के अतिरिक्त देबू, गौरीमोहन या भैरों का चरित्र भी जहां-जहां इस उद्वेलन को उकसाता है, वहां वह चरित्र या घटना एक-दूसरे की तौहीन नहीं करते बल्कि इस व्यापक विषय की बहस का ही एक अध्याय या आयाम बन रहे होते हैं. इसलिए यहां द्वितीय श्रेणी के खलनायकों की भी पूछ नहीं हो पायी है. सबसे बड़ा और सफल खलनायक तो अपना ही मन है जो रात को सोते हुए मंदा की पिंडली को धीरेन के हाथ के रूप में जा दबाता है और मंदा की अवचेतन वाणी से निकलता है — "कौन, देबू? चल हट." मन से मन के बीच का यह अंतराल, मन की यह तौल और मन का यह अजूबा गणित तथा समीकरण इस उपन्यास का तानाशाह नायक है. इसीलिए इस उपन्यास का तथाकथित नायक केवल "खिसियानी हंसी हंसता ही जाता है." धीरेन मर्मज्ञ है इसलिए भी शायद वह नायक नहीं बन पाया. वह गुणातीत नहीं है. मन की त्रुटियों का जानकार है. उसका मन एक बहुदर्शी 'यंत्र' है जिससे वह इस प्रकार भी बिसूरा करता है : "वे (मंदा) दूसरी ओर मुंह किये सो रही थीं. चेहरा आंचल से ढांप रखा था, करवट थी, बेखबर, धीरेन उन्हें यों ही देखता रहा. फिर उसे यों ही के देखने में रुचि से देखने लगा. रुचि में इच्छा होती है. इच्छा में प्यास, प्यास से कष्ट मिलता है. कष्ट से धीरेन पीड़ित होने लगा. मन जाने कैसा हो, लालसा से भर आया. इच्छा हुई कि उन्हें कंबल ओढ़ा दे. लेकिन भय और लाज लगी, अपनी लालसा का जैसा विकट रूप उसने देखा, उससे डांवाडोल हो गया. अपने मन की विकृति का ऐसा नग्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी अकादमी, दिल्ली

(स्थापित - 31-12-1981)

उद्देश्य

1. दिल्ली के साहित्यिक और सांस्कृतिक विकास के सन्दर्भ में हिन्दी भाषा और साहित्य का संवर्द्धन तथा परिरक्षण करना।
2. साहित्यिक और शैक्षिक महत्व की मूल हिन्दी कृतियों का प्रकाशन तथा ऐसे महत्वपूर्ण साहित्य को प्रोत्साहित करना जो अब तक प्रकाशित न हो सका हो।
3. महत्वपूर्ण एवं उपयोगी साहित्यिक तथा वैज्ञानिक पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करना। इसके अन्तर्गत उन कृतियों को सम्मिलित किया जायेगा जो सांस्कृतिक समन्वय तथा राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से श्रेष्ठ साहित्य की कोटि में आती हों।
4. हिन्दी में सन्दर्भ साहित्य तैयार करने के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर पाठ्य-पुस्तकों के सम्पादन तथा प्रकाशन की व्यवस्था करना।
5. दिल्ली में उपलब्ध हिन्दी के उत्कृष्ट साहित्य का संकलन जो शोध के अभाव में प्राप्त न हो सका अथवा अर्थाभाव के कारण उपेक्षित पड़ा हो (इसके अन्तर्गत हिन्दी की प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज तथा इसके प्रकाशन की व्यवस्था भी सम्मिलित होगी)।
6. दिल्ली के जन-जीवन से सम्बन्धित साहित्य का संकलन, सम्पादन तथा प्रकाशन, जिसमें लोक साहित्य भी सम्मिलित होगा।
7. दिल्ली में ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व की पृष्ठभूमि में पंजाबी, उर्दू तथा अन्य भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों का हिन्दी में अनुवाद।
   (इसके अंतर्गत साम्प्रदायिक सौमनस्य से सम्बन्धित विभिन्न भाषाओं का साहित्य भी सम्मिलित होगा)।
8. उत्कृष्ट कृतियों के प्रकाशन के लिए ऐसे साहित्यकारों को वित्तीय सहायता देना जो स्वयं प्रकाशन व्यवस्था न कर सकते हों।
9. हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कृति के लिए प्रतिवर्ष पुरस्कार की व्यवस्था करना।
10. दिल्ली के वयोवृद्ध/उच्चकोटि के हिन्दी साहित्यकारों और प्रतिष्ठित विद्वानों का सम्मान।
11. हिन्दी के क्षेत्र में शोध करने वाले तथा शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को सुविधायें प्रदान करना।
12. आवश्यकता अनुभव होने पर पत्रिका आदि प्रकाशित करना। (त्रैमासिक पत्रिका 'इन्द्रप्रस्थ भारती' का जनवरी 88 में प्रकाशन प्रारंभ)।
13. हिन्दी भाषा के उच्चकोटि के दिवंगत साहित्यकारों की जयन्तियों का आयोजन, उनके द्वारा सृजित साहित्य का परिरक्षण तथा प्रचार की व्यवस्था करना।
14. हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के लिए यथासमय भाषा सम्मेलन तथा विचार गोष्ठी आदि आयोजित करना।
15. हिन्दी के विकास की विभिन्न गतिविधियों से सम्बन्धित कार्य करना। राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास की तथा जनसामान्य के उपयोग के लिए तकनीकी शब्दावली और हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार से सम्बन्धित साहित्य के संवर्धन की योजनाओं को कार्यान्वित करना।
16. हिन्दी में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले दिल्ली के विद्यालय तथा विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था।
17. एक ऐसे पुस्तकालय की स्थापना करना जिसमें साहित्य की मूल कृतियों, सन्दर्भ ग्रंथ, शब्दकोश तथा हिन्दी साहित्य की आलोचनात्मक पुस्तकें उपलब्ध हों।
18. हिन्दी के प्रचार और प्रसार में कार्य कर रही ऐसी स्वैच्छिक संस्थाओं को सहायता अनुदान देना जिनका कार्य वास्तव में हिन्दी के विकास तथा हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।
19. जनसामान्य के लिए, विशेषकर प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए ऐसे साहित्य का सृजन करना जो सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परम्पराओं पर आधारित हो।
20. हिन्दी भाषा और अनुवाद तथा कार्य विधि प्रशिक्षण की दिशा में समुचित कार्यवाही करना।
21. हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा में अपने साधन, शक्ति और जीवन के महत्वपूर्ण वर्षों को लगाने वाले साहित्यकारों के लिए साहित्यकार पेंशन की व्यवस्था करना।

ए-26/27, सनलाइट इंश्योरेंस बिल्डिंग,
आसफअली रोड, नयी दिल्ली-110002

दूरभाष : 733950

डा. नारायणदत्त पालीवाल
सचिव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप उसने आज तक न देखा था. इतनी कष्टदायी और स्पष्ट स्थिति में प्यास न महसूस की थी.'' और अंततः यह तथाकथित नायक अपने मन से 'पराजित' होकर पलायन कर जाता है.

यह कहना उचित ही नहीं आवश्यक भी है कि वैयक्तिक आग्रहों के तहत ऐसे 'कथादर्शन' को समझाया बताया जाना काफी मुश्किल काम है. बौद्धिकता का संभवतः सबसे अधिक वर्जित क्षेत्र हृदय ही है, एक-दूसरे के साथ पटरी न बैठा पा सकनेवाली सौतन के समान हैं ये दोनों. साधारण रचनाकार के द्वारा, साधारण पात्रों के माध्यम से शायद इस विषय को टंकारा तो जा सकता है मगर कोई 'राग' सुनाना कठिन है, विषय की यह टंकार हमें इस उपन्यास में सुनाई तो पड़ती है मगर लगभग उथले प्रसंगों और चित्रणों के माध्यम से ही. साथ ही दुर्भाग्य से यह फ्रायडीय मनोविज्ञान का भी परिशिष्ट नहीं बन पाया है. निस्संदेह लेखक इस विषय का रचनात्मक उपयोग करना चाहता है मगर इसके अन्वेषण और ढांचे को मंदा तथा धीरेन की वैयक्तिता के हाथों सौंपकर एक अतिरिक्त अर्द्ध-आस्था की स्थिति में मानो स्वयं ही वह फंस भी जाता है. इस तरह इस कृति से न तो विषय के रूप में एक सामान्य पाठक को कुछ अतिरिक्त मिल पाता है और न पात्रो के रूप में साहित्य को ही कुछ विशेष मिलता है. उलझी हुई संवेदनाओं में उत्प्रेरक का काम करनेवाले परिवेश को तो यहां एकदम दरिद्र बनाकर प्रस्तुत किया गया है जिसमें संयोगों की भरमार और चालू फुटपाथिया भाषा ने अपनी भूमिका खूब बेहतरी से निभायी है. मंदा उदास रहनेवाली स्त्री-जीजी तो है मगर अपने अस्तित्व के शोषण के विरुद्ध वह सदैव यात्रा स्थगित रखती है. इसलिए कभी-कभार जब लेखक उससे 'बुलवाता' है तो वह अपने पात्र से 'ऊंचा' बोल पड़ती है. जबकि यह अविश्वसनीयता धीरेन के चरित्र में कम है, देबू एक दुःस्वप्न की तरह कथा के अंत में आता है और अपनी 'उदास परंपरा' के पात्रों का सही प्रतिनिधित्व करता है. मुन्नीवाला प्रसंग पढ़ते हुए ब्लादीमीर नो बोकॉव की 'लोलिता' की हमें याद आयी तो भी क्या किया जाये! कुल मिलाकर यह कि एक अलग तरह का यह उपन्यास होते हुए भी एक अलग तरह की जिरह, सांत्वना, भाषा, प्रवृत्ति या आस्था नहीं दे पाता, इस पर जितना क्षोभ लेखक से प्रकट किया जाये हमारे हिसाब से कम ही हो

राजकुमार गौतम

उपन्यास : 'वही आदिम आंच'; लेखक : प्रभाकर द्विवेदी; प्रकाशक: ज्ञान भारती, 4/14, रूपनगर, दिल्ली-110007; मूल्य — पच्चीस रुपये.

साक्षात्कार का संतुलित प्रयोग

साक्षात्कार के नाम पर इधर कुछ स्वनामधन्य संपादक नाक-भौं सिकोड़ने लगे हैं. उनके लिए साक्षात्कार एक ऐसी पत्रकारिता मात्र है जो बेरोजगार पत्रकारों का रोजगार बन गया है, जिसके पास अन्य कोई काम नहीं, वह साक्षात्कार करने दौड़ पड़ता है. अखबारों और तमाम दूसरी व्यावसायिक पत्रिकाओं में अक्सर प्रकाशित होने वाले साक्षात्कार देख कर इन संपादकों की बात एकबारगी सही भी प्रतीत होती है लेकिन यही साक्षात्कार कितना उपयोगी और कितना महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है, यह महेश दर्पण के पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित 'साक्षात्कार' 'कथन-उपकथन' देखने से पता चलता है. वास्तव में साक्षात्कार भी अन्य माध्यमों की तरह सच्चाई और तथ्य की तह में पहुंचने का एक माध्यम है. लेकिन उस्तरे की तरह इसका भी महत्व बहुत कुछ उपयोग करने वाले पर निर्भर करता है. निसंदेह, दर्पण ने इसका उपयोग आदर्श और संतुलित ढंग से किया है.

कथन-उपकथन में दर्पण द्वारा विगत दस वर्षों के दौरान समय-समय पर लिये गये सोलह साक्षात्कारों का संकलन है. साक्षात्कार देने वालों में प्रसिद्ध आलोचक डा. नामवर सिंह, डा. विनय, चर्चित कथाकार रमेश बक्षी, मन्नू भंडारी, हिमांशु जोशी, रमाकांत, नरेंद्र कोहली, मृणाल पांडे, पंकज बिष्ट, देशबंधु डोगरा 'नूतन', स्वाभाविक अभिनय के लिए प्रसिद्ध अभिनेत्री शबाना आजमी, चित्रकार के. खोसा, आंख पर पट्टी बांध कर मोटर साइकिल चलाने के लिए लोकप्रिय जादूगर एस.के. निगम, चुंबकीय चिकित्सा पद्धति के विशेषज्ञ डा. हीरा लाल बंसल और त्रिनिटाड में भारतीय संस्कृति और कला को प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कथक नर्तक शंकर शामिल हैं. ये सभी अपने-अपने क्षेत्र के प्रतिष्ठित नाम हैं. इनका कला-संसार भी प्रत्यक्षतः काफी जुदा-जुदा है. 'कथन-उपकथन' की पहली और महत्वपूर्ण विशेषता यही है कि इसमें साक्षात्कारों के माध्यम से कला-जगत की विस्मृतप्राय अस्मिता को ढूंढने का सायास प्रयास किया गया है.

आधुनिक जीवन के विकास के साथ ही मानवीय संबंध भी बदले हैं और उनमें एक प्रकार की जटिलता आयी है. इस जटिलता को कला-माध्यमों द्वारा अभिव्यक्ति देने की कोशिश का ही परिणाम है कि कला के विभिन्न रूप विकसित होते गये और उन्होंने अपनी स्वतंत्र सत्ता का निर्माण कर लिया. यह कला के अंग विशेष के लिए लाभदायक है लेकिन इसका एक नकारात्मक पहलू यह है कि इससे कला के विभिन्न क्षेत्रों के बीच मौजूद मूलभूत एकता या तो कमजोर पड़ी है या नष्ट हुई है जिसके कारण वह अपने अकेलेपन में पूर्ण विकसित होते हुए भी जीवन को संपूर्णता के साथ अभिव्यक्ति नहीं दे सकती. कला के विभिन्न रूपों के बीच इस मूलभूत एकता की कमी का ही एक उदाहरण यह है कि क्रांतिकारी नज्मों को भी रोमांटिक अंदाज में गुनगुनाया जाता है. आज अब सिर्फ कहानी के शिल्प, भाषा एवं रेखाओं द्वारा काल और शून्य को भरने पर अंतहीन बहस चल रही है तब दर्पण द्वारा इन तमाम चीजों की मूलभूत एकता की खोज करना 'धारा के विरुद्ध' जरूर लग सकता है. मगर यह अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण प्रयास है. यह ऐसा ही है जैसे कैमरे के आगे बैठे हुए किसी आदमी के हर हिस्से की फोटो लेने के लिए उसके चारों तरफ की लाइटें जला दी जायें. दर्पण के इस प्रयास का अब तक कोई विशेष नोटिस न लिये जाने का भी कारण यही लगता कि कला की बारीक बहस में उलझे होने की वजह से कुछ मोटी-मोटी लेकिन महत्वपूर्ण चीजें आलोचकों की दृष्टि से ओझल हो चुकी हैं.

'कथन-उपकथन' की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता जो बरबस अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करती है, वह है प्रश्नों की निरंतरता. संकलित साक्षात्कार दस वर्षों की लंबी अवधि में लियें गये हैं लेकिन ऐसा कहीं नहीं लगता कि प्रश्नों में वर्षों का अंतराल है. लगता है जैसे दर्पण इस पूरी अवधि के दौरान लगातार इस प्रश्नों से जूझते रहे हों. अक्सर हम सामान्य की बात करते हुए विशेष को भूल जाते हैं. या फिर विशेष की विशेषताएं गिनाते-गिनाते सामान्य हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है. दर्पण ने इस पूरी अवधि में एक संतुलित दृष्टि को बराबर बनाये रखा है. न तो वह सामान्य को भूलते हैं और न ही विशेषताएं उनकी नजर से चूकती हैं. उनके प्रश्नों में कुछ प्रश्न साहित्य के 'शाश्वत प्रश्नों' की तरह हैं (उदाहरण के लिए... चीजों में रचनाकार या आलोचक की वैचारिक प्रतिबद्धता आड़े आ जाती हैं...?) तो कुछ बिल्कुल सामयिक. (उदाहरण के लिए.... कहानी को लेकर नयी संभावनाएं क्या कुछ हैं... क्या आपने शशांक की कहानियां पढ़ी हैं?)

अनिल श्रीवास्तव

साक्षात्कार : कथन-उपकथन : महेश दर्पण
प्रकाशक : अभियान प्रकाशन
मूल्य : चालीस रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य प्रेमियों एवं शोध कर्त्ताओं के लिए जाने माने विद्वानों की शोध समीक्षाएँ

डॉ. मनमोहन गौतम	
सूर की काव्यकला	75.00
भालचन्द तिवारी	
सूफी काव्य का दार्शनिक विवेचन	80.00
डॉ. हरभजनसिंह	
गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य	100.00
डॉ. गार्गी गुप्ता	
रामचंद्रिका का विशिष्ट अध्ययन	150.00
डॉ. रविन्द्र 'भ्रमर'	
हिन्दी भक्ति-साहित्य में लोक तत्व	100.00
ओम प्रकाश	
हिन्दी अलंकार साहित्य	50.00
हिन्दी काव्य और उसका सौंदर्य	60.00
डॉ. शंकर दयाल चौऋषि	
द्विवेदी युग की हिन्दी गद्य शैलियों का अध्ययन	100.00
डॉ. शांतिस्वरूप गुप्ता	
हिन्दी तथा मराठी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	100.00
डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव	
अपभ्रंश भाषा का अध्ययन	75.00
डॉ. रत्नसिंह जग्गी	
दशम ग्रन्थ की पौराणिक पृष्ठभूमि	100.00
डॉ. विद्यानाथ गुप्ता	
हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना	100.00
डॉ. राजकिशोर कक्कड़	
आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास	120.00
डॉ. रामशंकर सिंह	
सेठ गोविन्ददास: व्यक्तित्व कृतित्व और जीवन दर्शन	150.00
डॉ. वीरेन्द्रकुमार बड़सूवाला	
रीतिकाव्य और विद्यापति	100.00
डॉ. गोपाल शर्मा	
सामाजिक विज्ञानों की पारिभाषिक शब्दावली	100.00
डॉ. हरगुलाल	
मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति	100.00
डॉ. वासुदेव	
विचार और निष्कर्ष	75.00
नेमनारायण जोशी	
सुमित्रानंदन पंत का नवचेतना काव्य	100.00
डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत	
जायसी का पद्मावत: शास्त्रीय भाष्य	150.00
डॉ. विमल कुमार जैन	
कामायनी चिन्तन	100.00
देवर्षि सनाढ्य	
भारतीय नाट्यशास्त्र तथा हिन्दी नाट्य विधान	100.00
डॉ. नगेन्द्र	
भारतीय नाट्य साहित्य	150.00
डॉ. राम प्रतिपाल मिश्र	
तुलसी काव्य चिन्तन	200.00
डॉ. ओम प्रकाश गुप्त	
हिन्दी डोगरी प्रत्यय	100.00
डॉ. जयचन्द्र राय	
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: सिद्धान्त और साहित्य	100.00
डॉ. भगीरथ मिश्र	
कला साहित्य और समीक्षा	75.00
डॉ. रामचरण महेन्द्र	
गोविन्ददास: साहित्य और समीक्षा	45.00
डॉ. देवराज उपाध्याय	
साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	200.00
डॉ. रामरतन भटनागर	
उच्च साहित्यिक निबन्ध	75.00
डॉ. समारचन्द्र	
हिन्दी के साहित्यिक निबन्ध	75.00
श्री गिरिजादत्त शुक्ल	
साहित्य निबन्ध-संकलन	35.00
डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित	
भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं कला	150.00
डॉ. सत्यदेव चौधरी	
हिन्दी के प्रतिनिधि कवि	40.00
आधुनिक कवि	20.00
उमा ठाकुर	
विद्यापति की बिम्ब योजना	65.00
डॉ. रत्ना कुमारी	
हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि	75.00
श्याम सुन्दर घोष	
उपन्यासकार प्रेमचन्द	50.00
प्रो. टेक चन्द्र शास्त्री	
निबन्धकार: रामचन्द्र शुक्ल	35.00

एस. चन्द एण्ड कं. (प्रा.) लिमिटेड

हेड आफिस : राम नगर, नई दिल्ली-55

शोरुम : 4/16-बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली - 2

शाखायें: बंगलूर, बम्बई, कलकत्ता, कोचीन, गौहाटी, हैदराबाद, जालंधर, लखनऊ, मद्रास, नागपुर, पटना

TRENDS-SC-- 1503

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुस्कराती फाइलें

व्यंग्य-विधा में लिखना तलवार की धार पर चलना है और उसी पैनी धार के आधार पर सार्थक मार करना भी है—रामनारायण उपाध्याय का व्यंग्य लेखन प्रायः इसी प्रकार का है. उपाध्याय जी व्यंग्य-लेखन में महारत हासिल ही नहीं कर चुके हैं, वरन् इस लेखन से बेहद लोकप्रिय भी हो चुके हैं. उनके नवीनतम व्यंग्य-संकलन 'मुस्कराती फाइलें' में साठ व्यंग्य निबंधों का संकलन हुआ है. व्यंग्य क्षेत्र की यह पहली पुस्तक है जिसमें समाज, संस्कृति, साहित्य और समकालिक जिंदगी के इतने ज्यादा जाने-पहचाने और अनजाने पहलू उजागर हुए हों. 'चांदी का जूता' तो बहुतेरों ने मारा होगा पर यहां उपाध्याय जी ने भरत द्वारा लाई 'राम की पादुकाएं' को जिस जूते से जोड़ा है, वह पठनीय के संग मननीय भी है.

व्यंग्य के तिलिस्म-भेदन के लिए उपाध्याय जी आसपास की जिंदगी को ही चुनते हैं. एक ही पृष्ठ पर अंकित ये व्यंग्य चुने गये से प्रतीत होते हैं—'एक दिन एक पत्र के पन्ने उलट रहा था, देखा उसमें एक जगह सद्यस्नाता नारी के हाथों साबुन का विज्ञापन कराया गया था. उसमें साबुन तो रेपर में लिपटी थी लेकिन नारी महज टावेल में'

बिकाऊपन की प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए उपाध्याय जी ने जहां चोरी, डकैती, जासूसी और जालसाजी के लिए रियायती दामों में आदमी बिकाऊ देखे, वहीं उपाधि, पुरस्कार, कला, साहित्य, सांस्कृतिक अकादमियों के लिए घटी दरों पर भी आदमी बिकाऊ पाये. कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक है—यह सबूत मिला इस बात से कि हर स्टेशन पर एक जैसी मटमैले रंग की कसैले स्वाद वाली एक जैसी चाय एक जैसे दाम पर उपलब्ध हो जाती है. हर प्रदेश में गरीब के और अधिक गरीब होने और पैसे वाले के और अधिक पैसे वाले होने की समान सुविधाएं.

व्यंग्य के इस विधान में उपाध्याय जी की विविधता तो प्रमुख विशेषता है ही, उसे प्रस्तुत करने की उनकी विलक्षणता भी कम प्रशंसनीय नहीं है. देश और समाज में व्याप्त विषैले और कसैलेपन को वे बड़ी विलक्षण सहजता से अपने व्यंग्य में उभार लाते हैं और पाठकों को गुदगुदाते और झकझोरते हैं. स्वयं महसूस लीजिए — 'भारतीय रेल चल रही है. जो बैठे हैं, वे भी चल रहे हैं, जो खड़े हैं, वे भी चल रहे हैं, जो लेटे हैं, वे भी चल रहे हैं और जो बिना टिकट या छत पर हैं वे भी चल रहे हैं....देश में समाजवाद आया या नहीं, पता नहीं, लेकिन रेलवे में तो आ गया. रेलवे ने गरीबी हटाने की तरह, थर्ड क्लास मिटाने के लिए उसके डिब्बे पर से एक डंडा हटाया तो वह सेकंड क्लास बन गया है. इसे कहते हैं डंडा मिटाऊ समाजवाद. वही डिब्बा, वही गंदगी, लेकिन रेल के किराये में और बैठने वाले के रुतबे में बढ़ोत्तरी हो गई....कहते हैं स्त्री मेकअप करने में देर लगाती है. रेल 'मेकअप' करती है तो जल्दी आती है. लेकिन आजकल तो रेल भी स्त्रियों की तरह मेकअप करने में देरी लगाने लगी है.'

व्यंग्य के लिए उपाध्याय जी की पारदर्शी दृष्टि परतों को भेदकर भीतर तक पहुंच जाती है, इसीलिए उनका लेखन पाठकों के मर्म को छेदता भी है तो कभी उस पर मरहम लगाकर राहत भी पहुंचाता है. उनके इन व्यंग्यों को पढ़ने-गुनने के बहाने से इसीलिए स्थितियों का सही जायजा भी मिल जाता है और साहित्य का जायका भी. समझदार पाठक को इससे अधिक और चाहिए भी क्या? चुहलबाजी के संग व्यंग्य का यह रंग पाठकों पर कुछ ज्यादा ही असर करता है—और इसी से वह मुस्कराते हुए भी अपने को मथता हुआ पाता है. मुस्कराहट की इस मुद्रा में मनन-मंथन का यह दुर्लभ संयोग शायद उपाध्याय जी के व्यंग्य-लेखन की मौलिकता ही है. उनका व्यंग्य गांवों और कस्बायी जिंदगी से आगे बढ़ता हुआ नगरों और महानगरों तक पांव पसारे मिलता है, राजनीति की रजाइयों में घुसे नक्कू नेताओं, शिक्षा की शालीनताओं, आफिसों की आपाधापियों का पर्दाफाश करके पाठकों को परोस देता है, इतना कि एकबारगी पढ़ने पर भी पुनः पढ़ने की ललक दब नहीं पाती.

व्यंग्य के संग विनोद के रंग को मिलाने में माहिर उपाध्याय जी की कला 'ये संयोग से मिली संयोगिताएं', 'आदमी और बंदर', 'भैंस किसकी?' 'आइए, गोष्ठी करें!' आदि के साथ अंतिम तीन रचनाओं—लतीफें—हंसी का एक गुलदस्ता, राजनीतिज्ञ : विनोद के क्षणों में, साहित्यकार : विनोद के क्षणों में, बखूबी देखने को मिलता है.

व्यंग्य विधा में लिखी ये रचनाएं सार्थक जिंदगी की टोह लेती ऐसी कोशिशें हैं जो साहित्य के लेखन के साथ उसके पठन-पाठन को भी सार्थक बनाती हैं.

प्रो. विश्वंभर 'अरुण'

रामनारायण उपाध्याय के व्यंग्य
प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1685, लखनीयराय स्ट्रीट, नई दिल्ली-२०

आंधी और तिनके

कहानी और उपन्यास की दुनिया में बाला शर्मा पिछले कई वर्षों से सक्रिय हैं. अनुभूति को सहज रूप में अभिव्यक्त करने में इनका रचनाकार विशेष रुचि लेता दिखाई देता है. उपन्यास पढ़ते हुए यह एहसास बना रहता है कि जीवन की विषमताओं के बीच सुख-दुख के सिलसिले को पार करते हुए संघर्षरत मानव के प्रति कथाकार में ऐसा आस्थाभाव बना रहता है कि समूचा उपन्यास 'सुरेश' के ही इर्द-गिर्द बुना गया प्रतीत होता है. यह सही है कि सुरेश ने जिन अनुभव-सत्यों का स्पर्श किया उनमें शालिनी भी उसके साथ बनी रही...किंतु शेष समूचे पात्र और कथा-स्थितियां महज कथानक को विस्तार देने में काम आते दीखते हैं. आजादी के बाद के भारतीय समाज में आदर्श नागरिकता का पाठ पढ़ना या पढ़ाना महज एक औपचारिकता मानी जाने लगी है जबकि सुरेश इस धुंध भरे माहौल में एक अपराजेय व्यक्तित्व के रूप में सामने आता है...और हमारे दिखावटी जीवन पर व्यंग्य करता-सा अपनी राह चल देता है. औद्योगिक विकास के साथ-साथ देश जिस तरह मजदूरों के कंधों पर आ टिका...उस तरह की सुविधाएं और महत्ता इस वर्ग को सामाजिक-आर्थिक तौर पर नहीं मिल सकीं. प्रायः यह वर्ग दूसरों की सुख-समृद्धि के लिए होम होते रहने पर मजबूर हुआ. सुरेश इन सबके सुख-दुख का साथी है. धारा के विरुद्ध आचरण वाला यह व्यक्ति कहीं गहरे में प्रभावित करने की क्षमता रखता है.

देश की मौजूदा हालत के मुताबिक इस उपन्यास में तीन प्रकार के पात्र देखने में आये हैं इनमें धनोपार्जन में लिप्त समाज के प्रतिनिधि भी हैं जो किसी भी रूप में देश के साथ कोई सद्भाव नहीं रखता...और श्रम व नैतिकता पर विश्वास रखने वाले लोग भी हैं जो कदम-कदम पर सामाजिक विषमताओं का विरोध करते हैं...और तीसरे, वह लोग भी हैं जो महत्वाकांक्षी कतई नहीं हैं. इनकी अपनी जिंदगी है और अपने सुख-दुख. अपने-अपने घोंसलों में दुबके यह लोग न संघर्ष में विश्वास रखते हैं न सामाजिकता के सही अर्थ को समझते हैं. सुरेश यहां एक सार्थक पात्र के रूप में आदर्श भूमिका निभाता है. यह दीगर बात है कि यहां आदर्श इतना अधिक है कि कहीं-कहीं अस्वाभाविकता खलने लगती है.

उपन्यास : आंधी और तिनके
लेखिका : बाला शर्मा
प्रकाशक : वातायन प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य : सोलह रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल चतुर्वेदी

सफाई और स्वच्छ प्रशासन

"परिवर्तन जीवन का नियम है और तनाव का जनक भी," दफ्तर के स्वयंभू दार्शनिक गोरख ने अपने नियत समय और कुर्सी पर बैठकर चाय की चुस्की लगाते हुए इस वजनदार वाक्य से कैंटीन में बैठे सहयोगियों को प्रभावित करने का प्रयत्न किया. "तुम्हें तो शब्दों की बदहजमी हो गई है गोरख. बकवास बंद करो और हमें काम की बात करने दो," शर्मा ने गोरख को चुप करा दिया. पिछले पंद्रह दिनों से दफ्तर का कामकाज ठप्प था. पहले सफेदी हुई तो सबने कैंटीन की शरण ली. अब कार्यक्रम पुरानी मेज-कुर्सियों के स्थान पर स्टील के नये फर्नीचर और बड़े हाल को अलग-अलग अनुभागों में विभाजित करने का था. "क्या हो गया है बड़े अधिकारियों को! राजनीति की अलगाववादी प्रवृत्तियों को प्रशासन में भी लाना चाहते हैं," त्यागी ने अपनी असहमति जताई. अय्यर दुखी थे कि उनकी नयी मेज पुरानी से छः-सात इंच छोटी होगी, "प्रमोशन तो मिलता नहीं. 'स्माल' टेबुल पर बिठाकर हमारा स्टेटस भी घटाता. जब से हम मद्रास से आया, इसी मेज पर बैठता. जैसे हमारे देश का 'हिस्ट्री रिच' है, टेबुल का भी था. इस नये अफ्सर ने हमसे हमारा हिस्ट्री छीन लिया, अब 'पार्टीशन' करके 'ज्योग्राफी' भी बदल रहा है," अय्यर के स्वर में अपनी पहचान खोने की पीड़ा थी. रामलाल शर्मा दफ्तर में देश के प्रतिनिधि थे, "एक ओर काम कंप्यूटर की गति से निपटाने को कहते हैं और फिर तरह-तरह से अड़ंगे लगते हैं. पता नहीं जनता के धन की बर्बादी किसलिए की गयी है. चार-पांच लाख का चूना तो लग ही गया होगा. ऊपर से स्टील की मेज-कुर्सी गर्मी में तपेगी और जाड़े में ठंडायेगी."

हर छोटे-बड़े मसले में देश की परिपाटी और पढ़े-लिखे लोगों की परंपरा के अनुरूप नये फर्नीचर को लेकर दफ्तर में दो खेमे बन चुके थे. गोरख मेज-कुर्सी बदलाव को सरकार के स्वच्छ प्रशासन देने के व्रत का प्रतीक मानते थे. "दफ्तर के गर्द-गुबार का सफाया होगा, तभी तो प्रशासन साफ होगा. भ्रष्टाचार का मानसिक मैल हटते-हटते हटेगा. तब तक बाह्य छवि तो उजली रहे," वह अपना पक्ष प्रस्तुत करते. शर्मा की मान्यता के अनुसार कभी गोरख दफ्तर की कुर्सी पर जमकर बैठे ही न थे, वह उसके परिवर्तन का संत्रास क्या खाक समझेंगे. "जब से नौकरी शुरू की है, कैंटीन में जमा हुआ है. कभी काम किया है! आज तक सिर्फ चमचागीरी की है हर नये अफ्सर की. अब भी वही कर रहा है. जरा सोचिए कि इन खोखले नये नारों के पहले क्या प्रशासन कीचड़ में पड़ी मैली-कुचैली कमीज था जो सब उसकी धुलाई में लगे हुए हैं. हमें 'डैलीगेशन' में चलकर बड़े साहब से अपनी बात कहनी चाहिए," शर्मा ने अय्यर को ताकते हुए सुझाव दिया. अय्यर थोड़े विचलित हुए. वह उसूलन अफ्सर की अगाड़ी से घबराते थे. फिर यह तो सीधे टकराव का मामला था, "बड़ा जालिम साहब है. देखा नहीं, गनेशी कागज-पैंसिल घर ले जाते पकड़ा गया तो उसे खड़े-खड़े सस्पैंड कर दिया. कहीं हम लोगों के खिलाफ भी एक्शन ले लिया तो! और अब रिप्रेजेंट करने से फायदा भी क्या! नया फर्नीचर तो आ ही चुका है. मेरा दोस्त चारी अखबार में काम करता. इसके खिलाफ खबर छपवा दें तो कैसा रहे." भट्टाचार्य भी अय्यर से सहमत थे, "न्यूज पेपर आजकल बड़ा ताकतवर होता. वह सफेद को भी काला साबित कर सकता. फिर यह तो आफिस की हिस्ट्री का ब्लैक चैप्टर है." पर रामलाल और वर्मा अपनी बात पर अड़े रहे, "आप चारी के जरिये मीडिया को कांटेक्ट करो, हम तो आफिसर एसोसिएशन की तरफ से मूलजानी से मिलकर उनका दिमाग दुरुस्त करेंगे." ऐसे भी गनेशी के मामले को लेकर दफ्तर में काफी शंका और संदेह का वातावरण था. सब एकमत थे कि बच्चों की पढ़ाई के लिए दफ्तर की स्टेशनरी का प्रयोग उतना ही जायज और स्वाभाविक था जितना निजी इस्तेमाल के खातिर सरकारी अस्पताल के डाक्टर का विटामिन की गोली घर ले जाना या बिल बाबू का चाय-पानी का खर्चा हासिल कर बिल पास करना अथवा इंजीनियर का ठेकेदार से अपनी निश्चित कमीशन की राशि वसूलना. या राहत की रकम से किसी नेता का अपने जीवन का सूखा दूर करना अथवा फिर आला अफ्सर के परिवार के सदस्यों का साग-सब्जी लाने और सैर-सपाटे के लिए सरकारी वाहन को कृतार्थ करना. "भ्रष्टाचार और दस्तूरी में बड़ा अंतर है. रेल कर्मचारियों को रेल का फ्री पास मिलता है. हवाई जहाज वाले मुफ्त में दुनिया की सैर करते हैं. कागज की खान के हमारे जैसे मजदूरों को यदि कागज खरीदना पड़े तो यह राष्ट्रीय अपमान और शर्म का विषय होगा," त्यागी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की. सदा चहकने वाले गोरख चुप रहकर विवाद टाल गये. वर्मा और रामलाल सचिव से भेंट करने गये. निजी सचिव तक के कमरे का फर्नीचर चमकदार और लकदक था. उसने बताया कि अंदर साहब के साले साहब विराजमान हैं. दूसरे दिन सुबह दस बजे भेंट का समय तय हुआ.

रामलाल अगले दिन दफ्तर आये तो यों नर्वस थे जैसे उनकी साइकिल के सामने नगर बस चली आ रही हो. वर्मा जाड़े के बावजूद रूमाल निकालकर बार-बार अपना पसीना पोंछ रहे थे. कैंटीन में चाय के अमृत से उनमें साहस और आत्मविश्वास जगाने का असफल प्रयास किया गया. "भाई जी! घबराना नहीं. अपनी बात जोर देकर कहना. शायद आप लोगों की सुन ले और मेरा सस्पेंशन वापस ले ले. हमारा तो पूरा परिवार आपको दुआ देगा," गनेशी ने अपनी अपेक्षा जताई. "मैंने चारी से बात कर लिया है. वह सारा घोटाला छापेगा. इसका तो अकल ठिकाने आ जायेगा. हम भी आपके साथ चलता पर सुबह से 'लूजमोशन' हो रहा है. हम तो सिर्फ आपको विश करने चला आया," अय्यर ने ढाढस बंधाया. "अभी भी सतीकांड के चर्चे चल रहे हैं. पता नहीं क्यों आप दोनों जान-बूझकर शेर की मांद में सता होने को कृतसंकल्प हैं. फिर भी आपके इस जांबाज कारनामे के लिए मेरी शुभकामनाएं," गोरख ने अपनी उपस्थिति का अहसास कराया. रामलाल और वर्मा शहीदाना अंदाज में साहब के कमरे में फांसी के फंदे की ओर दस बजने में पांच मिनट पर प्रस्थान कर गये. उनके पीछे गोरख, त्यागी, भाटिया, मेहरा, खन्ना आदि का जुलूस था. "यह सब क्यों पीछा कर रहे हैं," रामलाल फुसफुसाये. "यह देखने कि हम लोग जल्लाद को अपनी गर्दन बिना सौंपे यों ही न पलट जायें," उत्तर मिला.

"कहिये! क्या बात है!" मूलजानी ने फाइल में आंख और ट्रांजिस्टर के विश्व कपक्रिकेट के आंखों देखे हाल पर कान लगाये प्रश्न किया "यही नये फर्नीचर का मामला है सर!" वर्मा ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीगी बिल्ली बनकर उत्तर दिया, "क्यों, नया फर्नीचर पसंद नहीं आया आपको! मैंने तो खुद कुर्सी पर बैठकर देखा है, बड़ी आरामदेह है. टेबुल भी फंक्शनल और 'मार्डर्न' है. आपको क्या एतराज है!" मूलजानी ने जानना चाहा. अब रामलाल की बारी थी, "सर! बात नयी मेज-कुर्सी की नहीं, वर्तमान हालात में उसकी जरूरत की है. आज की वर्तमान वित्तीय परिस्थितियों में क्या यह खर्च जरूरी है!" "आपने अपना नाम शर्मा बताया था न," "मूलजानी ने अपनी शंका मिटाई और कुर्सी पर पीछे झुकते हुए अधिकार के स्वर में बोले, "नहीं मिस्टर शर्मा! मैं आपसे सहमत नहीं हूं. देश की जितनी चिंता आपको है, हमें भी है. सरकार की नीति है कि कार्यालयों को साफ-सुथरा और आकर्षक बनाया जाये. परिवेश ऐसा हो कि कर्मचारी अपना काम इबादत के अंदाज में कर सकें. इसके लिए क्या किया जाये, फर्नीचर कब कैसे और कितने रुपये में बदला जाये, यह एक विशुद्ध प्रशासनिक निर्णय है. यदि इसके लिए आपके पास सुधार के और सुझाव हों तो आप लिखकर दे सकते हैं," मूलजानी ने फर्नीचर प्रकरण को समाप्त कर दिया. साहस कर शर्मा ने गनेशी का सस्पेंशन भी समाप्त करने का अनुरोध किया. "कौन गनेशी," साहब ने प्रश्न किया. "स्टेशनरी क्लर्क, सर" उत्तर मिला. "वह तो कागज चुराते पकड़ा गया था. यह तो सरासर 'मिसकंडक्ट' है, भ्रष्टाचार है. आप क्या चाहते हैं कि खुलेआम चोरी की सजा भी न मिले. सरकार के स्वच्छ प्रशासन के निर्णय का क्या होगा!" मूलजानी ने स्वर ऊंचा कर जैसे चेतावनी दी. इतने में एक सूटधारी युवक अंदर आया. मूलजानी का चेहरा खिल उठा. "सब ठीकठाक रमेश," उन्होंने उसे बैठने का इशारा करते हुए पूछा. "सप्लाई पूरी हो गई है, बिल कल तक भिजवा दूंगा," जवाब आया. रामलाल और वर्मा अपमानित होकर खाली हाथ बाहर चले आये.

"मुलाकात कैसी रही," त्यागी ने देखते ही जिज्ञासा प्रगट की. "बस मुक्का-लात ही समझो. यों बिचारा बड़ा दुखी था. यदि पहले हम लोगों से बात हो जाती तो नये फर्नीचर पर पैसे की बर्बादी न होती. गनेशी का भी कुछ करेगा. ऐसे बड़े लोगों के वादे हैं. क्या भरोसा," शर्मा ने गोलमोल बात की. पर मंजे हुए नेता न होने के कारण झूठ बोलने की अपराध भावना उनके अवचेतन के दांत में तिनके की तरह फंस गयी थी. वर्मा ने उन्हें सांत्वना दी, "शर्मा जी! मन न छोटा करो. सार्वजनिक सच तीन प्रकार के होते हैं, सफेद, स्याह और साधारण झूठ." "भई वर्मा! पहेलियां न बुझाओ," रामलाल ने इस फलसफे का खुलासा चाहा. "यदि कोई जनमंच से विश्वास के साथ घोषणा करे कि सूरज पश्चिम से निकलता है तो यह प्रथम श्रेणी का सच होगा. दूसरी श्रेणी का सच यह हो सकता है कि सूर्य आज पश्चिम में उगा था और तीसरा यह कि आज सूरज दिखा ही नहीं वर्ना हो सकता है कि पश्चिम में उगा और पूर्व में डूबा हो. आपने जरा-सी पोलिटिक्स की और राजनीतिक सच बोलकर शरमा रहे हैं. पेशेवर नेताओं को लोग फालतू गाली देते हैं." वर्मा ने अपना सिद्धांत समझाया. "तुम्हारे हिसाब से आधुनिक सियासत में सच का अस्तित्व है ही नहीं," रामलाल अविश्वास के स्वर में बोले. "है क्यों नहीं! पर वह भगवान की तरह है. न किसी ने देखा, न बोलते सुना." वर्मा ने उत्तर दिया. "वर्मा भी तुम्हारी जमात में शामिल हो गये," गोरख को आते देखकर रामलाल ने चुटकी ली.

"चारी की मैसेज आयी है कि फर्नीचर की खरीद के सारे विवरण उन्हें दे दें तो वह समाचार छाप देंगे. अय्यर का फोन आया था", गोरख ने बताया फैसला हुआ कि एकाउंट सेक्शन के हरद्वारी लाल से भुगतान का ब्यौरा लेकर अय्यर को भिजवाया जाये. "हमें कुछ भी पता नहीं. फाइल शायद संयुक्त सचिव की अल्मारी में हो. 'गोपनीय' केटागिरी की है," हरद्वारी लाल ने साफ पल्ला झाड़ लिया. जहां सब दिग्गज असफल साबित हुए अय्यर ने किला फतह किया. "जब आप लोग मूलजानी से मिला तो वहां कोई था क्या!" उन्होंने शॅरलक होम्स की तरह जिरह की. शर्मा-वर्मा ने मौन स्वीकृति में सिर हिलाया. अय्यर ने साजिश के अंदाज में कैंटीन की मेज पर कोहनी टिकाई और कानाफूसी की आवाज में बोले, "बड़ा धांधली है. हमारा जात-भाई रामचंद्रन वहां सैकिंड पी.ए. है. वो बताता कि फर्नीचर का ठेका साहब के साले ने तय कराया. वह रोज आता. कुल सप्लाई पांच लाख का हुआ. कमीशन कितना था, पता नहीं. पर हम सोचता था कि सरकार का हर काम आराम से होता. यह नया फर्नीचर इतना आनन-फानन कैसे आ गया. 'वाइफ' का 'प्रेशर' रहा होगा."

खबर अखबार में छपी. औपचारिक जांच भी हुई. बात आयी-गयी हो गयी. बस गनेशी काम पर आ गये. गोरख उन्हें सुनाते हुए बोले, "देखा, प्रशासन का रवैया! पर्दे, फाइल-कवर, फर्नीचर, कंप्यूटर सब नया है. सफाई के इस दौर में पुराने नैतिक मूल्य, काम की निष्ठा, और लगन, ईमानदारी, कार्यकुशलता आदि सब साफ हो गये. अब तो हम विकास की इक्कीसवीं सदी की मंजिल पर बस पहुंचने ही वाले हैं. ऐसा कौन-सा विकसित देश है जहां 'करप्शन' नही है. मुझे तो भ्रष्टाचार शब्द ही दकियानूसी लगता है. हम शताब्दियों से किसी न किसी आचार का अचार डाल रहे हैं. क्या मिला. गरीबी, भुखमरी, महामारी, बाढ़ और सूखा. सिर्फ यह होना चाहिए कि कार्यालय स्वच्छ रहे. करतूतें कितनी भी काली हों. इमेज क्लीन और अफ्सर दमदार हो. जो दाम दे उसका काम हो वर्ना कामतमाम. अपना मूलजानी कितना दमदार हो. स्वच्छ प्रशासन इसी को कहते हैं," इस लंबी तकरीर में गोरख की सांस फूल गयी थी. पर वह अपने पुराने फार्म में फिर आ गये थे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका की ओर से

बधाई

साहित्य अकादमी पुरस्कार

वर्ष 1986 का अकादमी पुरस्कार हिंदी के कवि-कथाकार स्वर्गीय श्रीकांत वर्मा को उनकी काव्य कृति 'मगध' को समर्पित किया गया.

मूर्तिदेवी पुरस्कार

वर्ष 1986 का 'मूर्तिदेवी पुरस्कार' राजस्थान के सुप्रसिद्ध रचनाकार कन्हैयालाल सेठिया को उनके काव्य संग्रह 'निर्ग्रंथ' के लिए समर्पित किया गया.

मैथिलीशरण गुप्त सम्मान

कवि-कथाकार शमशेर बहादुर सिंह को मध्य प्रदेश सरकार ने ५१ हजार रुपये का पहला 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान' प्रदान किया.

सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार

'सारिका' के सुपरिचित कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह को उनकी उपन्यास कृति 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' के लिए इस वर्ष 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित किया गया.

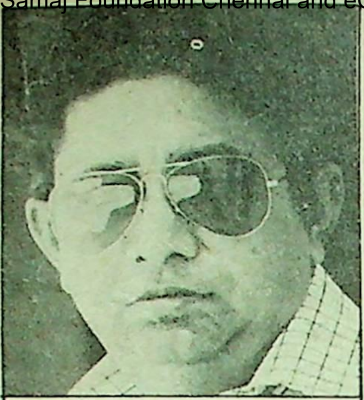

श्रीकांत वर्मा

बी.आर. नारायण

संस्कृति पुरस्कार

संस्कृति प्रतिष्ठान द्वारा प्रायोजित 1987 के 'नवोदित प्रतिभा पुरस्कार' क्रमशः साहित्य के लिए युवा कथाकार धीरेंद्र अस्थाना, पत्रकारिता के लिए अजीत नाइनन मैथ्यु, कला के लिए वसुंधरा तिवारी और नाटक के लिए फैजल अलकाजी को प्रदान किए गये.

हिंदी अकादमी सम्मान

हिंदी भाषा और साहित्य की विशिष्ट सेवा तथा योगदान के लिए इस वर्ष सर्वश्री डा. सत्यकेतु विद्यालंकार, डा. प्रभाकर माचवे, श्रीमती शकुंत माथुर, डा. नरेंद्र कोहली, डा. विमल कुमार जैन बी.आर. नारायण, मुकुट बिहारी वर्मा, चंदूलाल चंद्राकर और प्रभाकर द्विवेदी को सम्मानित किया गया

भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता की ओर से हिंदी कवि गिरिजाकुमार माथुर को उनकी काव्य कृति 'कल्पांतर' के लिए नथमल भुवालका पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

सुप्रसिद्ध अनुवादक श्री बी.आर. नारायण को कन्नड़ से हिंदी में अनूदित की गयी विविध रचनाओं के लिए वर्ष 1987 में हिंदी प्रतिष्ठान, हैदराबाद, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, राजभाषा विभाग-बिहार सरकार, हिंदी अकादमी-दिल्ली ने पुरस्कृत और सम्मानित किया.

अखिल भारतीय हिन्दी नाट्य-लेखन प्रतियोगिता

प्रथम	द्वितीय	तृतीय
जयशंकर प्रसाद पुरस्कार	डा. लक्ष्मीनारायण लाल पुरस्कार	डा. सत्यमूर्ति पुरस्कार
रु. १०,०००/-	रु. ७,०००/-	रु. ३,००० /-

आयोजक :- **सांस्कृतिक कार्य विभाग, उ.प्र.**

९वां तल, कमरा नं. ९३१, जवाहर भवन, अशोक मार्ग, लखनऊ-२२६००१

तथा

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी

कैसरबाग, लखनऊ-२२६००१

निःशुल्क नियमावली एवं आवेदन पत्र के लिए लिखें अथवा संपर्क करें।

प्रविष्टियां स्वीकार करने की अंतिम तिथि १५ अप्रैल १९८८

Laser Ad

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और पुरस्कार जीतिए

नये स्तंभ 'सारिका कथा पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका : जनवरी : 1988' अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 फरवरी : 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा अप्रैल : 1988 के अंक में की जायेगी.

प्रथम पुरस्कार : 80 रुपये, द्वितीय पुरस्कार : 60 रुपये, तृतीय पुरस्कार : 40 रुपये.

सारिका कथा पहेली : फरवरी 1988

1. इस अंक की रचना.............में कुत्तों के माध्यम से मनुष्य समाज पर सार्थक व्यंग्य किया गया है.
2. जैनेंद्र कुमार के उपन्यास 'त्याग पत्र' का अंग्रेजी में अनुवाद........ने किया.
3. ....कहानी का पुरुष पात्र इस हद तक हैरान हो जाता है कि वह अपनी पत्नी के संदर्भ में यह सोचने पर मजबूर हो जाता है आखिर यह लड़की उसकी बीवी क्यों है?
4. भगदत्त की पोल कैसे खुली?
....
5. "यह जितनी सारी चीजें तुम्हारी आंखों को, मन को अटकाती हैं, इनमें से एक भी चीज बताओ, जो सीधी हो. यह वर्षा, यह टहनी, नदी की लहर, चिड़िया या तितली की उड़ान...बताओ, इनमें से कौन-सी चीज तुम्हें सीधी लगती है? मगर इन सीधों की जिद है कि नहीं साहब, सब सीधा होता है, और सीधा होना चाहिए." यह भाषा कथाकार..की है.
6. इस अंक की प्रमुख विशेषता क्या है?..
....
7. "ऊपर वाले की यही मर्जी है तो यही सही. लेकिन मन के एक कोने में उसे थोड़ी-सी उम्मीद इस बात की थी कि कभी जरूर वक्त बदलेगा और भगौती फिर सुख-चैन के दिन काटेगी?."
यह मन:स्थिति................कहानी के.............की है.
8. यह पात्र जिन कहानियों के हैं, उनके नाम कोष्ठक में लिखें—
त्रिपुरारी ( ), गोपाल ( ), जमना ( )
9. इस अंक में.................का रेखांकन सर्वश्रेष्ठ है.
10. "......मटमैली-सी रोशनी में चारों तरफ एक रहस्यात्मक वातावरण घनीभूत होता लग रहा था. दीवारों की खूंटियों पर टंगे बेतरतीब कपड़ों की परछाइयां और दीगर सामान उस नीम उजाले में कुछ का कुछ नजर आ रहा था...."
यह कथांश..........................कहानी का है.

नाम.......................... आयु..........................

पता..

....

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वयं लेखक बनना चाहते हैं....पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो नयी पौद की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं....स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित ३०० शब्दों में लिख भेजिए.

नयी पौद

अभी बहुत प्रयास करना बाकी है!

बीथिका जैन

किसी बात को सही रूप में समझना जितना कठिन है उसे सही रूप में प्रस्तुत करना उससे भी अधिक कठिन है. लेखन से पूर्व विषय की पूर्ण जानकारी और भावों-विचारों का उद्वेलन होना आवश्यक है. इनमें से एक की कमी होने पर भी मुझसे लेखन कार्य संभव नहीं हो पाता. लिखते समय कभी विषय-ज्ञान की अपूर्णता की वजह से गतिरोध आ जाता है. या फिर भाषा हमें अपने इशारे पर नचाती है, लिखो आगे कैसे लिख पाती हो! शब्द ही नहीं सूझते. यदि सूझ भी जायें तो उपयुक्त नहीं लगते. थोड़ा-बहुत कुछ लिख भी लिया तो स्वयं को संतुष्टि नहीं होती.

एकाध पेज लिख लिया तब लगता है अब घटनाओं को कैसे जोड़ा जाये!...जिससे आगे बढ़ा जा सके. कहां तक उनका वर्णन किया जाये. संक्षिप्तता आने में रोड़ा अटकाती है. ऐसी स्थिति में लगता है यह कथन सही है कि हम अध्ययन तो करते नहीं और लेखिका बनने का ख्वाब देखने लगते हैं. अभी तो आगे बढ़ने के लिए बहुत मेहनत करनी है. लिखना क्यों चाहती हूं, इस विषय पर मैंने अनेक बार सोचा. कभी लगा, आजकल लेखक-लेखिका कहलाना भी एक फैशन है. इसमें गौरवानुभूति होती है, कहीं इसीलिए तो मैं ऐसा नहीं करना चाहती. किंतु स्वयं ही इसे नकार भी देती हूं. स्त्री की स्थिति और समाज में व्याप्त रूढ़ विचार ही हमेशा मुझे लेखन के लिए उकसाते हैं. अभी तो मेरा लेखन मुझ तक ही सीमित है. मैं अपने विचारों को सही शब्दों में बांधकर उस पर सबको सोचने के लिए मजबूर कर सकूं, ऐसे लेखन के लिए सही भाषा और क्रम को लाने के लिए अभी बहुत प्रयास करना बाकी है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

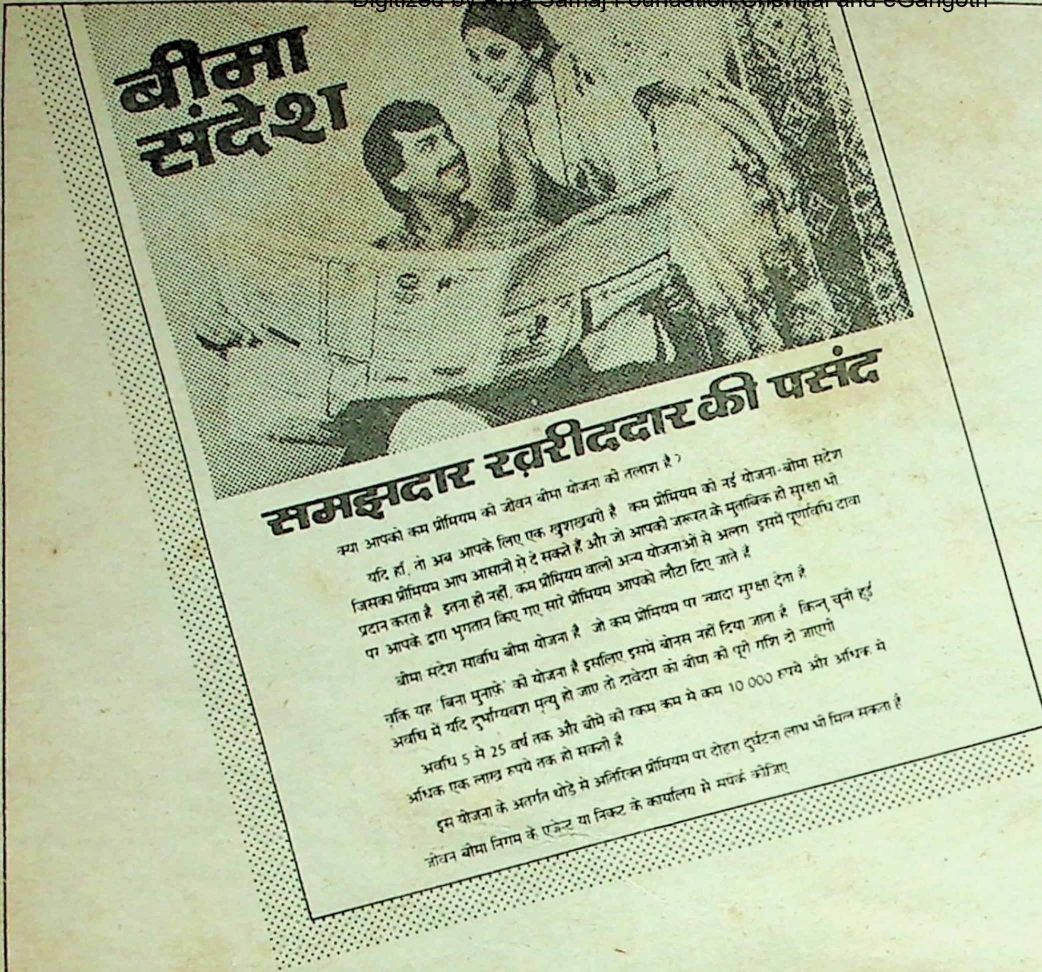

अब कम-लागत बीमा सन्देश योजना और भी कम लागत पर

10%—27% की छूट!

कम-कम प्रीमियम
बीमा सन्देश का मुख्य आकर्षण था उसका कम प्रीमियम.

अब प्रीमियम की दरें आयु और अवधि के अनुसार 10% से 27% तक और घटा दी गई हैं.

अब, प्रीमियम दरों में इस कमी के कारण बीमा सन्देश से जीवन बीमा सुरक्षा प्राप्त करना अधिक आसान हो गया है विशेष रूप से कम आय समूह के लोगों के लिए या उनके लिए जो कम लागत पर अधिक सुरक्षा प्राप्त करना चाहते हैं.

मौजूदा बीमा सन्देश पालिसीधारकों को भी लाभ मिलेगा
मौजूदा पालिसीधारकों के लिए बीमा सुरक्षा की राशि अपने-आप नए प्रीमियम दरों के अनुपात से बढ़ा दी जाएगी. हर पालिसीधारक को इसकी सूचना अलग से भेजी जाएगी.

हानिरहित योजना
बीमा सन्देश योजना के अन्तर्गत बीमा अवधि की समाप्ति पर अदा किए सारे प्रीमियम पालिसीधारक को लौटा दिए जाते हैं. बीमा-अवधि के दौरान मृत्यु हो जाने पर सारी बीमा-राशि नामज़द व्यक्ति को अदा कर दी जाती है.

आज ही अपने जीवन बीमा एजन्ट से मिलें या अपने निकटतम जीवन बीमा कार्यालय से सम्पर्क करें.

भारतीय जीवन बीमा निगम

जीवन बीमा निगम — जनता की सुरक्षा का न्यासधारी

RADEUS LIC 5 87

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

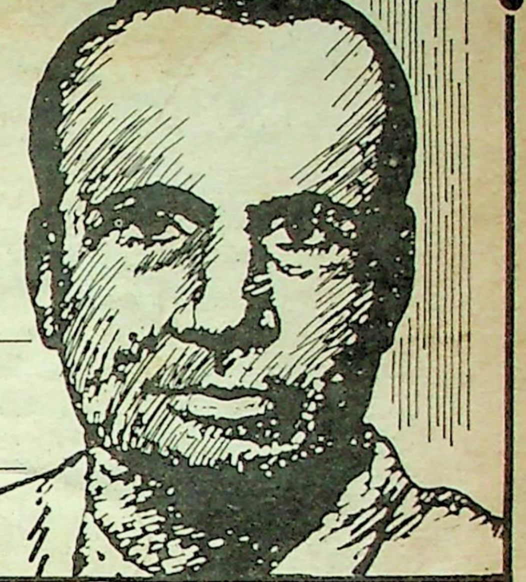

जयशंकर प्रसाद का साहित्य

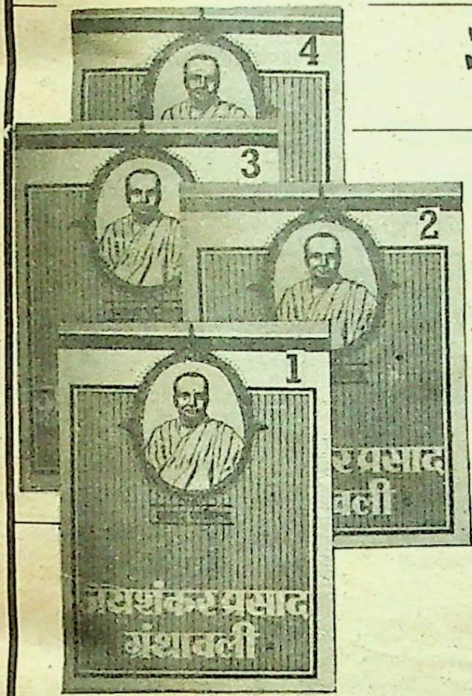

जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली

प्रसाद ग्रंथावली खण्ड (काव्य) – I	40.00
प्रसाद ग्रंथावली खण्ड (नाटक) – II	40.00
प्रसाद ग्रंथावली खण्ड (कहानी-निबंध) – III	40.00
प्रसाद ग्रंथावली खण्ड (उपन्यास) – IV	40.00

'प्रसाद की अलग प्रकाशित पुस्तकें

काव्य

कामायनी	8.00
आंसू	5.00
झरना	5.00
लहर	5.00
महाराजा का महत्व	2.00
प्रेम पथिक	3.00

नाटक

चन्द्रगुप्त	10.00
स्कंदगुप्त	10.00
अजातशत्रु	6.00
ध्रुवस्वामिनी	2.50
जनमेजय का नागयज्ञ	6.00
राज्य श्री	4.00
विशाख	6.00
कामना	4.00
एक घूंट	4.00

कहानी संग्रह

छाया	6.00
इन्द्रजाल	8.00
आकाशदीप	7.00
प्रतिध्वनि	5.00
आंधी	6.00

उपन्यास

कंकाल	15.00
तितली	15.00
इरावती	6.00

निबन्ध

काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	15.00

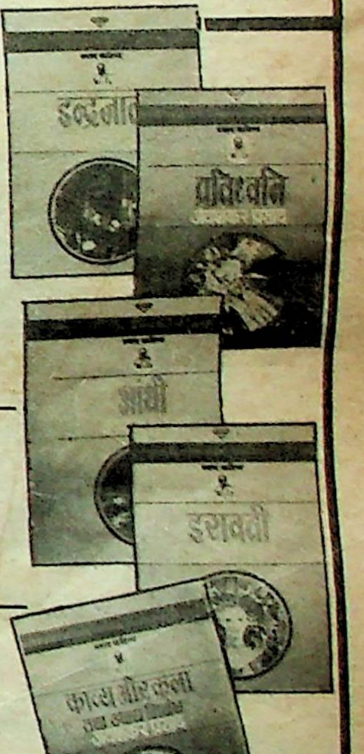

Mediamind

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

सारिका के रजत जयंती के उपहार अंकों की श्रृंखला का प्रारंभ ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक :1, 2 से हुआ था. इन अंकों को पाठकों ने अद्वितीय और संग्रहणीय माना. आज भी इनकी बराबर मांग की जाती है. और अब राष्ट्र के इस सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार की एक-चौथाई सदी की यात्रा-कथा के अनूठे अध्यायों को प्रस्तुत कर रहा है

ज्ञानपीठ पुरस्कार विशेषांक : तीन

अनेक आल्हादकारक प्रसंगों और धार पर चढ़े सर्जना से छिटके चमत्कारी स्फुलिंगों की जगमगाहट के बीच पाठक पायेंगे स्थायी महत्व की अन्य ऐसी सामग्री जो ज्ञानपीठ के बाइस पुरस्कार-मंचों की अमर उपलब्धि है.

पुरस्कार विजेताओं की कहानियां : सची राउतराय (ओड़िया) तकषी शिवशंकर पिल्लै (मलयालम) और पन्नालाल पटेल (गुजराती).

उपन्यास (नाट्यरूपांतर) : मृत्युंजय : वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य (असमिया), ययाति : विष्णुसखाराम खांडेकर (मराठी)

तीन उपन्यास : तीन पात्र : तीन युग

एक कथासूत्र में संयोजित आशापूर्णदेवी की बांग्ला उपन्यासत्रयी की नायिकाएं-प्रथम प्रतिश्रुति (सत्यवती), सुवर्णलता (सुवर्णलता) और बकुलकथा (बकुल)

कविताएं : इस वर्ष के पुरस्कार विजेता सची राउतराय की प्रतिनिधि कविताएं और मंच प्रस्तुतियों से संदर्भित महादेवी, पंत, बेंद्रे, दिनकर, अज्ञेय, अमृता प्रीतम के मार्मिक कवितांश.

संस्मरण : फिराक गोरखपुरी : एक महासागर

अतल के मोती—विशन टंडन

सतह के फेन—रमेश द्विवेदी

एक संध्या—दतात्रेय रामचंद्र बेंद्र के घर पर.

स्वयंवद : उमाशंकर जोशी, कुवेंपु (पुट्टप्पा), विश्वनाथ सत्यानारायण.

अज्ञेय —एक व्यक्ति चित्र : फणीश्वरनाथ रेणु

शिवराम कारंत से विचारोत्तेजक बातचीत.

पुरस्कार मंच पर मैत्री की प्रतिध्वनि

महादेवी वर्मा और ब्रिटेन की प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर तकषी शिवशंकर पिल्लै और मैक्सिकन कवि ऑक्टोवियो पॉज

विकट चुनौतियां : पुरस्कृत कृतियों की मंच प्रस्तुति प्रयोग के साथी : कुंथा जैन

श्रीमती रमा जैन के संचालन में: यामिनी कृष्णामूर्ति, अलकाज़ी, शांता गांधी, मायाराव, अमलाशंकर, मोहन महर्षि, सोनलमानसिंह, ओम शिवपुरी, सई परंजपे, गिरीश करनाड, कुलभूषण खरबंदा, राज बब्बर, नसीरूद्दीन शाह, वी.वी. कारंथ, शीला भाटिया, सत्यदेव दुबे, आनंद शंकर, तनुश्री, अविनाश पसरीचा, रामगोपाल बजाज, रीता गांगुली.

साहित्य सृजन, पुरस्कार और मैं

रचना धर्म, रचना कर्म, जीवन, समाज और आत्म बोध के संबंध में पुरस्कार विजेताओं के उद्‌गार-समारोह मंच से.

वाग्देवी के ये चिरंतन दीपाधार : पुरस्कार विजेताओं की दिग्दर्शिका.

दीप से दीप जले

कतिपय विजेताओं द्वारा पुरस्कार राशि का उपयोग साहित्य संवर्धन के प्रति समर्पित.

ज्ञानपीठ पुरस्कार : संस्थापकों के विचार और विनयांजलि

स्वर्गीय साहू शांति प्रसाद जैन, स्वर्गीया श्रीमती रमा जैन, वर्तमान अध्यक्ष साहू श्रेयांस प्रसाद जैन और वर्तमान मैनेजिंग ट्रस्टी, साहू अशोक कुमार जैन.

इस अंक के अतिथि संपादक हैं : ज्ञानोदय और ज्ञानपीठ पत्रिका के भूतपूर्व संपादक, ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रवर परिषद के सदस्य और ज्ञानपीठ के सलाहकार श्री लक्ष्मीचंद्र जैन.

सारिका

अप्रैल 88

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar